तुलसी वाङ्मय

कालूयशोविलास-1

आचार्य तुलसी

सम्पादक
साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

आचार्यश्री तुलसी सृजन की ऊर्जा के सक्षम केंद्र हैं। आपकी प्रतिभा में कथ्य के नये उन्मेष और नव शिल्पन की कला पुरोगमन कर रही है। आपका अनुभवशिल्प शब्दों की तरंगों पर मीनाकारी करता हुआ परिलक्षित होता है। अपनी कल्पनाशील मनीषा के पारदर्शी वातायन पर आप जिस भाव-बोध से साक्षात्कार करते हैं, उसे सजीव अभिव्यक्ति दे देते हैं। छिटपुट रचना-बिंदुओं का संख्यांकन न किया जाए, तो आपकी सृजन-शृंखला में पहली कड़ी है 'कालूयशोविलास'। इस प्रथम कृति में भी अनुभव-शिल्प को जिस प्रौढ़ता से निखार मिला है, वह विलक्षण है। शब्द-शिल्प को सतर्कतापूर्वक गढ़ने का प्रयास न होने पर भी इसके शब्द-विन्यास में आभिजात्य सौन्दर्य का उभार है। साहित्य जगत् की नयी विधाओं से अनुबंधित न होने पर भी इससे आविर्भूत नव्यता एक पराकाष्ठा तक पहुंच रही है। सूर्य-रश्मियों की भांति उज्जवल और गतिशील इस काव्य-चेतना में एक अनिर्वार आकर्षण है। इस अखण्ड और समग्र अस्तित्व को आकार देने वाले जीवन-वृत्त का सृजन अन्तर्लीनता के दुर्लभ क्षणों में ही संभव है।

'कालूयशोविलास' में हर घटना का चित्रण जितना यथार्थ है, उतना ही अभिराम है। इसको पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो सब-कुछ साक्षात् घटित हो रहा है। इसके साहित्यिक सौन्दर्य में निमज्जित होने पर ऐसा अनुभव होता है, मानो एक तराशी हुई आवृत प्रतिमा का अनावरण हो रहा है अथवा एक सजीव आकृति शब्दों के आवरण को बेधकर बाहर झांक रही है।

कालूयशोविलास-१

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

तुलसी-वाङ्मय

कालूयशोविलास-१

आचार्य तुलसी

संपादक

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

स्वर्गीय श्री फतेहचन्दजी सुराणा (चूरू)
की पुण्य स्मृति में
तारा - डालमचन्द सुराणा
सुरेन्द्र, नरेन्द्र, देवकृष्ण सुराणा, कोलकाता
के सौजन्य से

© आदर्श साहित्य संघ, नई दिल्ली

कालूयशोविलास-१

लेखक : आचार्य तुलसी

संपादक : साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी
प्रबन्धक—आदर्श साहित्य संघ
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११०००२

नवीन संस्करण : सन २००४

मूल्य : एक सौ रुपये

मुद्रक : आर-टेक आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

KALUYASHOVILAS
by Aacharya Tulsi Rs. 100.00

अनुक्रम

१.	स्वकथ्य	५
२.	संपादकीय	१०
३.	कथावस्तु	२२
४.	उल्लास-परिचय	२५
५.	नया संस्करण : नया परिवेश	५०
६.	जीवन-झलक	५४
७.	प्रस्तुति	५६
८.	प्रथम उल्लास	५७
९.	द्वितीय उल्लास	११३
१०.	तृतीय उल्लास	१७५

परिशिष्ट

१.	सांकेतिक घटनाएं	२५३
२.	नामानुक्रम	३१७
३.	ग्रन्थ में प्रयुक्त मूल रागिनियां	३३०
४.	विशेष शब्दकोश	३५२

स्वकथ्य

हर प्राणी का जीवन गमन-आगमन की एक लम्बी शृंखला है। इस शृंखला में बंधे हुए हजारों-लाखों व्यक्तियों में कोई विरल व्यक्तित्व ही ऐसा होता है, जो इतिहास के संपर्क में आकर अपने अस्तित्व को स्थायित्व दे जाता है। मेरे जीवन-निर्माता, शिक्षा और दीक्षा-गुरु आचार्यश्री कालूगणी तेरापन्थ धर्मसंघ के आकाश-पटल पर महासूर्य की भांति उदित हुए।

नए जीवन में प्रवेश के समय कालूगणी ग्यारह वर्ष के सुकुमार बालक थे। मुझे याद है, मैं भी इसी अवस्था में दीक्षित हुआ था। मैं पूज्य गुरुदेव कालूगणी की परम कारुणिक छाया में पला, उसी प्रकार कालूगणी भी मघवागणी के अप्रतिम स्नेह में निमज्जित होकर रहे। पूज्य गुरुदेव ने मेरे साथ उन्हीं व्यवहारों का प्रत्यावर्तन किया, जिन व्यवहारों की परिधि में उन्होंने मघवागणी की वरद अनुकंपा का संस्पर्श किया था। इससे आगे की बात लिखूं तो वह यह होगी कि कालूगणी अपने गुरुदेव से कुछ आगे बढ़ गए। उन्होंने मुझे प्रत्यक्षतः दायित्व सौंपकर आचार्य और युवाचार्य के बीच का मांगलिक संबंध स्थापित कर लिया, जबकि मघवागणी प्रत्यक्ष रूप से ऐसा कुछ नहीं कर पाए। यद्यपि कालूमुनि को सर्दी से ठिठुरते देख उन्हें अपनी चद्दर ओढ़ाकर तथा कुछ अन्य विलक्षणताओं को प्रकट कर मघवागणी ने भी परोक्ष संकेत अवश्य दे दिए थे, किंतु उन्हें साक्षात रूप में उत्तराधिकार सौंपने की दृष्टि से उस समय परिस्थितियां इतनी अनुकूल नहीं थीं। यह संभावना की जा सकती है कि यदि कालूगणी मघवागणी की सन्निधि कुछ वर्ष और पा लेते तो इतिहास में एक विलक्षण घटना घटित होती। वह विलक्षणता नियति को मान्य नहीं थी, अतः पांच वर्ष की सुखद अनुभूतियों पर एक पटाक्षेप हो गया। पांच साल की छोटी-सी अवधि में भी कालूगणी ने मघवागणी से जो स्नेह-संपोषण और आंतरिक नैकट्य पाया, वह उनके भावी जीवन-निर्माण का पुष्ट और अकंप आधार बन गया।

मघवागणी के बाद कालूगणी ने सोलह वर्ष तक आचार्यश्री माणकगणी और डालगणी के नेतृत्व में विकास के अनेक नए आयाम उद्घाटित किए, फिर भी मघवागणी का अभाव उन्हें बराबर खलता रहा। जहां तक मुझे याद है, इस अभाव की अनुभूति गुरुदेव को अंतिम समय (वि. सं. १९९३) तक होती रही। जब कभी आप मघवागणी के जीवन-प्रसंगों में अवगाहन करते, आपकी आंखें नम हो जातीं। उस समय की अंतःसंवेदना को हम लोग स्पष्ट रूप से पढ़ लेते और बहुत बार कालूगणी के जीवन की गहराइयों में उतरकर मघवागणी से साक्षात्कार कर लेते।

पूज्य गुरुदेव कालूगणी मघवागणी के सक्षम प्रतिनिधि ही नहीं, सर्वांगीण प्रतिबिंब थे। उन्होंने अपने जीवन में और किसी का अनुकरण नहीं किया। पर जिनका किया, समग्रता से किया और कई अंशों में तदनुरूप जीवन जिया।

कालूगणी ने अपने जीवन में अनेक आरोहण-अवरोहण देखे, पर अपने विकासशील व्यक्तित्व पर तनिक भी आंच नहीं आने दी। अनुकूल और प्रतिकूल हर स्थिति को अपने अनुकूल ढालते हुए वे आगे बढ़ते रहे। उनकी अर्हता का अंकन कर आचार्यश्री डालगणी ने वि. सं. १९६६ में उनको अपना उत्तराधिकारी निर्णीत कर दिया। भाद्रव शुक्ला पूर्णिमा की पूर्ण चंद्रोदयी संध्या ने पहली बार उनका अभिवादन कर स्वयं को कृतार्थ अनुभव किया।

आचार्यपद पर आसीन होते ही कालूगणी ने अपने उदीयमान धर्मसंघ का एक समीचीन भावी रेखाचित्र तैयार कर लिया। उस रेखाचित्र में उन्होंने धर्मसंघ के संबंध में जो-जो संभावनाएं और कल्पनाएं कीं, लगभग साकार हो गईं। एक सफल अनुशास्ता का व्यक्तित्व निर्मित कर कालूगणी ने अपने युग को स्वर्णिम युग के रूप में प्रस्तुति दी।

जैन-दर्शन के अनुसार परिवर्तन सृष्टि का अवश्यंभावी क्रम है। यह दो प्रकार से घटित होता है—सहज और प्रयत्नपूर्वक। कालूगणी के युग में कुछ परिवर्तन स्वाभाविक रूप में हुए, पर सलक्ष्य प्रयत्नपूर्वक किए गए परिवर्तन धर्मसंघ के लिए वरदान सिद्ध हो गए। एक छोटे-से परिवेश में विकासशील छोटा-सा धर्मसंघ इतना स्फुरणाशील हुआ कि श्रद्धालु और तटस्थ व्यक्तियों के अंतःकरण में विस्मय और प्रसन्नता की धाराएं बहने लगीं। मेरी दृष्टि से ऐसा कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा, जिसमें नवजीवन भरने के लिए कालूगणी ने अपने वरद चिन्तन का उपयोग न किया हो।

कालूगणी ने अपने समय में साधुचर्या, साधना, शिक्षा, कला, साहित्य, दर्शन, भाषा, प्रचार, यात्रा आदि अनेक क्षेत्रों में नए उन्मेष दिए। इसके साथ उन्होंने अपने धर्मसंघ की मर्यादा-निष्ठा और अनुशासन-बद्धता को कभी क्षीण नहीं होने

दिया। संघ-विकास की मूल नींव को अधिक ठोस बनाते हुए उन्होंने जो नए परिवर्तन किए, उनसे संघ के व्यक्तित्व में नया निखार आता रहा।

जन-जन के अंतःकरण में धर्म की पावन गंगा प्रवाहित करते हुए वे चातुर्मासिक प्रवास के लिए गंगापुर पहुंचे। विगत कुछ समय से समुद्भूत तर्जनी अंगुली की पीड़ा बढ़ती जा रही थी। समुचित साधन-सामग्री के अभाव में वह कण-सी फुंसी असाध्य होती गई। उस असाध्यता ने गुरुदेव के आयुष्य कर्म की उदीरणा कर दी, इस संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। उस समय इस दृष्टि से विशेष ध्यान ही नहीं दिया गया, अन्यथा गुरुदेव को बचाना संभव भी था। पर हमारे अपने ही प्रमाद ने हमें गुरुदेव की दीर्घकालिक सुखद सन्निधि से वंचित कर दिया।

कालूगणी के जीवन का सांध्यकाल मेरे लिए दोहरा दुविधा का समय था। एक ओर गुरुदेव के असह्य वियोग की संभावना, दूसरी ओर अपने कर्तव्य की प्रेरणा। एक ओर मेरे मुनि जीवन के पीछे छूटे हुए ग्यारह वर्ष आंखों के सागर में तैर रहे थे तो दूसरी ओर अनागत की अनिश्चित अवधि उस सागर में तरंगित हो रही थी। एक ओर बाईस वर्ष का युवक, दूसरी ओर एक विशाल धर्मसंघ का गुरुतर दायित्व। मैंने अनुभव किया कि कालूगणी का हृदय वज्र जैसे सुदृढ़ परमाणुओं से निर्मित था, अन्यथा वे एक युवा चेतना पर इतना भरोसा नहीं कर सकते। कालूगणी ने मुझे संघ की जिम्मेवारी के साथ उसे निभा सकने का संबल देकर मृत्यु का आलिंगन कर लिया।

सहस्रों-सहस्रों दीप-शिखाओं से समालोकित आचार्यश्री कालूगणी के जीवन को मैंने बहुत निकटता से देखा था। मुझे सहज प्रेरणा मिली कि मैं उस विलक्षण व्यक्तित्व को साहित्यिक परिवेश देकर अपने जीवन के कुछ क्षणों को सार्थक बनाऊं। मैं शीघ्र ही अपनी लेखनी को सफल करना चाहता था, पर मुनिश्री मगनलालजी स्वामी ने सुझाव दिया—'आपका काम आपको ही करना है। किंतु इसमें जल्दी करना ठीक नहीं रहेगा। अभी आपको कुछ समय अन्य आवश्यक कार्यों में लगाना चाहिए।' मैंने उनके सुझाव को आदर दिया और कुछ वर्षों तक अन्य कार्यों में संलग्न रहा।

वि. सं. १९९६, फाल्गुन शुक्ला तृतीया को मोमासर (चूरू) में मैंने 'कालूयशोविलास' का निर्माण-कार्य प्रारंभ किया और वि. सं. २००० भाद्रव शुक्ला षष्ठी, गंगाशहर में संध्या के समय इसे संपन्न किया। लगभग चार साल के इस समय में **'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'** के अनुसार विघ्न भी उपस्थित हुए। शारीरिक अस्वास्थ्य के कारण साल-डेढ़ साल तक रचना-कार्य स्थगित रहा। इन सबके

बावजूद मैं इस जीवनवृत्त-रूप ग्रन्थ-सिन्धु का पार पाने में सफल हुआ, इसका श्रेय कालूगणी के वर्चस्वी जीवन को ही दिया जाना चाहिए। कालूगणी के सान्निध्य की सुखद स्मृतियां अब भी मेरी आंखों में तैरती रहती हैं, पर उनकी साक्षात अनुभूति कैसे हो? **'ते हि नो दिवसा गताः'**—हमारे वे दिन चले गए, अब तो उन यादों से ही मन को समाधान देना है।

रचना-कार्य की संपन्नता के तत्काल बाद मैंने गंगाशहर की विशाल परिषद में 'कालूयशोविलास' का वाचन शुरू कर दिया, जिसका समापन वि. सं. २००१, फाल्गुन कृष्णा दशमी, लाडनूं में हुआ। 'कालूयशोविलास' की प्रथम हस्तलिखित प्रति इसकी रचना के साथ-साथ मैंने तैयार की। दूसरी प्रति वि. सं. २००३ में मुनि नवरत्न (मोमासर) ने लिखी। उस प्रति से पचासों प्रतियां लिखी गईं और साधु-साध्वियों द्वारा परिषद में कालूयशोविलास का वाचन होता रहा।

वि. सं. २०३२ तक 'कालूयशोविलास' हमारी पुस्तक-मंजूषा में ज्यों का त्यों पड़ा रहा। कई बार इसके पुनर्वीक्षण और संशोधन का प्रसंग चला, पर काम शुरू नहीं हुआ। गत वर्ष जयपुर चातुर्मास में साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा इस कार्य को पुनः हाथ में लेने में निमित्त बनी। वह उत्तर-साधिका के रूप में काम करने के लिए तैयार हुई और मैंने अपना काम प्रारंभ कर दिया।

मेरे सामने बत्तीस वर्ष पूर्व निर्मित एक कृति थी, जिसे अब जी भरकर तराशना था। मैंने भाषा, लय, संदर्भ आदि शिल्पों में खुलकर परिवर्तन किया, किंतु मूलभूत शिल्प-शैली को नहीं बदला। आज यदि 'कालूयशोविलास' की रचना होती तो इसका स्वरूप कुछ दूसरा ही होता। फिर भी बत्तीस वर्ष पूर्व की प्रति के साथ परिवर्तित प्रति की तुलना की जाएगी तो काफी अंतर परिलक्षित होगा।

'कालूयशोविलास' का संशोधन करते समय मुझे जयाचार्य के युग की स्मृति हो आई। 'भगवती सूत्र की जोड़' का निर्माण करते समय जयाचार्य बोलते और साध्वीप्रमुखा गुलाबसती लिखतीं। उनकी स्मरण-शक्ति और ग्रहण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि उन्हें लिखने के लिए दूसरी बार पूछना नहीं पड़ता।

इतिहास स्वयं को दोहराता है, इस जनश्रुति को मैंने साकार होते हुए देखा। 'कालूयशोविलास' के संशोधन एवं परिवर्धन-काल में बहुत स्थलों पर मैं बोलता गया और साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा लिखती गई। 'कालूयशोविलास' ही नहीं, 'माणक-महिमा', 'डालिम-चरित्र' आदि जीवन-चरित्रों के संपादन में भी उसने काफी श्रम किया। इससे मुझे काम करने में सुविधा हो गई और उसको राजस्थानी भाषा पढ़ने-लिखने का अभ्यास हो गया।

परिवर्तित-परिवर्धित 'कालूयशोविलास' की नई प्रतिलिपि तैयार होते ही

'आदर्श साहित्य संघ' ने इसका अधिग्रहण कर लिया। इसके बावजूद परिवर्तन का सिलसिला पूरा नहीं हुआ। क्योंकि उसके बाद साधु-साध्वियों की अंतरंग परिषद में समालोचनात्मक दृष्टि से 'कालूयशोविलास' का पारायण किया। उस समय तक भी परिवर्तन की नई संभावनाओं के द्वार मैंने बंद नहीं किए, फलतः निर्णायक स्थिति तक पहुंचते-पहुंचते एक साल से अधिक समय लग गया। परिष्कार के बाद इसका जो रूप बना वह मेरे लिए आह्लाददायक है। इसके कुछ गीत प्राचीन गीतों की रागिनियों में आबद्ध हैं, अतः नए साधु-साध्वियों के लिए थोड़ी कठिनाई हो सकती है। फिर भी पूज्य गुरुदेव का यह जीवन-वृत्त हमारे धर्मसंघ को नित नया शिक्षा-संबल दे सकेगा, ऐसा विश्वास है।

'कालू-जन्म-शताब्दी' के पुण्य प्रसंग पर कालूगणी को समग्रता से जानने-समझने की भावना स्वाभाविक है। अपने अंतस्तोष के लिए किया गया मेरा यह सृजन जन-जन की जिज्ञासा का स्वल्प-सा भी समाधान बना तो मुझे अतिरिक्त आह्लाद की अनुभूति होती रहेगी।

आचार्य तुलसी

गोठी-भवन
सरदारशहर
३० अगस्त, १९७६

संपादकीय

आचार्यश्री कालू अपने बचपन में एक निर्मल निर्झर के रूप में छोटे-से देहात में बह रहे थे। आचार्यश्री मघवा का ध्यान उस ओर केंद्रित हुआ। वे उसकी निर्मलता एवं गतिशीलता से प्रभावित हुए और उसे तेरापंथ की सुरम्य वाटिका में बहा लाए। उस निर्झर के उन्मुक्त बहाव एवं मधुर निनाद ने उसके आसपास चलनेवालों का मन मोह लिया और एक दिन वह उस वाटिका का प्राण बन गया।

निर्बाध गति से प्रवहमान उस जल-प्रपात से तेरापंथ-वाटिका का सौंदर्य उत्तरोत्तर निखरने लगा। बीच-बीच में पतझर के हल्के-भारी झोंके भी आए, किंतु वे स्वयं हतप्रभ होकर अस्तित्व-विहीन हो गए। अनेक आवर्तों-प्रत्यावर्तों के मध्य बहने वाले उस निर्झर की स्थिर चेतना को संगीत की थिरकती लहरों पर अतियात्रित करने का काम किया है युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने।

आचार्यश्री तुलसी सृजन की ऊर्जा के सक्षम केंद्र हैं। उनकी प्रतिभा में कथ्य के नए उन्मेष और नव शिल्पन की कला पुरोगमन कर रही है। उनका अनुभव-शिल्प शब्दों की तरंगों पर मीनाकारी करता हुआ परिलक्षित होता है। अपनी कल्पनाशील मनीषा के पारदर्शी वातायन पर वे जिस भाव-बोध से साक्षात्कार करते हैं, उसे सजीव अभिव्यक्ति दे देते हैं। छिटपुट रचना-बिंदुओं का संख्यांकन न किया जाए, तो उनकी सृजन-शृंखला में पहली कड़ी है 'कालूयशोविलास'। इस प्रथम कृति में भी अनुभव-शिल्प को जिस प्रौढ़ता से निखार मिला है, वह विलक्षण है। शब्द-शिल्प को सतर्कतापूर्वक गढ़ने का प्रयास न होने पर भी इसके शब्द-विन्यास में आभिजात्य सौंदर्य का उभार है। साहित्य जगत की नई विधाओं से अनुबंधित न होने पर भी इससे आविर्भूत नव्यता एक पराकाष्ठा तक पहुंच रही है। सूर्य-रश्मियों की भांति उज्ज्वल और गतिशील इस काव्य-चेतना में एक अनिर्वार आकर्षण है। इस अखंड और समग्र अस्तित्व को आकार देने वाले जीवन-वृत्त का सृजन अंतर्लीनता के दुर्लभ क्षणों में ही संभव है।

'कालूयशोविलास' के सृजन-काल में आचार्यश्री तुलसी अपनी दैहिक चेतना को सर्वथा विस्मृत कर आचार्यश्री कालू के व्यक्तित्व में खो गए। यही कारण है कि आचार्य-पद के विविध-आयामी दायित्व का निर्वहन करते हुए भी उन्होंने चार साल की छोटी-सी अवधि में साहित्य के क्षितिज पर एक अभिनव कृति का अवतरण कर दिया।

श्रेष्ठ कार्यों में अनाहूत बाधा की उपस्थिति स्वाभाविक है। आचार्यश्री की सृजनशीलता में भी एक बड़ी बाधा आई और कम-से-कम एक साल का समय उसके साथ जूझने में पूरा हो गया। वह बाधा कहीं बाहर से नहीं, भीतर से उभरी। उसका हेतु था देह के प्रति रहा हुआ गहरा उपेक्षाभाव।

गर्मी का समय, राजस्थान की तपती दुपहरी और तारानगर-प्रवास में रचनाधर्मिता के बहुमूल्य क्षण। आचार्यश्री भोजन के बाद चार-पांच घंटों तक बराबर लेखन-कार्य में व्यस्त रहते। मस्तिष्क के तंतुओं पर दबाव पड़ा। शरीर का एक पार्श्व कुंठित हो गया। फलतः संवत १९९९ के चूरू चातुर्मास में 'कालूयशोविलास' निर्माण-कार्य की तो बात ही क्या, कई महीनों तक प्रवचन तक स्थगित करना पड़ा। इस तीव्र गत्यवरोध के बावजूद आचार्यश्री अपने संकल्प पर दृढ़ थे और स्वास्थ्य में थोड़ा-सा सुधार होते ही पुनः सृजन-चेतना के प्रति समर्पित हो गए।

आचार्यश्री के शारीरिक अस्वास्थ्य में एक और हेतु की संभावना की जा सकती है, वह है कविता में दग्धाक्षरों का प्रयोग। पूज्य कालूगणी ने सृजनशील साहित्यकारों का निर्माण किया, पर साहित्य का सृजन नहीं किया। क्यों? क्या उनकी सृजन-चेतना पर कोई आवरण था? सृजन की संपूर्ण क्षमताओं की समन्विति में भी कालूगणी के मन में यह बात रमी हुई थी कि कविता में समागत दग्धाक्षर बहुत बड़े अहित का निमित्त बन जाता है। संभावित अहित की कल्पना ने कालूगणी की साहित्यिक प्रतिभा को दूसरा मोड़ दे दिया।

आचार्यश्री तुलसी की साहित्यिक प्रतिभा में प्रारंभ से ही स्फुरणा थी। 'कालूयशोविलास' उसी स्फुरणा की एक निष्पत्ति है। स्फुरणा के अनिरुद्ध प्रवाह में एक पद्य लिखा गया—

गुरु-गुण अगणित गगन-सम, मम मति परिमित मान।
अल्प अनेहा बहु विघन, क्यूं कर ह्वै अवसान।।

काव्यविदों के अनुसार 'अल्प अनेहा बहु विघन' इस प्रयोग में दग्धाक्षर है। प्रारंभ में इस प्रयोग पर ध्यान केंद्रित नहीं हुआ। पर अस्वास्थ्य की गंभीरता

ने इस तथ्य को उजागर किया। फलतः उक्त पद्य को रूपांतरित कर गत्यवरोध को दूर किया गया।

आचार्यश्री अपने इस सृजन को परिपूर्ण नहीं मानते। उनका चिंतन है कि पूज्य गुरुदेव कालूगणी को उनके व्यक्तित्व की गहराइयों में उतरकर ही समझा जा सकता है। उनकी गतिशील चेतना-तरंगों से निर्मित प्रभामंडल अपने आप में विलक्षण था। उस प्रभामंडल के सामने जाते ही व्यक्ति की अस्मिता पानी-पानी होकर बह जाती और वह एक चुंबकीय आकर्षण में बंध जाता। आचार्यश्री तुलसी स्वयं भी कालूगणी के प्रथम दर्शन में अभिभूत होकर उनके प्रति सर्वात्मना समर्पित हो गए।

आचार्यश्री के अभिमत से ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व को समग्रता से अभिव्यक्ति देने का प्रयास एक पंगु व्यक्ति द्वारा पर्वतारोहण कर वहां शयन करने की दुःसंभव कल्पना जैसा है। एक बौना व्यक्ति आकाश को अपनी भुजा से मापना चाहे, एक अज्ञ मनुष्य ग्रह-नक्षत्रों की गणना करना चाहे और कोई समुद्र के झागों को तोलना चाहे तो सफलता नहीं मिल पाती। इसी प्रकार अनेक-अनेक कवि मिलकर भी कालूगणी के यशस्वी जीवन को विश्लेषित नहीं कर सकते। इस कथन में आचार्यश्री की अपनी विनम्रता और ऋजुता का दर्शन है, तो प्रस्तुत कृति में उभरे हुए सजीव बिम्ब कवयिता के सशक्त लेखन और स्फुरणाशील मनीषा के प्रतीक हैं।

'कालूयशोविलास' में हर घटना का चित्रण जितना यथार्थ है, उतना ही अभिराम है। इसको पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो सब कुछ साक्षात घटित हो रहा है। इसके साहित्यिक सौंदर्य में निमज्जित होने पर ऐसा अनुभव होता है, मानो एक तराशी हुई आवृत प्रतिमा का अनावरण हो रहा है अथवा एक सजीव आकृति शब्दों के आवरण को चीर कर बाहर झांक रही है।

रूपांतरण की अनेक प्रक्रियाओं के मध्य से निकलकर 'कालूयशोविलास' अपने इस स्वरूप को उपलब्ध हुआ है। मैंने पहली बार जब इससे साक्षात्कार किया तो अवबोध-अप्रबोध के कई उजालों-अंधेरों में खो गई। सतह पर शब्दों की तूफानी दौड़ और भीतर गहरे में भावना के सुस्थिर महासागर ने मुझे विस्मय-विमुग्ध कर दिया। प्राचीन लिप्यंकन, पुरानी रागिनियों, प्राचीन इतिहास और अतीत के घटना-वृत्तों ने मुझे प्रेरित किया उसके भीतर पैठने के लिए, पर साहस नहीं हुआ। सीमित जानकारी के धरातल पर प्रज्ञा की यात्रा हो भी कैसे सकती है? अरण्यानी में भटकी हुई हरिणी की भांति मैं भी दिग्भ्रांत होकर अपना मार्ग खोज रही थी। आखिर कालूगणी के इस भव्य, सम्मोहक और आदर्श

जीवन-वृत्त में एक प्रवेश-द्वार मिल गया, जिसके पथ-दर्शक स्वयं इसके रचयिता रहे हैं।

मेरी पहली यात्रा एक यंत्रचालित यान की भांति मस्तिष्क की चौखट पर दस्तक दिए बिना ही हो गई। दूसरी यात्रा में आलोक-किरणों का स्पर्श हुआ।

तीसरी और चौथी बार की यात्रा में कुछ आत्मसात जैसा हुआ तो मैंने जिज्ञासा के तटहीन अंतरिक्ष में प्रवेश किया और लेखक द्वारा प्रयुक्त शब्दों की अर्थयात्रा करने का प्रयास किया। किंतु मुझे अनुभव हुआ कि यह भी एक श्रमसाध्य कार्य है।

'कालूयशोविलास' में आचार्यश्री कालूगणी का आभावलय पारिपार्श्विक वृत्त-चित्रों के लिए एक स्वच्छ दर्पण के रूप में आभासित है। आचार्यश्री तुलसी ने जिस दिन इस संबंध में कुछ काम करने का निर्देश दिया, एक अनायास आविर्भूत स्वीकृति ने मुझे इस कर्म के प्रति समर्पित कर दिया। काम शुरू करने से पहले सोचा था कि दो-चार महीनों में इसे निपटा दूंगी। किंतु जब अपनी सीमाओं की ओर झांका, तब अनुभव हुआ कि 'कालूयशोविलास' पर काम करने की चाह विरल पंखों से सीमा-हीन नभ में अवगाहन करने और अथाह क्षीर-सागर को एक सांस में पी जाने की चाह जैसी असंभव कल्पना है। इस दृष्टि से सोचा गया कि समग्रता की अभीप्सा से मुक्त होकर एक बार प्रारंभिक कार्य में संलग्न हो जाना चाहिए, इस निर्णय के साथ ही मैंने आचार्यश्री के आशीर्वाद और मार्गदर्शन, इन दो तटों के बीच बहना शुरू कर दिया।

प्रस्तुत संदर्भ में कृति की समालोचना मेरा उद्देश्य नहीं है, पर जो प्रसंग किसी भी दृष्टि से मन के तारों को झनझना गए, उनकी संक्षिप्त-सी चर्चा करने का लोभ-संवरण मैं नहीं कर सकूंगी।

गुरु-शिष्य का संबंध चेतना के स्तर पर जुड़ता है। इस संबंध की स्वीकृति चेतना-विकास के लिए ही होती है। शिष्य अपने गुरु की प्रत्यक्ष सन्निधि अथवा परोक्ष रूप में उन्हीं से मार्गदर्शन पाकर नई यात्रा शुरू करता है, उस समय उसे सर्वाधिक अपेक्षा रहती है गुरु के वात्सल्य की। वह वात्सल्य कभी-कभी चेतना के स्तर से हटकर देह से अनुबंधित हो जाता है। दैहिक अनुबंध से प्रवाहित स्नेहधारा भी चैतन्य के ऊर्ध्वारोहण में निमित्त बन सकती है। कालूगणी के प्रति मघवागणी के वात्सल्य का एक निदर्शन देखिए—

इक दिन शिशु पड़िलेहण करतो,
दीठो डांफर स्यूं ठंठरतो।
तरुवर-पल्लव ज्यूं थरहरतो।।

शिशु-मुनि के प्रकंपित गात ने आचार्य के मन को प्रकंपित कर दिया। उन्होंने अपनी चद्दर उतारकर मुनि कालू को ओढ़ा दी।

गुरुदेव द्रवित करुणा आणी,
निज गाती शिशु-तन पर ठाणी।
दीन्ही मनु युवपद-सहनाणी।।

शिष्य की प्रज्ञा को स्फुरणा देने के लिए गुरु अपने पुरुषार्थ की सतत-प्रवाही कई धाराएं उस दिशा में मोड़ देते हैं। मघवागणी ने मुनि कालू की वक्तृत्व-कला विकसित करने के लिए जो उपक्रम किए, उसका एक नमूना देखिए–

गुरुदेव स्वयं गाणै री गती सिखाता
बोलण री विध, व्याख्या री कला बताता।
खुद अर्थ करी कालू मुख ढाळ गवाता,
निर्माण शिष्य रो निज कर्तव्य निभाता।।

मुनि कालू ने मघवागणी की सन्निधि में अनिर्वचनीय आत्मीय भाव का अनुभव किया। जिस क्षण क्रूर काल ने आत्मीय अनुबंधों की उस रजत-रज्जु को एक झटके से तोड़ा, उस समय मुनि कालू के कोमल मन पर तीव्र आघात हुआ। उनकी विरह-व्यथित मनःस्थिति के गवाक्ष में झांकिए–

नेहड़लां री क्यारी रो म्हांरी रो के आधार?
सूक्यो सोतो जो इकलोतो सूनो-सो संसार।
आ इकतारी थांरी म्हांरी सारी ही विसार।
कठै क्यूं पधार्‌या म्हांरी हृत्तंत्री रा तार!

'कालूयशोविलास' के चरितनायक अपने आप में एक काव्य, उपन्यास या इतिहास थे। आचार्यश्री तुलसी ने अपनी प्रतिभा-प्रभा से आलोकित कर उस काव्य या इतिहास को अमरत्व दे दिया। कवि की लेखनी का स्पर्श पाए बिना कोई भी व्यक्तित्व निर्बाध रूप से प्रवाहित हो नहीं सकता। आचार्यश्री की लेखनी में एक ओर जहां सुललित शब्द-प्रवाह है, वहां भाव-पक्ष की रस-प्रवणता भी कम लुभावक नहीं है। पूज्य कालूगणी के पदारोहण के समय कवयिता उनके मुखारविन्द को चंद्रमा से उपमित कर नई प्रच्छादनिका में छिटकती हुई धवल-धवल चांदनी की आभा देखते हैं–

सघन सुकृत सम सिततम प्रवर पछेवड़ि एक।
मुनिवर प्रधरावी नवी कीन्हो पद-अभिषेक।।
डीले डपटी दुपटी दीपै धवल प्रकाश।
पूज्य-वदन रयणी-धणी प्रकटी ज्योत्स्नाभास।।

आचार्यश्री तुलसी ने अपने लेखन को शाब्दिक चमत्कार की सीमा से ऊपर उठाकर सैद्धांतिक और सांस्कृतिक परिवेश में प्रस्तुति देने का सलक्ष्य प्रयास किया है। एक निदर्शन देखिए–

अष्ट कर्म अरि-दल दली, हो अष्टम गुणठाण।
अष्ट इला-तल ऊपरे, अष्ट महा-गुण-ठाण।।
गंतुमना सुमना सदा, अष्ट मातृपद-लीन।
महामना मथ अष्ट मद, अष्टम पद आसीन।।
अष्ट सिद्धि आगम-कथित, अष्ट आप्त परिहार्य।
अष्ट रुचक रुचिकर तिणै, अष्ट अंक अविकार्य।।

उक्त पद्यों में तत्त्व-निरूपण के साथ आठ-आठ बातों की जो संयोजना की गई है, वह विलक्षण प्रतिभा की परिचायक है।

तीसरे उल्लास की छठी, सातवीं और आठवीं गीतिका में सैद्धांतिक चर्चा को जिस सहजता और सरलता से प्रस्तुत किया गया है, वह पाठक की सैद्धांतिक मनीषा को स्फुरणा देने वाली है।

कवि की जीवन-यात्रा निरंतर गतिशील यायावर की जीवन-यात्रा है। यात्रा अनुभव-वृद्धि का सशक्त माध्यम है। यात्राकाल में अनेक प्रकार के लोगों से संपर्क होता है। कवि स्वयं संत-परंपरा के संवाहक हैं, अतः वे अपने समय के संत-संन्यासियों का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं–

कइ भस्म-विलेपित गात्रा, शिर जटाजूट बेमात्रा।
मृग-छाल विशाल बिछावै, मुख सींग डींग संभलावै।।
बाबा बाघंबर ओढ़ै, गंगा-जमना-तट पोढ़ै।
कइ न्हा-धो रहै सुचंगा, कइ नंगा अजब अडंगा।।
कइ पंचाग्नी तप तापै, जंगम थावर संतापै।
ऊंचै स्वर धुन आलापै, कइ जाप अहोनिश जापै।।
कइ ऊं हरि-ऊं हरि बोलै, उदरंभरि मौन न खोलै।
कइ डगमग मस्तक डोलै, भव-वारिधि ज्यान झकोलै।।

तीर्थंकरों की वाणी का प्रभाव अनुपमेय होता है। हजारों प्रयत्नों से जो काम संभव नहीं होता, वह तीर्थंकरों के समवसरण में सहज रूप से घटित हो जाता है। जन्मजात शत्रुभाव रखने वाले प्राणी भी वहां मैत्री की धारा में बह जाते हैं। तीर्थंकरों के इस अतिशय को रूपायित करते हुए कवि ने लिखा है–

ईभारी छारी अहो, वारि पिये इक घाट।
मञ्जारी मूषक मिलै, खिलै प्रेम की बाट।।
अश्व-महिष अहि-नकुल किल, हिलमिल करत मिलाप।
जिनवाणी रो ही सकल, अद्‌भुत प्रौढ़ प्रताप।।

कृति में एक ओर कवित्व का उत्कृष्ट निखार है तो दूसरी ओर पात्रों के अनुरूप साधारण बोलचाल की भाषा के प्रयोग अत्यंत मनोहारी हैं। माता-पुत्र का यह संवाद कितना सुरुचिपूर्ण और हृदयग्राही है–

मां! ओ तन सुकुमार, चरण कमल कोमल अतुल।
पय अलवाण विहार, परम पूज्य क्यूंकर करै?
जम्पै जननी जात! पूज्य भाग्यशाली प्रवर।
पग-पग पर प्रख्यात, पुण्यवान रै नौ निधि।।
मैं पूछ्यो ए मां! आं पूजी म्हाराज रै।
चेहरै री आभा, पळपळाट पळपळ करै।।
बोलै मां, बेटा! के बातां आंरी करां।
पुनवानी के ठा कठै किती संचित करी।।

× × ×

कुण होसी पाछै, आं पूजी म्हाराज रै?
उत्सुकता आ छै, मनै बता दै मावड़ी!
बोली तड़ाक दे'र, लाल आंख कर मां मनै।
खबरदार है फेर, इसी बात कब ही करी।।
तपो दिवाली कोड़, आपां रा अै पूज्यजी।
मेटो खलता-खोड़, सारां री शासणपती।।

'कालूयशोविलास' की भाषा संस्कृतनिष्ठ राजस्थानी है। कवि के मस्तिष्क में अपने कार्यक्षेत्र और चिंतन की भांति भाषागत संकीर्णता भी नहीं है। इसलिए जोधपुरी, उदयपुरी, बीकानेरी, हरियाणवी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं के प्रयोग भी राजस्थानी भाषा को समृद्धि दे रहे हैं।

छहों उल्लासों के प्रारंभिक पद्य विषयवस्तु और भाषा दोनों दृष्टियों से विलक्षण हैं। इससे रचनाशैली में द्विरूपता परिलक्षित होती है। शैली-भेद की इस समस्या को समाहित करने के लिए ही संभवतः उनको मंगल वचन के रूप में भिन्न प्रस्तुति दी गई है। इससे भाषा, शैली और वर्णनगत द्वैध भी कृति को विशेष सौन्दर्य देता हुआ प्रतीत होता है।

शब्दों की शक्ति सीमित है, फिर भी वे असीम भावबोध का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक शब्द अनेक अर्थों का वहन करता है। लेखक किस शब्द को किस भावबोध के साथ योजित करता है, यह उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। 'कालूयशोविलास' में द्व्यर्थक शब्दों के प्रयोग कवि के समृद्ध शब्दकोश के परिचायक हैं। एक प्रसंग देखिए—

कोण सुवर्ण सुवर्ण स्वरूपे कुण धत्तूर तरूड़ो?
कुण आदित्य अर्क अभिधाने अर्कपत्र कुण रूड़ो?
एक पंचशिख सिंह शार्दूलो गिरि-निकुंज में गूंजै।
एक भूप रो गुनहगार सिर जूत फड़ाफड़ जूंझै।।
कुण मातंग इन्द्र ऐरावत और श्वपच इक नामै।
लोकनाथ तत्पुरुष बहुब्रीहि अंतर भू-नभ सामै।।

शब्दचित्र के माध्यम से एक व्यक्तित्व की वृत्तशृंखला का संयोजन करना कवि का मूलभूत उद्देश्य रहा होगा। पर इस कृति में मानव-स्वभाव और प्राकृतिक सौन्दर्य के जो बिम्ब उभरे हैं, उन्हें पढ़कर न आंखें थकती हैं और न मन भरता है। अरावली पर्वतमाला पर फूलाद की चौकी का जो वर्णन है, वह प्रकृति-चित्रण के साथ भाषा की दृष्टि से भी एक नया प्रयोग है।

ऋतुवर्णन काव्य का एक विशेष अंग है। उसे खींचकर लाया जाए तो वह अप्रासंगिक-सा लगता है। प्रस्तुत कृति में ग्रीष्म, बसन्त, शीत आदि ऋतुओं का जो सहज वर्णन हुआ है, वह इस जीवनवृत्त को काव्य के कमनीय धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है।

कवि प्रकृति के परम उपासक हैं। वे अपने सृजन में तथ्यों की सजीव प्रस्तुति के साथ कल्पक मनीषा की यात्रा को भी सहमति देते रहे हैं। यही कारण है कि उन्होंने मर्यादा-महोत्सव जैसे यथार्थ को छहों ऋतुओं के रूप में परिकल्पित कर अपने शिल्प को मौलिक बना दिया। वर्षाऋतु से रूपायित मर्यादा-महोत्सव का स्वरूप देखिए—

गंगा जमना और सुरसती उछल-उछल कर गळै मिलै,
विरह-ताप-सन्ताप भुलाकर रूं-रूं हर्षांकूर खिलै।
गहरो रंग हृदय में राचै, नाचै मधुकर जिधर निहारो,
तेरापंथ पंथ रो प्रहरी, म्हामोच्छब लागै प्यारो।।

शारदीया पूर्णिमा की चांदनी में प्रवासी हंस मानसरोवर लौट आते हैं। हंसोपम साधु-साध्वियां शरदोपम मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर गुरुकुलवास में पहुंचकर कैसे अनिर्वचनीय तोष का अनुभव करते हैं–

बण्या प्रवासी श्रमण-सितच्छद गुरुकुल-मानस मौज करै,
परम कारुणिक कालू-वदन-सूक्त मुक्ताफल भोज वरै।
नहिं सरदी-गरमी रो अनुभव, साक्षात शरद वरद वरतारो,
तेरापंथ पंथ रो प्रहरी म्हामोच्छब लागै प्यारो।।

'कालूयशोविलास' के चरितनायक, प्राणहारी व्रण-वेदना को प्रतिहत नहीं कर पाए, फलस्वरूप अंतश्चेतना के सतत जागरण की स्थिति में भी उनकी शरीर-चेतना के ओज पर कुहरा छाने लगा। उस समय कवि की मनःस्थिति को उन्हीं के शब्दों में देखिए–

आज म्हांरै गुरुवर रो लागै अंग अडोळो।
सदा चुस्त-सो रहतो चेहरो सब विध ओळो-दोळो।।
कुण जाणी व्रण-वेदन वेरण दारुण रूप बणासी,
सारै तन में यूं छिन-छिन में अपणो रोब जमासी।
ओ उणिहारो रे जाबक पड़ग्यो धोळो।।

इस प्रसंग का समूचा वर्णन इतना सजीव और द्रावक है कि पढ़ते-पढ़ते आंखें नम हो जाती हैं।

काव्य की किशलय काया अलंकारों से विभूषित होकर अपने सौंदर्य को अतिरिक्त निखार देने में सक्षम हो जाती है। छन्द, रस, अलंकार आदि के समुचित समन्वयन से आबद्ध सुललित और रसीले शब्द जब भाव-भूमि पर अंकित होते हैं तो अपने पाठक को विमुग्ध कर देते हैं। आचार्यश्री की कृतियों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक आदि अलंकार एक-दूसरे से आगे दौड़ रहे हैं, तो अनुप्रास अलंकार एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत है। इस प्रस्तुति के उत्कर्ष में आचार्यश्री का शब्द-शिल्प भावना की लहरों पर अठखेलियां करता हुआ प्रतीत हो रहा है। कुछ निदर्शन देखिए–

कालू शासन-कल्पतरु, कालू कला-निधान।
कालू कोमल कारुणिक, कालू गण की शान।।

मघवागणी का साया उठ जाने पर कालूगणी की मनःस्थिति का चित्रण उत्प्रेक्षा अलंकार में उभर रहा है–

पलक-पलक प्रभु-मुख-वयण-स्मरण-समीरण लाग।
छलक-छलक छलकण लग्यो कालू हृदय-तड़ाग।।

उपमा और उत्प्रेक्षा के मध्य झांकता हुआ स्याद्वाद का निरूपण देखिए–

स्वंगी सतभंगी सुखद सतमत संगी-हेत।
व्यंगी एकांगी कृते झंगी-सो दुख देत।।
इतर दर्शणी कर्षणी नय-वणिज्य-अनभिज्ञ।
विज्ञ वणिग जिन-दर्शणी नय दुर्णय-विपणिज्ञ।।

डिंगल कविता से प्रभावित 'कालूयशोविलास' के एक प्रसंग में अनुप्रास की छटा उल्लेखनीय है–

खिलक्कत कित्त कुरंग सियाल,
मिलक्कत मांजर मोर मुषार।
सिलक्कत सांभर शूर शशार,
ढिलक्कत ढक्कत ढोर ढिचार।।

संघीय-संपदा-वर्णन के प्रसंग में साध्वियों से संबंधित एक पद्य पढ़िए–

संयम-रंगे रंगिणि चंगिणि सज्ज मतंगिणि चाल।
शील सुरंगिणि उज्ज्वल अंगिणि लंघिणि जग-जंबाल।।

आचार्यश्री तुलसी एक बृहत्तर धर्मसंघ के आचार्य हैं, साधक हैं, लेखक हैं, कवि हैं, वक्ता हैं और उससे भी अधिक एक समर्पित व्यक्तित्व हैं। समर्पण का संबंध भाव-प्रवणता से है। भावना स्त्री-हृदय की कोमल उर्वरा में अंकुरित होती है। पुरुष-हृदय की परुषता में समर्पण का बीज-वपन ही कठिन है, अंकुरण की तो बात ही दूर। किंतु आचार्यश्री की अंतश्चेतना पर समर्पण का जो पल्लवन हुआ है, वह एक विशेष घटना है। आचार्यश्री का समर्पण-भाव देखकर यह संदेह सावकाश हो जाता है कि एक स्त्री में भी इतना समर्पण होता है या नहीं?

अपने जीवन-निर्माता आचार्य के प्रति इतनी विनम्रता! इतनी कृतज्ञता! इतनी गुण-ग्राहकता! पता नहीं, यह वृत्ति साधना की निष्पत्ति है या सहज प्रकृति है? कुछ भी हो, यह वृत्ति पाठक को भी समर्पण का दिशा-संकेत देती है। युवाचार्य पद-प्रदान के उस ऐतिहासिक प्रसंग में आचार्यश्री कालूगणी की निष्कारण करुणा से अभिभूत आचार्यश्री तुलसी की भावनात्मक गहराई में झांकिए–

पद युवराज रिवाज साझ सब मुझ नै दीधो स्वामी।
रजकण नै क्षण में मेरू बणवायो अंतर्यामी।।
जल-बिंदू इन्दूज्ज्वल मानो शुक्तिज आज सुहायो।
बो मृत्पिण्ड अखण्ड पलक में कामकुम्भ कहिवायो।।

× × ×

साधारण पाषाण शिल्पि-कर दिव्य देवपद पायो।
किं वा कुसुम सुषमता-योगे महिपति-मुकुट मढायो।।
मृन्मय रत्न प्रयत्न-प्रयोगे शाण-पाण सरसायो।
बिंदु सिंधुता रो जो उपनय साक्षात आकृति पायो।।
लोह-कंचन-करणारो पारस ग्रंथ-ग्रंथ में गायो।
पर पारस-करणारो पारस आज सामनै आयो।।

छठे उल्लास की तेरहवीं गीतिका में धर्मसंघ के आचार्य और उनके अनुयायियों तथा गुरु-शिष्यों के आंतरिक मधुर संबंधों को जो सरस और साहित्यिक अभिव्यक्ति मिली है, वह अपूर्व है। विरह के मंच पर अतीत की सुखद स्मृतियों का मंचन गेय काव्य को श्रव्य से भी अधिक दृश्य जैसी अनुभूति में ढाल देता है।

उल्लासोत्तर पांच शिखाओं में कालूगणी की संक्षिप्त जीवन-झांकी के साथ संस्मरणों की लंबी शृंखला इतिहास के अनेक आवृत रहस्यों को खोल रही है। इसमें अनेक घटनाएं ऐसी हैं, जिनकी जानकारी एकमात्र आचार्यश्री को ही है। साहित्यिक अवतरण के अभाव में उनके लोप की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता था, पर अब उन सबको पूरा संरक्षण उपलब्ध हो गया है।

आचार्यप्रवर की परिपक्व लेखन-चेतना से निष्पन्न 'कालूयशोविलास' हमारे धर्मसंघ की एक अमूल्य थाती है। अतिरंजन-मुक्त मानवीय मूल्यों से अनुबंधित यह सृजन अनेक सृजनशील चेतनाओं को नई स्फुरणा देने में सक्षम है। इसकी अपूर्ण यात्रा में भी मुझे विचित्र संतृप्ति का अनुभव हुआ है। इसके स्वाध्याय में निमज्जित चेतना को अपरिसीम आनन्द की अनुभूति हुई है। इस अनुभूति में भी प्रस्तुत कृति के स्रष्टा आचार्यश्री तुलसी की करुणा ने काम किया है।

इस संदर्भ में कवि की निम्नोक्त संवेदना यथार्थ प्रतिभासित हो रही है–

सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः,
संभावना-गुणमवेहि तमीश्वराणां।
किं वा भविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता,
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्।।

महान व्यक्तियों द्वारा महत्तर कार्यों में नियुक्त सामान्य व्यक्ति भी सफल हो जाते हैं, वह सारी क्षमता उन विशिष्ट व्यक्तियों की ही होती है। यदि सूर्य अपने सारथि अरुण को आगे नहीं करता तो क्या वह अंधकार को दूर करने में सक्षम हो सकता था?

परमाराध्य आचार्यप्रवर के असीम अनुकंपन ने मुझे गति दी और 'कालूयशोविलास' के उत्तरकार्य में संपृक्त होकर मैंने आत्मतोष का अनुभव किया। परिशिष्ट के घटना-प्रसंगों में मेरी जानकारी के परिपूर्ण स्रोत स्वयं आचार्यश्री हैं। कुछ अन्य विरल स्रोतों से भी मैंने अपनी अनभिज्ञता को कम करने का प्रयास किया है। प्रूफ-निरीक्षण आदि कार्यों में अनेक साध्वियों ने पूरी तन्मयता से अपना योग दिया है। उन सबके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन की औपचारिकता को छोड़कर मैं यह शुभाशंसा करती हूं कि आचार्यप्रवर का कर्तृत्व हम सबको अपने संपर्क में लेकर हमारी कर्मशीलता को निरंतर गतिशील करता रहे।

सरदारशहर
२ सितम्बर, १९७६

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

कथावस्तु

तेरापंथ धर्मसंघ के आठवें आचार्यश्री कालूगणी का जन्म राजस्थान के छोटे से गांव छापर (चूरू) में हुआ। वे अपने पिता मूलचन्दजी कोठारी और माता छोगांजी के इकलौते पुत्र थे। जन्म के एक साल बाद ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया और पुत्र के लालन-पालन का सारा दायित्व माता छोगांजी पर आ गया। छोगांजी अपने नयनों के तारे पुत्र के साथ पिता के घर रहने लगीं। वहां साधु-साध्वियों के संपर्क से उनके अंतःकरण में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। मां के विचारों का प्रतिबिम्ब पुत्र के जीवन पर पड़ा और वह भी भौतिक परिवेश से दूर हटकर आत्मोदय के स्वप्न देखने लगा।

पूज्य कालूगणी के दो नाम थे—शोभाचंद और कालू। उनकी प्रसिद्धि दूसरे नाम से ही अधिक थी। आठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने वि. सं. १९४१, सरदारशहर में तेरापंथ संघ के पांचवें आचार्यश्री मघवागणी के प्रथम बार दर्शन किए। उनका भावुक मन अभिभूत हुआ और वह शीघ्र ही मघवागणी की सन्निधि पाने के लिए उतावला हो उठा। तीन वर्ष तक संस्कारों को विशेष पोषण देने के बाद वे अपनी माता श्री छोगांजी और मासी-दुहिता कानकुमारीजी के साथ बीदासर में पूज्य मघवागणी के कर-कमलों से दीक्षित हो गए।

मघवागणी अपने शैक्ष शिष्य कालू की असाधारण योग्यता और स्थिर प्रज्ञा से प्रभावित हुए। शिष्य को तैयार करने के लिए उन्होंने अथक प्रयास किया तो कालूगणी ने भी अपने आपको मघवागणी के अनुरूप ढालने का ठोस प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि कालूगणी मघवागणी की प्रतिकृति बन गए।

शिष्य गुरु की मंगलमय छत्रछाया में अपनी क्षमताओं का विकास करने में संलग्न था। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि जिस महान वृक्ष के सहारे उसकी जीवन-लता ऊपर चढ़ रही है, वह असमय में ही गिर पड़ेगा। किंतु किसी का सोचा हुआ कब पूरा होता है? मघवागणी ने माणकगणी को अपना उत्तराधिकार

सौंपकर इस जीवन की यात्रा को संपन्न कर लिया। इस कल्पनातीत आघात को सहने की तैयारी मुनि कालू की नहीं थी। उनका व्यथित होना स्वाभाविक था। फिर भी सोलह वर्षीय किशोर मुनि ने गुरु-वियोग के उन क्षणों में समुद्भूत व्यथा को धैर्य से पी लिया और माणकगणी के संरक्षण में अपने आपको संतुलित कर लिया।

मुनि-जीवन के प्रथम पांच वर्षों में मघवागणी की उपासना कर मुनि कालू माणकगणी को उन्हीं की प्रतिछाया समझकर आगे बढ़ने लगे। पांच वर्ष की अवधि संपन्न हो, उससे पहले ही माणकगणी को काल के क्रूर हाथों ने उठा लिया। मुनि-जीवन के एक दशक में इन दो बड़े आघातों ने मुनि कालू को आत्मनिर्भर बना दिया।

माणकगणी अपने पीछे संघ को कोई व्यवस्था नहीं द गए। एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नचिह्न को विराम में परिणत करने के लिए धर्मसंघ के सदस्यों ने सर्वसम्मति से डालगणी का नाम प्रस्तावित किया। अनिश्चित भविष्य को एक आलम्बन उपलब्ध हो गया। माणकगणी और डालगणी के अंतरिम काल में मुनि कालू ने जिस सूझबूझ, कर्तव्यनिष्ठा और दक्षता का परिचय दिया, वह तेरापन्थ के इतिहास का एक अविस्मरणीय पृष्ठ है।

डालगणी के बाद तेरापंथ संघ के गरिमापूर्ण आचार्य पद का भार संभाला आचार्यश्री कालूगणी ने। कालूगणी का समय तेरापंथ संघ के लिए अभूतपूर्व प्रगति का समय था। उनके नेतृत्व में प्रगति के बहुमुखी आयामों का उद्घाटन हुआ। साधु-साध्वियों की संख्या में वृद्धि, विहार-क्षेत्र का विस्तार, कार्यक्षेत्र का विस्तार, जन-संपर्क का विस्तार, पुस्तक-भंडार की समृद्धि, हस्तकला का विकास, शिक्षा का विकास आदि अनेक बिंदु संघ-सागर में समर्पित होकर व्यापक रूप से अभिव्यक्ति पाने लगे।

आचार्यश्री कालूगणी एक यशस्वी, वर्चस्वी और ओजस्वी व्यक्तित्व के आधार थे। उनके प्रभाव और पुण्यवत्ता ने विरोधियों को भी अभिभूत कर लिया। उनके शासनकाल में जो सामाजिक और सांप्रदायिक संघर्ष हुए, उनमें भी उनकी सहनशीलता, दूरदर्शिता तथा शान्तिप्रियता को उन्मुक्तभाव से निखरने का अवकाश मिला।

अपने जीवन के सान्ध्यकाल में कालूगणी अरावली की घाटियों में परिव्रजन करते हुए मालवा पहुंचे। वहां से गंगापुर चातुर्मास हेतु लौटते समय उनके बाएं हाथ की अंगुली में एक छोटा-सा व्रण उभरा। व्रण की जटिलता बढ़ी, पर उसकी प्राणहारी वेदना के क्षणों में भी आप खिलते हुए सुमनों की भांति मुसकराते रहे।

व्रण की भयंकरता देखकर डॉक्टर-वैद्यों ने उचित चिकित्सा का परामर्श दिया, पर उनकी दृढ़ संकल्प-शक्ति और अननुमेय मनोबल ने उस परामर्श को ठुकरा दिया। उत्तरोत्तर गिरते हुए स्वास्थ्य ने उनको अपने संघीय दायित्व के प्रति जागरूक कर दिया। चिरकाल से पालित अपनी धारणा को संघीय मुद्रा से अभिमंत्रित करने के लिए उन्होंने अपने उत्तराधिकार-पत्र में आचार्यश्री तुलसी का नाम अंकित कर युवाचार्य पद प्रदान के ऐतिहासिक निर्णयक्रम का क्रियान्वयन किया।

अपने अंतिम समय में कालूगणी ने शान्त मन से आत्मा और शरीर की विवेकख्याति का अनुभव किया। ऊर्ध्वारोहित भावधारा के उन क्षणों में उनके मुखारविन्द की दीप्ति उन सबको दीप्त कर रही थी, जो उनके दाएं-बाएं खड़े होकर उस आभामंडल को निहार रहे थे।

वीर माता छोगांजी ने अपने पुत्र के महाप्रयाण का संवाद सुना। एक बार मन आहत हुआ, पर शीघ्र ही जागतिक यथार्थता ने उनको अनित्य और एकत्व भावना से भावित कर दिया। मातुश्री की तत्कालीन मनःस्थिति उनके अपने लिए ही नहीं, हजारों-हजारों श्रद्धालुओं के लिए भी सशक्त आलम्बन बनी।

'कालूयशोविलास' का यह संक्षिप्त रेखाचित्र कालूगणी के जीवन से संबंधित अनेक संस्मरणों, ऐतिहासिक संदर्भों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों की सूचना मात्र है। इसके छह उल्लास (विभाग) हैं। प्रत्येक उल्लास में छह कलाओं के अंतर्गत सोलह-सोलह गीतों का आकलन है। उल्लासों की सम्पन्नता पर पांच विशेष गीतों को पांच शिखा के रूप में संयोजित किया गया है। कुल मिलाकर १०१ गीतों से संवलित यह काव्य कालूगणी के जीवन की सजीव अभिव्यक्ति है।

उल्लास-परिचय

प्रथम उल्लास

प्रथम उल्लास का प्रारंभ प्रस्तुति से हुआ है। पर इसका सम्बन्ध कालूयशोविलास के रचनाकाल से नहीं, सम्पादन के समय से है। प्रस्तुति के बाद संस्कृत भाषा के दो श्लोकों द्वारा पूज्य कालूगणी की स्तुति या स्मृति की गई है। उल्लास के प्रारंभ में आठ दोहे हैं, जो ग्रन्थकार ने आदि मंगल के रूप में प्रस्तुत किए हैं। इन दोहों की रचनाशैली पूरे उल्लास से भिन्न है। यह क्रम छहों उल्लासों में एक समान है। इन दोहों में ग्रन्थकार की कल्पनाप्रवणता और प्रतिभा की प्रखरता ने संश्लिष्ट होकर विलक्षण रूप धारण कर लिया, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रथम उल्लास के मंगल वचन में पहले ऋषभनाथ, शान्तिनाथ और महावीर, इन तीन तीर्थंकरों को वन्दन किया गया है। उसके बाद आचार्य भिक्षु और उनकी परम्परा के आठवें आचार्य कालूगणी का स्मरण है। कालूयशोविलास की रचना निर्विघ्न सम्पन्न हो, इस उद्देश्य से तीर्थंकरों और आचार्यों का स्मरण आदि मंगल के रूप में किया गया है।

प्रत्येक उल्लास में सोलह गीत हैं। प्रथम उल्लास के प्रथम गीत के प्रारम्भिक पद्यों में पूज्य कालूगणी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व की संक्षिप्त-सी सूचना है। गीत का प्रारंभ भौगोलिक परिवेश की सूचना के साथ हुआ है। पारिवारिक परिचय, कालूगणी का जन्म और जन्मकुंडली का उल्लेख इसी गीत में है।

कालूगणी के जन्म की तीसरी रात में एक दानव का उपद्रव और मां छोगां के साहस की कहानी के साथ दूसरे गीत का प्रारम्भ हुआ है। नामकरण संस्करण, पिता का वियोग, माता छोगांजी का पिता के घर प्रवास, साधु-साध्वियों का सम्पर्क, वैराग्य का उद्भव, पूज्य मघावागणी के दर्शन, दीक्षा की प्रार्थना, दीक्षा का कल्प नहीं होने से धार्मिक अध्ययन कराने के लिए साधु-साध्वियों को विशेष निर्देश, मघवागणी के जोधपुर और उदयपुर चातुर्मासों की सूचना, साध्वीप्रमुखा गुलाबांजी

के स्वर्गवास तथा लाडनूं में पुनः गुरुदर्शन का वर्णन दूसरे गीत में उपलब्ध है।

तीसरे गीत में वि.सं. १९४४ मघवागणी के बीदासर चातुर्मास, कालूगणी को दीक्षा आदेश, दीक्षा से पूर्व सांसारिक महोत्सव, माता और मासी-सुता के साथ संयम रत्न की उपलब्धि, मघवागणी के कर-कमलों से प्रथम ग्रास और चार मास से होनेवाली बड़ी दीक्षा आदि का विवेचन है।

चतुर्थ गीत में मघवागणी की बीकानेर यात्रा, उनके सरदारशहर एवं लाडनूं के चातुर्मास, कालूगणी द्वारा संस्कृत भाषा और लिपिकला सीखने का प्रारंभ, मघवागणी की मधुर शिक्षाएं और उनका असीम वात्सल्य, जयपुर यात्रा, रतनगढ़ का चातुर्मास, सरदारशहर का प्रवास, मघवागणी की अस्वस्थता, कालूगणी को व्याख्यान कला का प्रशिक्षण, उनके प्रति प्रवर्धमान विश्वास, युवाचार्य माणक की नियुक्ति और मघवागणी के महाप्रयाण का वर्णन है।

पांचवें गीत का प्रारंभ मघवागणी के स्वर्गारोहण के बाद कालूगणी की मनोदशा के भावपूर्ण विश्लेषण के साथ हुआ है। आचार्यश्री तुलसी ने उस स्थिति का ऐसा सजीव चित्र खींचा है कि पाठक स्वयं विरह-व्यथा का अनुभव करने लगता है। प्रस्तुत गीत के अग्रिम भाग में माणकगणी के चारवर्षीय शासनकाल की संक्षिप्त झांकी और संघ की भावी व्यवस्था करने से पहले ही उनके महाप्रयाण का वर्णन है।

तेरापंथ संघ में एक आचार्य का नेतृत्व है। आचार्य स्वयं अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन करते हैं। माणकगणी इस महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह किए बिना ही दिवंगत हो गए। आचार्य के बिना संघ की क्या स्थिति होती है? उसका संकेत, गुरुकुलवासी साधुओं की जागरूकता, अन्य सम्प्रदायों के लोगों की तीखी प्रतिक्रिया, चातुर्मास के बाद लाडनूं में साधु-साध्वियों का मिलन, अन्तरिम काल में कालूगणी का कर्तृत्व, कालूजी स्वामी का संघ में स्थान, उनके द्वारा साधुओं की सभा में भावी आचार्य की मांग, सन्तों द्वारा उनको यही अनुरोध और कालूजी स्वामी द्वारा डालगणी के नाम की घोषणा का सजीव वर्णन छठे गीत में उपलब्ध है।

कच्छ की यात्रा से लौटते समय डालगणी को जोधपुर के आसपास तेरापंथ के नए इतिहास की सूचना मिली। आचार्य पद के लिए अपने नाम की घोषणा उन्हें कुछ अटपटी-सी लगी। उनकी यात्रा की मंजिल थी लाडनूं। वहां पूरा धर्मसंघ उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वे लाडनूं पहुंचे। माघ कृष्णा द्वितीया को उनका विधिवत आचार्य पद पर आरोहण हुआ। उनके व्यक्तित्व की संक्षिप्त सूचना के साथ बीदासर में उनका प्रथम मर्यादा-महोत्सव, महोत्सव के अवसर पर संघ की सारणा-वारणा के दौरान अन्तरिम काल की जांच-परख, मुनि मगनलालजी के मुख से एक रहस्य

का उद्घाटन, कालूगणी के साथ संक्षिप्त बातचीत, डालगणी की मरुधर एवं मेवाड़ यात्रा, थली संभाग में पुनरागमन आदि अनेक बिन्दुओं का विवेचन प्रस्तुत उल्लास के आठवें गीत में उपलब्ध है।

नौवां गीत डालगणी के चूरू-प्रवास में कालूगणी के संस्कृत विद्याभ्यास से शुरू हुआ है। चूरू के श्रावक रायचन्दजी सुराणा सहज ही विद्यारसिक थे। पंडित घनश्यामदासजी से उनका अच्छा परिचय था। रायचन्दजी की प्रेरणा से उन्होंने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया तो जैन साधुओं से द्वेष रखने वाले कुछ व्यक्तियों ने उनको बहकाने का बहुत प्रयास किया। किन्तु पंडितजी भ्रान्त नहीं हो पाए। संस्कृत व्याकरण के साथ कालूगणी ने शब्दकोश अभिधान-चिन्तामणि तथा नन्दी, उत्तराध्ययन आदि आगमों को भी कंठस्थ किया। कालूगणी बारह वर्षों तक डालगणी के सान्निध्य में रहे। अपनी चर्या और कर्तव्य के प्रति उनकी जागरूकता बेजोड़ थी। डालगणी जैसे कठोर अनुशास्ता के मन को जीतना बहुत कठिन होता है, पर कालूगणी इसमें पूर्ण सफल रहे। वि.सं. १९५६ से १९६६ तक मध्याह्नकालीन व्याख्यान कालूगणी ने दिया। इस प्रकार कालूगणी के अध्ययन और डालगणी के सान्निध्य में उनके कर्तृत्व का परिचय प्रस्तुत गीत में मिलता है।

तेजस्वी और यशस्वी व्यक्तित्व के स्वामी भी रोग से आक्रान्त होकर अपने मन के अनुकूल काम नहीं कर सकते, इसका उदाहरण है डालगणी के जीवन का सान्ध्यकाल। आखिरी दो वर्षों का समय उन्होंने लाडनूं में बिताया। वहां से विहार कर निकटवर्ती क्षेत्रों का स्पर्श करने की तीव्र इच्छा होने पर भी बीमारी ने उनको इतना अक्षम बना दिया कि विहार नहीं हो सका।

इधर स्वास्थ्य की गंभीर स्थिति, उधर संघ की भावी व्यवस्था। मुनिश्री मगनलालजी, साध्वीप्रमुखा जेठांजी, कालूरामजी जम्मड़ (सरदारशहर) आदि ने विनम्रता के साथ डालगणी का ध्यान आकृष्ट किया। डालगणी ने रूपचन्दजी सेठिया (सुजानगढ़) को याद किया। उनसे परामर्श करने के बाद डालगणी ने लेखन-सामग्री मंगवाई। वि.सं. १९६६, प्रथम श्रावण कृष्णा एकम के दिन डालगणी ने युवाचार्य-पत्र लिखा और उसे लिफाफे में बन्द कर पूठे में रख दिया।

सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद साधुओं की गोष्ठी बुलाकर डालगणी ने बता दिया कि उन्होंने संघ की भावी व्यवस्था कर दी है। युवाचार्य-पत्र में किसका नाम लिखा गया है ? इस जिज्ञासा के समाधान में डालगणी ने कहा—'गुरुकुलवास में जितने साधु हैं, उनमें से एक का चयन कर मैंने उसका नाम पत्र में अंकित कर दिया। पर इस रहस्य का उद्घाटन किसी के सामने नहीं करना है। युवाचार्य का पत्र लिखा जा चुका है, इतनी-सी बात बताई जा सकती है।'

डालगणी ने अपने युवाचार्य को न कभी महत्त्व दिया, न प्रशिक्षण दिया और न विशेष दायित्व सौंपा, जिससे किसी को थोड़ा भी अहसास हो सके। डालगणी के विशेष कृपापात्र लाडनूं के ठाकुर आनन्दसिंहजी के अतिरिक्त उन्होंने जीवनभर इस रहस्य को गुप्त ही रखा। डालगणी ने ऐसा क्यों किया ? यह प्रश्न स्वयं ग्रन्थकार ने उपस्थित किया है। इस सन्दर्भ में डालगणी द्वारा कालूगणी के मूल्यांकन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों की सूचना देते हुए निष्कर्ष निकाला गया है कि इसमें डालगणी की विलक्षण काम करने की मनोवृत्ति ही मूलभूत कारण है। इस रोचक वर्णन को दसवें गीत में पढ़ा जा सकता है।

ग्यारहवें गीत में डालगणी के स्वास्थ्य की स्थिति, उनका मनोबल, उनके द्वारा प्रदत्त शिक्षा और बख्शीशों का वर्णन है। भाद्रपद शुक्ला द्वादशी के दिन शरीर की स्थिति बहुत नाजुक हो गई। कालूगणी ने डालगणी को प्रतिक्रमण सुनाया और अवसर देखकर अनशन करा दिया। देखते-देखते डालगणी पार्थिव देह को छोड़ परलोकगामी हो गए। दूसरे दिन उनका अन्त्येष्टि संस्कार अच्छे ढंग से सम्पन्न हुआ। यह प्रस्तुत गीत का प्रतिपाद्य है।

डालगणी का स्वर्गवास होने के बाद मुनिश्री मगनलालजी ने कालूगणी से पट्टासीन होने का अनुरोध किया। कालूगणी इसके लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने डालगणी द्वारा लिखित पत्र देखने का परामर्श दिया। किन्तु मुनिश्री मगनलालजी ने अत्यधिक आग्रह कर उन्हें पट्ट पर बिठा दिया और उसके बाद डालगणी द्वारा लिखित पत्र का वाचन कर सबको आश्वस्त कर दिया। कालूगणी के पदाभिषेक के लिए पूर्णिमा की तिथि निर्णीत हुई। शुक्ल पक्ष की द्वितीया का जन्म और पूर्णिमा का पदारोहण समारोह ग्रन्थकार कवि की कल्पना के पंखों पर सवार होकर एक अद्‌भुत आभा बिखेर रहा है। बारहवें गीत की बत्तीस गाथाओं में अत्यधिक सरसता के साथ पट्टोत्सव का वर्णन हुआ है।

कालूगणी तेरापंथ संघ के आठवें आचार्य थे। आठ की संख्या को सामने रख ग्रन्थकार ने जैन सिद्धान्त के आधार पर आठ संख्या वाली अनेक बातें प्रस्तुत कर दीं। इससे सहज ही पाठक की ज्ञानवृद्धि हो सकती है। तेरहवें गीत के प्रथम दोहे में मौली शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है। प्रथम मौली शब्द का अर्थ है कालूगणी। प्रस्तुत शब्द का यह अर्थ सहजगम्य नहीं होता। संस्कृत व्याकरण में *दशरथस्य अपत्यम् दाशरथिः की तरह मूलस्य अपत्यम् मौलिः शब्द निष्पन्न होता* है। शब्द का राजस्थानीकरण करने पर मौली हो गया। दूसरा मौली शब्द मुकुट

का वाचक है। ऐसे प्रयोग कवि के संस्कृत-प्रेम के परिचायक हैं।

आचार्य पदारोहण का समारोह सम्पन्न होने के बाद पहला काम होता है, आचार्य भिक्षु द्वारा अपने युवाचार्य के लिए लिखित 'लिखत' की प्रतिलिपि करवा कर उसमें 'भारीमाल' के स्थान पर 'कालू' नाम अंकित कर सब साधुओं के हस्ताक्षर करवाना। यह उपक्रम भिक्षुशासन की अविच्छिन्न परम्परा का सूचक है। कालूगणी ने आचार्य पद का दायित्व संभालते ही प्रातः उत्तराध्ययन और रात्रि में रामचरित्र का व्याख्यान प्रारम्भ कर दिया।

कालूगणी ने जिस दिन अपना दायित्व संभाला, उस दिन 'छक्कम छक्का' हो गया, छह छक्कों का योग मिल गया। कवि ने छह छक्कों की कल्पना इस प्रकार की है—वि. सं. १९६६ में दो छक्क हैं। चैत्र मास से वर्ष का प्रारम्भ किया जाए तो भाद्रव छठा मास आता है। एक छक्क महीने का। वह पूर्णिमा का दिन था। १५ के दो अंकों का योग १+५=६ होता है, एक छक्क तिथि का। उस समय कालूगणी की अवस्था ३३ वर्ष की थी, ३+३=६। एक छक्क अवस्था का। एक छक्क यानी परिषद का ठाट। इस प्रकार अनायास ही छह छक्कों का योग कालूगणी की संचित पुण्यवत्ता का प्रतीक है।

कालूगणी के वक्तृत्व एवं व्यक्तित्व के विशिष्ट गुण आचार्य के छत्तीस गुणों के योग से जन-जन के आकर्षण-केन्द्र बन गए। पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर समुद्र में ज्वार आता है, वैसे ही पूर्णिमा को उदित कालूगणी रूप चन्द्रमा के उदय से धर्मशासन में विकास के ज्वार की संभावना की जा सकती है। यह समग्र विवेचन तेरहवें गीत में है।

चौदहवें गीत का प्रारम्भ लाडनूं से विहार के साथ होता है। उस समय सब सन्तों के पास समुच्चय की दो-दो पोथियों का वजन था। मुनिश्री मगनलालजी के अनुरोध पर कालूगणी ने वृद्ध सन्तों का वजन एक पोथी कर करुणा रस की वर्षा की। चतुर्मास की समाप्ति हो जाने से बहिर्विहारी सिंघाड़ों का आगमन होने लगा। उनमें साध्वी कानकुमारीजी के सिंघाडे ने बीकानेर से सुजानगढ़ पहुंचकर दर्शन किए। मातुश्री छोगांजी उनके साथ थीं। अपने पुत्र को आचार्य के रूप में देख माता को अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति हुई। कालूगणी ने भी माँ के उपकार का स्मरण कर उन्हें कई प्रकार की बख्शीशें कीं। साध्वी कानकुमारीजी को भी बोझ और बारी की बख्शीश की। यह वर्णन प्रस्तुत गीत में उपलब्ध है।

कालूगणी प्रथम मर्यादा-महोत्सव करने के लिए बीदासर पधारे। वहां साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों की पृच्छा—उनके आचार, विचार, व्यवहार, अध्ययन

आदि के बारे में पूछताछ, समय-समय पर शिक्षामृत की वर्षा, सन्तों के सात और साध्वियों के तीन नए सिंघाड़ों का निर्माण, कालूगणी की कार्यदक्षता आदि का विवेचन पन्द्रहवें गीत में है।

वि.स. १९६६ से १९७० तक चार वर्षों में कालूगणी ने जिन-जिन को दीक्षित किया, उन सबका उल्लेख सोलहवें गीत में किया गया है। यह भी कालूयशोविलास की रचनाशैली का एक विशिष्ट नमूना है। अन्यथा दीक्षा का विवेचन विकेन्द्रित हो जाता। दीक्षा के साथ विशेष तपस्या करने वाले तथा गण-बाहर होने वाले साधु-साध्वियों का भी उल्लेख कर दिया गया है। कुल मिलाकर प्रस्तुत गीत चार वर्षों का दीक्षादर्पण है।

द्वितीय उल्लास

कालूयशोविलास के प्रथम उल्लास की रचना का कार्य सम्पन्न होने पर ग्रन्थकार को जो प्रसन्नता हुई, उससे अग्रिम यात्रा की लालसा बढ़ गई। उस लालसा के वेग को रोकने में असमर्थ कवि पुनः अपने रचनाकार्य में प्रवृत्त होकर कृतार्थता का अनुभव करता है, यह दूसरे उल्लास के प्रारम्भ की प्रेरणा का संकेत संस्कृत भाषा में निबद्ध दो श्लोकों में मिलता है।

प्रत्येक उल्लास का आदि मंगल स्वतन्त्र है। प्रस्तुत उल्लास में भगवान महावीर की स्मृति करके उनके द्वारा प्रतिपादित स्याद्वाद के सिद्धान्त की पांच पद्यों में व्याख्या की गई है। प्रस्तुत व्याख्या अपनी गंभीरता के द्वारा ग्रन्थकार के वैदुष्य का दर्शन कराती है। इसके बारे में इतना ही कहना पर्याप्त है कि स्याद्वाद, सप्तभंगी, नय, प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय आदि गंभीर विषयों को इतने कम शब्दों में प्रस्तुत कर आचार्यश्री तुलसी ने अपने पाठकों को न्याय शास्त्र में प्रवेश करा दिया।

दूसरे उल्लास का प्रथम गीत कालूगणी के व्यापक सम्पर्कों का पहला झरोखा है। जर्मनी के ख्यातिप्राप्त विद्वान किसी संगोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए जोधपुर आए। वहां तेरापंथी श्रावक उनसे मिले। श्रावकों ने *जेकोबी को तेरापंथ का परिचय* देकर कालूगणी से मिलने की प्रेरणा दी। जेकोबी का जिज्ञासु मन ज्ञानवृद्धि के लिए समुत्सुक था। उन्होंने लाडनूं जाने की बात स्वीकार कर ली। तेरापंथ का विरोध करने वाले लोगों को यह जानकारी मिली। वे नहीं चाहते थे कि इतने बड़े *विद्वान कालूगणी* से मिले। उन्होंने मरुस्थल की भयंकर सर्दी, वहां के साधारण खान-पान तथा दान-दया, पुण्य-पाप, प्रतिमापूजा आदि के बारे में तेरापंथ की

मान्यताओं आदि का हवाला देकर जेकोबी को विचलित करने का प्रयास किया।

जेकोबी अपने संकल्प पर अटल थे। वे लाडनूं पहुंचे। कालूगणी से मिले। उनका उपदेश सुना। साधुचर्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित कलाकृतियों का निरीक्षण किया। जैन आगमों के समालोच्य पाठों के बारे में चर्चा की, दीक्षा महोत्सव देखा, कालूगणी की उपासना कर तेरापंथ की रीति-नीति का परिचय पाया, तीन दिनों के प्रवास में वे अभिभूत-से हो गए। उन्होंने जूनागढ़ पहुंचकर वक्तव्य दिया, उसमें कहा कि वे तीन नई बातें देखकर आए हैं—महावीर-युग के शुद्ध साधु, दम्पति दीक्षा और मच्छं मंसं आदि शब्दों का वास्तविक अर्थ। प्रस्तुत विवेचन प्रथम गीत का प्रतिपाद्य है।

उन दिनों जोधपुर की राज्यसभा में नाबालिग दीक्षा को प्रतिबन्धित करने के लिए एक बिल पेश किया गया। उस बिल के सम्बन्ध में जनमत जानने के लिए तीन महीने का समय दिया गया। २१ मार्च १९१४ को मुद्रित जोधपुर के राजपत्र में यह सूचना प्रकाशित हुई है। उसे पढकर तेरापंथ समाज के प्रमुख श्रावक चिन्तित हो गए। वे सब सामूहिक रूप में जोधपुर गए। वहां वे न्यायाधीश से मिले। उन्हें तेरापंथ सम्प्रदाय, उसके अनुशासन, दीक्षा-पद्धति आदि के बारे में विस्तार से बताया। न्यायाधीश महोदय सारी बातें सुनकर गंभीर हो गए। उन्होंने आगन्तुक लोगों को आश्वासन दिया कि जल्दबाजी में ऐसा कोई प्रस्ताव पास नहीं होगा। कुछ दिन बाद ही राजगजट में उस प्रस्ताव को स्थगित करने का संवाद छप गया। श्रावकों ने अनुभव किया कि पूज्य कालूगणी के प्रताप से ही उनको इस कार्य में सफलता मिली है। दूसरे उल्लास के दूसरे गीत में इसका विवेचन है।

कालूगणी आचार्य बने। धर्मसंघ की व्यवस्था का पूरा दायित्व संभाला। इसके बावजूद उनका संस्कृत विद्याप्रेम बढ़ता रहा। उन्होंने एक विद्यार्थी की तरह व्याकरण को याद किया और अपना अभ्यास बढ़ाया। उधर मेवाड़ के लोग प्रार्थना करने के लिए आए। उनकी प्रार्थना को ग्रन्थकार ने जो मार्मिक अभिव्यक्ति दी है, उसे पढ़कर पाठक स्वयं मेवाड़ की धरती के पक्ष में खड़ा हो जाता है। कालूगणी ने मेवाड़ की प्रार्थना स्वीकार कर वहां आने की स्वीकृति दे दी। इस पर मातुश्री छोगांजी खड़ी हो गईं। वे बोलीं—'आप मेवाड़ पधार जाएंगे तो मुझे उपासना का मौका कैसे मिलेगा ?' कालूगणी ने उनको पुनः जल्दी दर्शन देने का आश्वासन दिया। उसके बाद मातुश्री का बीदासर में स्थिरवास हो गया और कालूगणी ने यात्रा का प्रारम्भ कर दिया। यह समग्र वर्णन प्रस्तुत उल्लास के तीसरे गीत में है।

जोधपुर राज्यसभा में स्थगित नाबालिग दीक्षा का प्रस्ताव पुनः इलाहाबाद की धारा सभा में पेश हुआ। उस विषय में कानून बनाने के लिए आठ सदस्यों की एक कमेटी बनी। उसके सदस्यों में लाला सुखवीरजी, श्री मोतीलाल नेहरू, मालवीयजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। तेरापंथ समाज के जिम्मेदार श्रावकों के पास यह बात पहुंची। उन्होंने विचार-विमर्श किया कि यदि ऐसा कानून बन गया तो मोठों के साथ घुण पीसने वाली कहावत सच हो जाएगी। भिखारियों की संख्या पर नियन्त्रण जरूरी है, पर भिक्षुक नाम से त्यागी साधुओं को उनके साथ जोड़ना उचित नहीं है। इसलिए कुछ व्यक्तियों को इलाहाबाद जाकर कार्यवाही करनी चाहिए।

कुछ श्रावक इलाहाबाद पहुंचे। वे लाला सुखवीरजी से मिले। उन्हें तेरापंथ संघ की विशेषताओं से अवगत किया। कालूगणी और तेरापंथ की दीक्षा के बारे में जानकारी दी। लालाजी ने सारी बात सुनकर कहा—'यह कानून ऐसे धर्म और धार्मिकों के लिए नहीं होगा।' उन्होंने कालूगणी से मिलने की इच्छा प्रकट की। श्रावक उन्हें साथ लेकर ब्यावर गए। कालूगणी के दर्शन करके तथा उनसे बातचीत कर वे बहुत प्रभावित हुए। उन्हें वहां दम्पति-दीक्षा देखने का भी अवसर मिल गया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह नाबालिग प्रस्ताव पारित होगा तो भी तेरापंथ को छोड़कर ही होगा। उन्हीं दिनों यूरोप में युद्ध छिड़ जाने से वह प्रस्ताव यों ही रह गया।

यू.पी. में प्रस्तुत नाबालिग दीक्षा का प्रस्ताव आगे चलकर दिल्ली की कौन्सिल में प्रस्तुत हुआ। यह बात वि.सं. १९७९ की है। इस विषय की सूचना मिलते ही श्रावक दिल्ली पहुंचे। वहां लाट साहब से मिलकर उन्होंने सारी स्थिति स्पष्ट की। आखिर दिल्ली-कौंसिल में भी वह बिल पास नहीं हो सका। वैसे भी राजनीति में हर कार्य के सम्पादन में बाधाएं आती ही रहती हैं। पर चतुर्विध धर्मसंघ इस बात के लिए सदा जागरूक रहता है कि संघीय विकास के कार्यों में कोई व्यवधान न आने पाए। इस घटना क्रम का वर्णन चतुर्थ गीत में उपलब्ध है।

कालूगणी मेवाड़ की यात्रा करते हुए चित्तौड़ पधारे। वहां पहले से ही विरोधी वातावरण था। विरोधी लोगों ने वहां अफीम तोलने के कांटे के एक अफसर को भ्रान्त बना दिया। वह कालूगणी से मिलने आया। कालूगणी उसे जैनधर्म के बारे में समझा रहे थे। उस समय एक व्यक्ति ने बीच में ही एक प्रश्न उपस्थित किया। श्रावक अम्बालालजी कावड़िया ने उसका सटीक उत्तर देकर प्रश्नकर्ता को मौन कर दिया।

इधर कालूगणी के प्रतिबोध से अफसर समझ गया। इससे विरोधी लोग

बौखला उठे। वे 'तेराद्वार' के खण्डन में लिखी एक पुस्तक लेकर आए। उसमें लिखित सिद्धान्त विरुद्ध बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया तो उन्होंने आचार्य भिक्षु द्वारा रचित 'नव पदार्थ री जोड़' को गलत ठहराने का प्रयास किया। उस स्थिति में कालूगणी ने जिनवाणी पर आचार्य भिक्षु की आस्था को अभिव्यक्ति देते हुए भगवती सूत्र का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया। निरुपाय प्रश्नकर्ता बोला—'यह भगवती आपकी है। मैं किले में जाकर अपना भगवती सूत्र लाऊंगा।' उसके बाद वह लौटकर आया ही नहीं। सत्य-झूठ का निर्णय अपने आप हो गया। उक्त प्रसंग की जानकारी पांचवें गीत में उपलब्ध है।

मेवाड़ की यात्रा में छोटे-बड़े क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए कालूगणी रायपुर पधारे। वहां कुछ प्रतिपक्षी लोग चर्चा करने आए। उन्होंने कुछ प्रश्न उपस्थित किए, जैसे—

१. गायों के बाड़े में आग लग जाए तो क्या करना ?
२. क्या जीवों को बचाने से पाप होता है ?
३. जीव बचाए बिना दया धर्म की रक्षा कैसे होगी ?

कालूगणी ने नौका-विहार का सटीक उदाहरण देकर गायों के बाड़े का प्रश्न समाहित किया। शेष दोनों प्रश्न प्रथम प्रश्न के साथ ही जुड़े हुए थे। वहां उपस्थित जनसमूह समाहित हो गया। सामने ही मियां-मौलवी बैठे थे। उनको सम्बोधित कर कालूगणी बोले—'आप नमाज पढ़ते हैं, उस समय अन्य सांसारिक कार्यों से सर्वथा निरपेक्ष रहते हैं। हमने तो साधु जीवन स्वीकार किया है। भगवान का बाना पहनकर हम सांसारिक कार्यों में क्यों उलझेंगे ?' मौलवी साहब ने भी कालूगणी के विचारों के साथ अपनी सहमति प्रकट की।

वि.सं. १९७२ में कालूगणी का चातुर्मास उदयपुर था। उस वर्ष वहां मूर्तिपूजक, स्थानकवासी, सनातन और तेरापन्थ, चार सम्प्रदायों के धर्मगुरुओं का प्रवास था। धार्मिक दृष्टि से अभिनव जागरण का वातावरण रहा।

साम्प्रदायिक अभिनिवेश धर्म के मंच को भी अखाड़ा बना देते हैं। कालूगणी के युग में अन्तःसाम्प्रदायिक वाद-विवाद बहुत चलते थे। एक दिन कुछ विरोधी श्रावक चर्चा करने के लिए आए। उनका प्रश्न था—आचार्य भिक्षु ने लिखा है कि भगवान महावीर ने लब्धि-प्रयोग करके भूल की। इस मन्तव्य का आधार क्या है ? कालूगणी ने भूल का आधार बताया छद्मस्थता। इस बात पर उन्होंने कहा कि महावीर तो गर्भावस्था में ही केवलज्ञानी थे। वे भूल कैसे कर सकते हैं ? इस पर कालूगणी ने प्रतिप्रश्न किया—'क्या जन्म, विवाह और पुत्री के पिता बने उस समय भी भगवान केवली थे ?' हमने तो उनकी छद्मस्थ अवस्था की भूल

बताई है। आप केवली भगवान का विवाह कराते हुए भी शंकित नहीं हुए ?

चर्चा करने आए लोग मौन होकर चले गए, पर उन्होंने द्वेषवश निन्दात्मक पर्चेबाजी शुरू कर दी। राणा फतेहसिंहजी ने भी वे पर्चे देखे। राणाजी ने तेरापंथी श्रावक हीरालालजी मुरड़िया को निर्देश दिया कि प्रतिपक्षी लोग आपकी निन्दा के पर्चे छाप रहे हैं, किन्तु उस विरोध के प्रतिरोध में आपको कुछ नहीं लिखना है। मुरड़ियाजी ने राणाजी को बताया कि ऐसी छिछले स्तर की बातों का जवाब देना तेरापंथ की नीति नहीं है।

कुछ समय बाद प्रतिपक्षी लोगों ने एक बेबुनियाद बात उठाई कि पंचायती नोहरे में भट्टी जल रही थी। उसमें एक गाय गिर गई। तेरापंथी लोग सामने खड़े थे, फिर भी उन्होंने गाय को नहीं बचाया। इस आशय का पैम्फलेट राणाजी के पास पहुंचा। राणाजी ने मुरड़ियाजी से कहा कि इस भ्रान्ति का निराकरण होना चाहिए। राणाजी के निर्देश पर तेरापंथी श्रावकों ने स्पष्टीकरण दिया—चतुर्मास में पंचायती नोहरे में कोई भोज नहीं होता। भोज बिना वहां भट्टी कौन जलाएगा ? भट्टी ही नहीं है तो गाय कैसे गिरेगी ? इस स्पष्टीकरण से शहर में फैली झूठी अफवाह जड़मूल से समाप्त हो गई।

उदयपुर में छह सौ व्यक्तियों की एक स्पेशल ट्रेन मालवा-यात्रा की प्रार्थना करने आई। मालवा जाने के लिए कालूगणी कानोड़ तक पधारे। उसके बाद कार्यक्रम बदल गया। मेवाड़ के अनेक क्षेत्रों की संभाल कर कालूगणी मारवाड़ पधार गए। छठे गीत का यह विवेचन बहुत ही रोचक है।

सातवें गीत में मारवाड़ की महत्त्वपूर्ण यात्रा का वर्णन है। उस यात्रा में भी चर्चा के दो प्रसंग उपस्थित हुए। पहला प्रसंग आउवा का है। वहां प्रतिमा-पूजा पर चर्चा हुई। दूसरा प्रसंग पचपदरा का है। वहां संघ-बहिष्कृत श्रावक प्रतापजी दो यतियों को साथ लेकर कालूगणी के पास आए। स्थानकवासी मुनि कनीरामजी के ग्रन्थ 'सिद्धान्तसार' के आधार पर उन्होंने मिथ्यात्वी की क्रिया का प्रश्न उठाया। 'सिद्धान्तसार' में मिथ्यात्वी की क्रिया को आज्ञा बाहर माना गया है, जबकि जयाचार्य के 'भ्रमविध्वंसन' में उसे आज्ञा-सम्मत मान्य किया है।

कालूगणी ने प्रतापजी से कहा कि इस मान्यता का भगवती सूत्र के पाठ से मिलान कर लें। प्रतापजी अपने साथ पुस्तकों की दो पेटियां लेकर आए थे। उन्होंने दोनों यतियों को पाठ खोजने का काम सौंपा, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। उस समय कालूगणी ने भगवती सूत्र हाथ में लिया और आठवें शतक का वह पाठ निकालकर दिखा दिया, जिसमें बालतपस्वी को मोक्षमार्ग का देशाराधक बताया

गया है। कालूगणी की बहुश्रुतता देख प्रतापजी चकित रह गए। दोनों यातियों ने भी इस यथार्थ को स्वीकार किया कि सिद्धान्तसार का सिद्धान्त भगवती के अनुरूप नहीं है, पर भ्रमविध्वंसन का अभिमत आगम-सम्मत है।

आठवें गीत के प्रारंभिक दोहों में जोधपुर-चातुर्मास, लाडनूं के मर्यादा-महोत्सव और सरदारशहर-चातुर्मास का उल्लेख है। सरदारशहर में श्रावण मास में मुनिश्री मगनलालजी अस्वस्थ हो गए। डॉ. अश्विनीकुमार मुखर्जी के उपचार से वे स्वस्थ हुए। भाद्रपद मास में पूज्य कालूगणी बीमारी से बेहोश हुए तो संघ के होश उड़ गए। संघ की पुण्यवत्ता से वह बीमारी थोड़े समय बाद ही शान्त हो गई। उसी चातुर्मास में इटली के विद्वान डॉ. एल.पी.टेसीटोरी ने कालूगणी के दर्शन कर प्रसन्नता का अनुभव किया।

चातुर्मास की सम्पन्नता के बाद कालूगणी चूरू पधारे। वहां रावतजी यति दर्शन करने आए। उन्होंने आशुकविरत्न पंडित रघुनन्दनजी की विलक्षण विद्वत्ता का परिचय दिया। कालूगणी को यतिजी के कथन पर विश्वास नहीं हुआ तो यतिजी ने पंडितजी को वहां उपस्थित करने का संकल्प व्यक्त किया।

यतिजी पंडितजी से मिले। उनको तेरापंथ और कालूगणी का परिचय देकर उनके पास जाने की प्रेरणा दी। पंडितजी को जैन साधुओं, विशेष रूप से तेरापंथी साधुओं के नाम से ही घृणा-सी थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में वहां जाने का निषेध कर दिया। यतिजी के सामने दुविधा खड़ी हो गई। एक ओर कालूगणी का अविश्वास, दूसरी ओर पंडितजी का नकारात्मक भाव। यतिजी ने पंडितजी को छोड़ा नहीं। उन्होंने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया और आखिर यहां तक कह दिया कि उनको कड़वी औषधि लेने की तरह एक बार तो कालूगणी के पास चलना ही होगा

यतिजी के विशेष आग्रह पर पंडितजी बिना इच्छा कालूगणी के सान्निध्य में उपस्थित हुए। कालूगणी ने संस्कृत भाषा में वार्तालाप किया। पंडितजी अभिभूत हो गए। उनके मन में श्रद्धा जम गई। कालूगणी ने प्रथम साक्षात्कार में ही पंडित जी के पांडित्य को परख लिया। उन्होंने यतिजी को साधुवाद दिया और अनुभव किया कि ऐसे विद्वान व्यक्ति का सुयोग संघ के लिए बहुत ही हितकर होगा। यह समस्त विवेचन इतनी सरसता और सहजता से प्रस्तुत किया गया है कि पाठक को अपने साथ बहा लेता है। इस गीत में कुछ पद्य संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं। कुल मिलाकर पूरा गीत एक नए इतिहास की दिशा में प्रस्थान का सूचक है।

नौवें गीत का प्रारम्भ पंडित रघुनन्दनजी के प्रसंग को ही आगे बढ़ाता है। पंडितजी कालूगणी जैसे महान आचार्य से मिले, इसकी उन्हें प्रसन्नता थी, पर

उनके बारे में हुए नकारात्मक चिन्तन की विषण्णता भी थी। विषाद को दूर करने के लिए उन्होंने सम्यक्त्वदीक्षा स्वीकार की और आत्मशुद्धि के उद्देश्य से साधुशतक की रचना की। पंडितजी ने कालूगणी के चरणों में अपना समर्पण प्रस्तुत करते हुए कहा—'मैं हर समय हाजर हूं। आप जिस रूप में मेरा उपयोग करना चाहें, करें।' उसके बाद संस्कृत विद्या के विकास हेतु व्यवस्थित योजना बनाई गई। पंडितजी जब तक जीवित रहे, समय-समय पर अपनी सेवा देते रहे।

चूरू के बाद कालूगणी कुछ क्षेत्रों का स्पर्श कर राजलदेसर पधारे। वहां उनकी एडी में व्रण हो गया। व्रण का इतना विस्तार हुआ कि चातुर्मास वहीं करना पड़ा और आश्विन मास तक कालूगणी प्रवचन भी नहीं कर सके। आखिर मुनिश्री मगनलालजी ने एडी का आपरेशन कर पीव निकाली, तब पीड़ा का शमन हुआ।

चतुर्मास के बाद चार महीनों तक पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में विहार कर कालूगणी रतनगढ पधारे। वहां पंडित हरिनन्दनजी ने दर्शन किए। व्याकरण की चर्चा चलने पर पंडितजी ने भट्टोजी दीक्षित द्वारा रचित कौमुदी की प्रशंसा करते हुए कहा—'इस व्याकरण से सब शब्दों की सिद्धि हो जाती है।' कालूगणी बोले—'शब्दशास्त्र का उद्देश्य शब्द-सिद्धि करना ही है, फिर भी कुछ शब्द छूट भी जाते हैं।' पंडित जी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया, तब कालूगणी ने कौमुदी के आधार पर 'तुच्छ' शब्द सिद्ध करने का निर्देश दिया। पंडितजी ने समग्र कौमुदी का पारायण कर देख लिया, 'तुच्छ' शब्द की सिद्धि नहीं मिली। उन्होंने पूरी विनम्रता के साथ अपनी असमर्थता प्रकट की। ज्ञान का अहंकार हो तो वातावरण में कटुता घुल जाती है। पर पंडितजी में विद्वत्ता और विनम्रता का अद्भुत योग था, इसलिए वातावरण मधुर बन गया। कालूगणी और पंडितजी के बीच हुआ वह मधुर संवाद भी नौवें गीत में है।

दसवें गीत में कालूगणी की हरियाणा यात्रा का वर्णन एक नई शैली में है। कालूगणी हरियाणा के छोटे-बड़े अनेक गांवों में पधारे। गांवों की जनता में उनके स्वागत-सत्कार का उत्साह और जैन सन्तों की चर्या से अपरिचित लोगों द्वारा की गई मनुहारों का रोचक वर्णन हृदयग्राही है। इसी प्रकार जब कालूगणी चातुर्मास करने के लिए भिवानी पधारे, उस समय स्थानीय लोगों ने अनेक प्रकार के साधु-संन्यासियों की जीवनशैली को सामने रखकर कालूगणी का अंकन सर्वोत्तम साधु के रूप में किया। इससे कालूगणी की महिमा में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।

ग्यारहवें गीत के प्रारंभ में कालूगणी के व्यापक जनसम्पर्क की चर्चा है। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी किसी कार्यवश भिवानी आए। वहां उन्होंने कालूगणी के कर्तृत्व की बात सुनी तो उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु कुछ

राजनीतिक कारणों से वह मिलन-प्रसंग टल गया।

भिवानी में तेरापंथ के आचार्यों का वह पहला चातुर्मास था। चातुर्मास के तीन महीनों में धर्म की बहुत अच्छी प्रभावना हुई। कार्तिक में दीक्षा का प्रसंग उपस्थित हुआ। एक भाई और तीन बहनों की दीक्षा घोषित हुई। दीक्षित होने वाली बहनों में एक कन्या थी। उसे निमित्त बनाकर विरोध का वातावरण बनाया गया। विरोधी लोग चतुर्मास के प्रारंभ से ही विरोध का मौका खोज रहे थे। मौका मिलते ही उन्होंने जोर-शोर से दीक्षा के विरोध में आवाज उठाई। उस स्थिति में लाला द्वारकादास ने मुनिश्री मगनलालजी से निवेदन किया कि यदि दीक्षा का कार्यक्रम प्रवास-स्थल पर हो जाए तो विरोधी लोग कुछ नहीं कर पाएंगे। मुनि श्री मगनलालजी बोले—'लालाजी ! तुम जो स्थान बताओगे, वहां दीक्षा हो जाएगी। दीक्षा के बाद चातुर्मास सम्पन्न होते ही हम तो यहां से चले जाएंगे, पर तुम भिवानी को छोड़कर कहां जाओगे ? लोग व्यंग्य करेंगे कि विरोध से घबराकर घर में दीक्षा दे दी। इससे तुम्हारा वर्चस्व कैसे रहेगा ?'

मुनिश्री मगनलालजी की प्रेरणा से भिवानी के श्रावक समाज में नया जोश भर गया। सब श्रावकों ने निर्णय लिया कि बाजार के बीच में डंके की चोट दीक्षा होगी। उधर विरोधी लोगों का रवैया आक्रामक होता गया। उन्होंने घोषणा कर दी कि जब तक भिवानी में छत्तीस हजार लोग हैं, तब तक कन्या की दीक्षा आकाश-कुसुम बनकर रहेगी। क्योंकि वे उसे दीक्षा-मण्डप से उठाकर ले जाएंगे।

कार्तिक कृष्णा अष्टमी को दीक्षा होने वाली थी। सप्तमी को रात्रि में विरोधी लोगों ने एक सभा आयोजित की। वे अपनी योजना प्रस्तुत कर उसकी क्रियान्विति का तरीका बताते, उससे पहले ही आकाश से एक सफेद गोला सभा के बीच में आकर गिरा। उसके कारण लोग इतने घबराए कि अपनी-अपनी जान बचाकर भाग गए। कुछ ही मिनटों में सभास्थल और सभामंच खाली हो गया। दीक्षा की समीक्षा धरी रह गई।

दूसरे दिन बाजार के बीच में बिना किसी विघ्न-बाधा के कालूगणी ने दीक्षा-संस्कार सम्पन्न किया। पूरे शहर में धर्मसंघ की विशेष प्रभावना हुई। विरोधी लोगों के हाथ निराशा लगी। इससे उनके मन में प्रतिशोध की भावना जाग गई। संभवतः उसी प्रेरणा से किसी व्यक्ति ने कालूगणी के वेश की नकल कर शहर में नया उदंगल खड़ा किया। उस प्रसंग में यदि कालूगणी अपने श्रावकों को शान्त रहने का उपदेश नहीं देते तो भयंकर संघर्ष छिड़ जाता। किन्तु कालूगणी की दूरदर्शिता से सारा संक्लेश शान्त हो गया। यह पूरा प्रतिपाद्य ग्यारहवें गीत का है।

बारहवां गीत कालूगणी की शेष हरियाणा यात्रा से शुरू हुआ है। गीत के प्रारम्भ में लाला द्वारकादास (भिवानी) की श्रद्धा-भक्ति का उल्लेख है। हरियाणा यात्रा में थली संभाग के लोगों ने भी बहुत अच्छी उपासना की। वि.स. १९७८ का चातुर्मासिक प्रवास रतनगढ़ हुआ। गत वर्ष हरियाणा की यात्रा में कालूगणी के घुटनों में दर्द हो गया था, उसका कोई स्थायी उपचार नहीं हो सका। रतनगढ़ में 'भिलावा' के प्रयोग से उस पीड़ा का शमन हुआ। चतुर्मास के बाद पोष महीना में कालूगणी बीदासर पधारे। वहां साधु-साध्वियों में सतरंगी और नवरंगी तपस्या हुई।

उस वर्ष होली चातुर्मासी पक्खी का अवसर सुजानगढ़ को मिला। वहां कालूगणी ने भागवत के आधार पर प्रवचन किया। उसे लेकर वैष्णव लोगों में हलचल हो गई। वे स्थानीय पंडित गजानन्दजी के घर गए। सारी बात सुनकर उन्होंने कहा—'जिस श्लोक के आधार पर प्रवचन किया गया, वह श्लोक तो भागवत में है। किन्तु उसका अर्थ सही नहीं है।'

पंडितजी को साथ लेकर वे लोग कालूगणी के पास पहुंचे। कालूगणी ने भागवत के श्लोक का अर्थ किया। पंडितजी ने उससे विपरीत अर्थ किया। तब कालूगणी ने चर्पटमंजरी का हवाला दिया। पंडितजी ने भागवत की मुद्रित प्रति मंगवाई। श्रीधरी टीका के साथ मुद्रित भागवत ग्रन्थ प्राप्त होने पर पंडितजी ने अपने शिष्य से उसका वाचन करवाया तो कालूगणी द्वारा प्रतिपादित अर्थ प्रमाणित हो गया। प्रस्तुत घटना से कालूगणी की विद्वत्ता उजागर हुई। प्रबुद्ध लोगों के मन में उनके प्रति आस्था का भाव पुष्ट हुआ।

तेरहवें गीत का मुख्य प्रतिपाद्य है कालूगणी की बीकानेर संभाग की यात्रा। कालूगणी गंगाशहर पधारे, तभी से अन्य सम्प्रदायों के लोग उनके प्रवास को लेकर चिन्तित हो उठे। इस सन्दर्भ में उनका संवाद सद्भावना के अभाव की सूचना देता है।

कालूगणी गंगाशहर से भीनासर पधारे। वहां कानीरामजी बांठिया के नेतृत्व में कुछ लोग शास्त्रार्थ करने आए। उन्होंने उपासकदशा सूत्र के पाठ 'असइजणपोसणिया' को लेकर चर्चा शुरू की। उनकी ओर से उठाई गई आपत्ति यह थी—आचार्य भिक्षु ने 'बारह व्रत री चौपई' ग्रन्थ की आठवीं ढाल में 'असइजणपोसणिया' का अर्थ असंयतिजनपोसणिया कैसे किया ? कालूगणी ने प्रतिपक्षी लोगों को शान्ति के साथ समझाते हुए कहा—'आपने चौपई की ढाल की एक पंक्ति सन्दर्भ छोड़कर प्रस्तुत की है। पूर्व पंक्ति के साथ दूसरी पंक्ति को जोड़कर पढ़ा जाए तो आपका प्रश्न स्वतः समाहित हो जाएगा।'

शास्त्रार्थ करने आए लोग न तो संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के जानकार थे और न आगमों के रहस्य को समझते थे। फिर भी वे पूर्वाग्रह को छोड़ नहीं पाए। फलतः चर्चा लम्बी चली। भगवती, सूत्रकृतांग आदि आगम, उनके व्याख्या ग्रन्थ टब्बा, वृत्ति आदि के प्रमाण प्रस्तुत करने पर भी उनका आग्रह नहीं छूटा। उन्होंने बीकानेर से किसी पंडित को बुलाकर टीका का अर्थ कराने की बात कही।

कुछ दिन बाद बीकानेर और भीनासर के लोग संगठित होकर कालूगणी के प्रवास-स्थल पर पहुंचे। कालूगणी द्वारा की गई जिज्ञासा के उत्तर में वे बोले—'हम पंडित गणेशदत्तजी को साथ लेकर आए हैं। हमारी जो चर्चा पहले से चल रही है, उसी को सुनने के लिए सब लोग उत्सुक हैं।' कालूगणी ने पिछली चर्चा का हवाला देते हुए पंडितजी को सूत्रकृतांग की वृत्ति का अर्थ करने का निर्देश दिया। इस पर प्रतिपक्षी लोग आनाकानी करने लगे। इससे कुछ क्षणों के लिए वातावरण अशान्त हो गया। उस समय कालूगणी ने विशेष शान्ति और धृति के साथ लोगों को समझाया और वातावरण को शान्त किया।

पंडित गणेशदत्तजी इस बात पर अड़ गए कि उन्हें यहां वृत्ति का अर्थ करने के लिए बुलाया गया है, इसलिए सब लोग पहले अर्थ सुनें। पंडितजी ने आगम की छह गाथाओं की टीका पढ़कर उसका अर्थ किया तो वही बात फलित हुई, जो कालूगणी ने कही थी। इससे प्रतिपक्षी लोग कुछ उत्तेजित हो गए। उन्होंने पंडितजी को पुनः चिन्तनपूर्वक अर्थ करने का अनुरोध किया। पंडितजी ने इसकी अपेक्षा अनुभव नहीं की।

उस समय जतनमलजी कोठारी बोले कि चालू चर्चा को छोड़कर नया प्रश्न उपस्थित किया जाए। इस पर कालूगणी ने कहा—'एक प्रश्न का समाधान होने पर दूसरे प्रश्न पर चर्चा की सार्थकता है।-' कोठारीजी ने उक्त प्रश्न पर अपनी हार स्वीकार करते हुए दूसरा प्रश्न उठाना चाहा। किन्तु बांठियाजी उसी बात पर अड़े रहे। कालूगणी बोले—'हमने आगम के आधार पर प्रश्न का उत्तर दे दिया। उसे कोई स्वीकार नहीं करे तो हम क्या कर सकते हैं ?' बात समाप्त हुई और सब लोग चले गए।

चातुर्मास का समय निकट होने से गंगाशहर, बीकानेर आदि क्षेत्रों के लोगों ने चातुर्मास की प्रार्थना की। बीकानेर में चातुर्मास की संभावना होने पर वहां के प्रतिपक्षी लोगों ने अपनी ओर से ऐसी योजनाएं बनाईं, जिससे वहां चातुर्मास न हो। किन्तु कालूगणी ने बीकानेर का चातुर्मास घोषित कर पूरे ठाट-बाट के साथ प्रवेश किया। विरोधी लोग देखते रह गए। भीनासर की चर्चा का प्रसंग काफी लम्बा हो गया। तेरह से पन्द्रह तक तीन गीतों में विस्तार से उसका विवेचन

किया गया है।

दूसरे उल्लास के सोलहवें गीत में वि.सं. १९७० से १९७८ के बीच हुई दीक्षाओं का संकलन किया गया है। इतिहास की दृष्टि से दीक्षा-विवरण का यह क्रम बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक-एक वर्ष में कब, कहां, किसकी दीक्षा हुई ? यह पूरा विवरण यहां उपलब्ध है।

वि.सं. १९७४ एवं १९७५ में प्लेग की बीमारी फैली। लोग मरने लगे। अनेक गांव एवं शहर खाली हो गए। इस प्रसंग में लाडनूं में स्थित साध्वियों के सेवा केन्द्र को स्थानान्तरित करने का प्रसंग उपस्थित हो गया। किन्तु उस प्रसंग में गणेशदासजी चण्डालिया आदि अनेक परिवारों ने साहस का परिचय दिया। उन्होंने कहा—'साध्वियां यहां रहेंगी तो हम गांव छोड़कर नहीं जाएंगे।' साध्वियां वहीं रहीं। उस दृष्टि से लाडनूं रहने वाले परिवारों में एक भी व्यक्ति महामारी की चपेट में नहीं आया। यह वर्णन भी प्रस्तुत उल्लास के अन्तिम गीत में है।

कालूयशोविलास का दूसरा उल्लास कालूगणी की सैद्धान्तिक चर्चाओं, मारवाड़, मेवाड़, थली एवं हरियाणा की यात्राओं, कतिपय विद्वानों के सम्पर्क तथा नाबालिग दीक्षा से सम्बन्धित बिल के प्रसंग में रही श्रावकों की जागरूकता के विवरण से बहुत समृद्ध बन गया। ग्रन्थकार ने इतिहास के हर उल्लेखनीय प्रसंग को काव्य की भाषा में आबद्ध करने में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का उपयोग किया है।

तृतीय उल्लास

तीसरे उल्लास का प्रारंभ पिछले दो उल्लासों की तरह संस्कृत श्लोक से हुआ है। इसमें कालूगणी के मुख को चन्द्रमा और कमल से उपमित किया गया है। कालूगणी के आख्यान कालूयशोविलास को उद्यान का प्रतीक बनाकर कवि ने स्वयं को भ्रमर रूप में रूपायित किया है।

मंगल वचन के आठ श्लोकों में भगवान महावीर की वाणी का वैशिष्ट्य बताया गया है। भव्य जनों को आनन्दित करने वाली, गूंगे व्यक्ति को वाचाल बनाने वाली, विरोधी प्राणियों के द्वेष भाव को विस्मृत कराने वाली, सब प्राणियों को अपनी-अपनी भाषा में समझाने वाली अर्द्धमागधी भाषा में भगवान प्रवचन करते थे। तीर्थंकरों की वाणी के पैंतीस अथवा संख्यातीत अतिशय हैं। अर्हत-वाणी के प्रभाव से बड़े-बड़े संकट टल जाते हैं, इसीलिए उसका इतना महत्त्व बताया गया है।

तीसरे उल्लास का प्रथम गीत बीकानेर-प्रवास से शुरू हुआ है। कालूगणी

ने चतुर्मास के लिए बीकानेर शहर में प्रवेश किया। उस समय वहां के प्रतिपक्षी लोगों की मानसिकता का आकलन कर कालूगणी ने सोचा—'यहां के विरोधी लोग कुछ-न-कुछ उदंगल करते रहेंगे। संभव है, वे उन उदंगलों को धर्मयुद्ध का रूप दें। हम पर कोई युद्ध थोपेगा तो हमें उसका मुकाबला करना होगा। उसके लिए हमें अपना शस्त्रागार भरना होगा। क्योंकि आक्रमण का जवाब दिए बिना विजय-दुन्दुभि नहीं बज सकती। हमारे लिए क्षमा तलवार है, धर्म ढाल है, शास्त्र शस्त्र हैं, अर्हत्-वाणी कवच है और मुनिगण सेना है।' इस चिन्तन के साथ कालूगणी ने शिक्षारूप व्यूह की रचना की। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सेनापति ने अपनी सेना को एकत्रित कर विशेष प्रशिक्षण दिया।

उधर प्रतिपक्षी लोगों ने संघ और संघपति की निन्दा का कार्य शुरू कर दिया। इससे लाभ यह हुआ कि नहीं जाननेवाले लोग भी कालूगणी को जानने लगे। विरोधी लोगों ने तेरापंथ की मान्यताओं को तोड़-मोड़ कर भांति-भांति के पैम्फलेट एवं पोस्टर छपवाए और दीवारों पर चिपका दिए। कुछ लोग गली-गली में सभाएं आयोजित कर भाषण देने लगे। उनके भाषण सुनकर ऐसा लगता मानो होली खेलने वाले लोग बकवास कर रहे हैं। ऐसे कार्यों के लिए कुछ व्यक्तियों ने पानी की तरह पैसा बहाना शुरू कर दिया।

प्रतिपक्षी लोगों की नाजायज हरकतें सहते-सहते तेरापंथ समाज के श्रावक अधीर हो गए। सुमेरमलजी बोथरा के नेतृत्व में उन लोगों ने मुकाबला करने का चिन्तन किया। बीकानेर के रांगड़ी चौक में दोनों पक्षों के लोग आमने-सामने होंगे, यह सूचना प्राप्त होते ही कालूगणी ने मुनिश्री मगनलालजी को संकेत किया। उन्होंने सुमेरमलजी को याद किया। वहां पहुंचते ही मगनमुनि ने उनको सामायिक का प्रत्याख्यान करवा दिया। सेना प्रतीक्षा करती रही, पर सेनानी की अनुपस्थिति में वह संघर्ष टल गया। कालूगणी ने सबको शान्त रहने का उपदेश देकर उनकी दिशा बदल दी।

बीकानेर-नरेश गंगासिंहजी ने एकपक्षीय द्वेष और आक्रोश की बात सुनी। उन्होंने मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापंथ समाज के प्रमुख व्यक्तियों को बुलाकर इकरारनामा लिखवाया कि कोई भी सम्प्रदाय किसी अन्य सम्प्रदाय पर शाब्दिक आक्रमण नहीं करेगा। इकरारनामे पर उन सबके हस्ताक्षर हो गए। कुछ समय के लिए कलह शान्त हुआ। किन्तु फिर वही स्थिति पैदा हो गई। तेरापंथ के विरोध में निम्नस्तर के लेख, पैम्फलेट और पुस्तिकाएं मुद्रित करवाकर विरोधी लोगों ने सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर दिया।

तेरापंथी लोग सबकुछ देखते रहे, सुनते रहे। आखिर उपयुक्त अवसर देख

वे विरोध में प्रकाशित सारा साहित्य लेकर राजदरबार में उपस्थित हुए। महाराज गंगासिंहजी विरोधी लोगों पर बहुत नाराज हुए। उन्होंने उस इकरार को रद्द किया, सारा साहित्य जब्त किया, दो व्यक्तियों को देशनिकाला दिया और मुचलका भी किया। इधर तेरापंथ की नीति और शान्तिपूर्ण व्यवहार से महाराज प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'आप लोग सत्पथ पर चले, इसलिए आपकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है।' राजवर्ग के जो व्यक्ति विरोधियों के चंगुल में आकर उनके सहयोगी बने, उनको भी अच्छा बोधपाठ मिल गया। यह पूरा प्रसंग बीकानेर के राजगजट में लिखा हुआ है।

दूसरे गीत में बीकानेर, जयपुर और चूरू, तीन क्षेत्रों की चातुर्मासिक घटनाओं के संकेत हैं। बीकानेर चातुर्मास में जयाचार्य द्वारा लिखित और सही रूप में सम्पादित भ्रमविध्वंसन ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ। तेरापंथ संघ में प्रथम बार एक साथ तेरह दीक्षाएं सम्पन्न हुईं। उसके बाद राजलदेसर मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर जयपुर की प्रार्थना हुई। वि.सं. १९८० का चातुर्मास करने के लिए कालूगणी जयपुर पधारे। स्थानीय लोगों ने पूरा लाभ उठाया। विशिष्ट राजकीय अधिकारी सम्पर्क में आए। वि.सं. १९८१ का चातुर्मास चूरू में हुआ। वहां कालूगणी ने प्रातःकालीन व्याख्यान भगवती-जोड़ के साथ भगवती सूत्र का वाचन किया और रात्रि में रामचरित्र का व्याख्यान सुनाया। साध्वीप्रमुखा जेठांजी का स्वर्गवास उसी चातुर्मास में हुआ। उनके बाद साध्वी कानकुमारीजी ने साध्वीप्रमुखा का दायित्व संभाला।

कालूगणी ने वि.सं. १९८१ का मर्यादा-महोत्सव सरदारशहर करने का चिन्तन किया। किन्तु अचानक संवाद मिला कि मातुश्री छोगांजी अस्वस्थ हैं। उनकी अभिलाषा दर्शन करने की है। कालूगणी बीदासर पधारे और मातुश्री स्वस्थ हो गईं। उस समय सरदारशहर के श्रावक श्रीचन्दजी गधैया ने बीदासर पहुंचकर सरदारशहर के लिए प्रार्थना की। कालूगणी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर भयंकर सर्दी के मौसम में सरदारशहर पधारे। काव्यरचना में ऋतुवर्णन का प्रसंग उपस्थित हो जाए तो कवि का भावप्रवाह उन्मुक्त होकर बहने लगता है। आचार्य श्री तुलसी ने भी प्रसंगोपात्त सर्दी की ऋतु का इतना मार्मिक वर्णन किया है कि उसे पढ़ते-पढ़ते वह ऋतु मूर्तिमती हो उठती है।

वि.सं. १९८२ में कालूगणी का चातुर्मास बीदासर था। चातुर्मास के बाद कालूगणी लाडनूं पधारे। वहां एक मास प्रवास हुआ। उस प्रवासकाल में बालक तुलसी उनके व्यक्तित्व से अभिभूत हो गया। माता-पुत्र के रोचक संवाद में यह तथ्य उजागर होता है। बालक तुलसी की वैराग्य भावना, चम्पक मुनि का सहयोग और कालूगणी की कृपा का ऐसा सुयोग मिला कि बालक तुलसी को बहन लाडां

के साथ दीक्षा की अनुज्ञा प्राप्त हो गई। ज्येष्ठ भ्राता मोहनलालजी की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद पोष कृष्णा पंचमी को दीक्षासंस्कार सम्पन्न हुआ। दीक्षा के तत्काल बाद कालूगणी लाडनूं से विहार कर सुजानगढ़ पधार गए। तीसरे गीत में उक्त प्रसंग की भावपूर्ण प्रस्तुति पाठक को उसे बार-बार पढ़ने के लिए अभिप्रेरित करती है।

चतुर्थ गीत का प्रारंभ ग्रन्थकार ने अपने नए जीवन की शुरुआत से किया है। ओज आहार के रूप में गुरु के हाथ का प्रथम ग्रास, छेदोपस्थापनीय चारित्र और गुरु से प्राप्त शिक्षा की सूचना के साथ ही राजलदेसर महोत्सव का उल्लेख हुआ है। वहां गंगाशहर के श्रावक चातुर्मास की प्रार्थना करने आए। उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। उस चातुर्मास में अच्छा उपकार हुआ। वयोवृद्ध मुनि पृथ्वीराजजी को उपासना का विशेष अवसर मिला। चातुर्मास के बाद मिगसर महीने में शास्त्रविशारद मुनि डायमलजी का स्वर्गवास हुआ। उस समय भीनासर में दिव्यप्रकाश के साथ एक विमान दिखाई दिया। बीकानेर चोखले में वि.सं. १९७९ और १९८३ के वातावरण में जमीन-आसमान का अन्तर परिलक्षित हुआ।

वि.सं. १९८४ में कालूगणी का चातुर्मास श्रीडूंगरगढ था। उस वर्ष थली संभाग में श्रीसंघ-विलायती नाम से एक सामाजिक संघर्ष ने उग्ररूप धारण कर लिया। इस संघर्ष में पीढ़ियों के प्रेम में दरार पड़ गई। बहन-बेटियों का आना-जाना बन्द हो गया। ऐसे समय में कुछ व्यक्तियों ने सामाजिक संघर्ष में धर्मसंघ को घसीटना चाहा। इसके लिए वे अन्यत्र विहारी स्थानकवासी साधुओं को थली में बुलाने की योजना बनाने लगे। समझदार और विवेकसम्पन्न लोगों ने ऐसे अविवेकपूर्ण कदम उठाने का निषेध किया। किन्तु वे नहीं माने। उन्होंने बीकानेर जाकर आचार्य जवाहरलालजी महाराज को थली पधारने का अनुरोध किया। आचार्यजी की भी मानसिकता बन गई। यह चतुर्थ गीत का प्रतिपाद्य है।

भीनासर और बीकानेर के अग्रगण्य श्रावकों ने आपस में परामर्श किया और आचार्यजी की थली संभाग की यात्रा को सफल बनाने का बीड़ा उठा लिया। स्थानकवासी समाज के ही कुछ वृद्ध एवं अनुभवी व्यक्तियों को यह योजना उचित नहीं लगी। उन्होंने अपना निवेदन प्रस्तुत किया, किन्तु उस पर कोई विचार नहीं हुआ।

चातुर्मास की सम्पन्नता के बाद कालूगणी सरदारशहर पधारे। आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज भी वहां पहुंच गए। उस समय तेरापंथी श्रावकों में भी वैचारिक उथलपुथल मच गई। जिन लोगों में धर्म के प्रति गहरी आस्था नहीं थी, जो कलह एवं कुतूहल में रस लेने वाले थे, जिनकी वृत्ति आलोचना करने की

थी, ऐसे लोग स्थानकवासी साधुओं को प्रोत्साहन देने की बात सोचने लगे। कुछ लोगों ने तटस्थ रहकर तमाशबीन बनने का निर्णय लिया। जो लोग आस्थावान, दृढ़धर्मी, शास्त्रों के जानकार और विवेकसम्पन्न थे, उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि उन्हें जो संघ मिला है, वह अनुपम है। उसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। इसलिए वे न कहीं जाएंगे और न अपने सगे-सम्बन्धियों को जाने देंगे।

श्रावक समाज की प्रतिक्रियाओं की अवगति पाकर पूज्य कालूगणी ने साधुओं की सभा बुलाकर कहा—'वर्तमान के वातावरण में कोई भी साधु अन्य मतावलम्बी साधुओं से बात न करे, रास्ते में मिलने पर अपनी ओर से न बोले, उनकी ओर से बात करने की पहल हो तो भी मौन रहे।' सब सन्तों ने कालूगणी की शिक्षा के अनुसार चलना स्वीकार किया। इस प्रकार का वर्णन पूरे विस्तार के साथ पांचवे गीत में हुआ है।

प्रतिपक्षी साधुओं के स्थान पर लोगों का आवागमन शुरू हुआ। कुछ लोग द्वेषवश, कुछ बिना विचारे, कुछ अविवेक के कारण, कुछ प्रच्छन्न रूप में, कुछ नया रूप देखने के लिए, कुछ किसी को साथ देने के लिए, कुछ कुतूहलवश, कुछ नई बातें सुनने के लिए और कुछ बिना किसी प्रयोजन के वहां जाने लगे।

प्रतिपक्ष के आचार्य कभी सभा में और कभी एकान्त में तेरापंथ के सिद्धान्तों पर टीका-टिप्पणी करने लगे। इसका उद्देश्य था लोगों को भ्रान्त बनाना और तेरापंथ के प्रति अनास्थाशील बनाना। यह उपक्रम कई दिनों तक चलता रहा।

उधर कालूगणी ने अपने प्रवचन में भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिए तेरापंथ के एक-एक मन्तव्य का विस्तार के साथ प्रतिपादन किया। प्रसंग मिश्र धर्म का हो, लौकिक एवं लोकोत्तर धर्म का हो, माता-पिता की सेवा का हो, सावद्य-निरवद्य अनुकम्पा का हो, मिथ्यात्वी की करणी का हो, छद्मस्थ के प्रमाद का हो अथवा आगम-अध्ययन का। इनके बारे में जो-जो वितर्क उपस्थित किए गए, उनका यौक्तिक ढंग से समाधान प्रस्तुत कर शालीनता का उदाहरण उपस्थित कर दिया। उक्त तथ्यों का विवेचन छठे गीत में उपलब्ध है।

सातवां गीत कालूगणी के युग की एक प्रसिद्ध चर्चा—चूरू की चर्चा का जीवंत दस्तावेज है। सरदारशहर से कालूगणी चूरू पधारे। प्रतिपक्षी साधु भी वहां पहुंच गए। स्थानीय लोगों को भ्रान्त करने के लिए उन्होंने छेद सूत्र में वर्णित बारह प्रकार संभोग/संभोज को चर्चा का विषय बनाया। श्रावक गोरूलालजी ने कहा—'तेरापंथी कभी सूत्रविरुद्ध प्ररूपणा नहीं करते।' इस पर आचार्य जवाहरलालजी महाराज बोले—'यदि वे हमें सूत्र का पाठ दिखा दे तो हम उन्हें निर्दोष मान सकते हैं।'

उक्त सन्दर्भ में व्याख्यान के समय पूज्य कालूगणी और पूज्य गणेशीलालजी महाराज के बीच चर्चा हुई। चर्चा में अनेक उतार-चढ़ाव आए। आखिर कालूगणी ने समवायांग सूत्र का पाठ दिखाकर पूछा कि बारह प्रकार के संभोगों/संभोजों में कौन-कौन से व्यवहृत हो सकते हैं ? इस पर गणेशीलालजी महाराज बोले कि वे तो कालूगणी से इस प्रश्न का उत्तर लेने आए हैं। सातवें गीत में चर्चा पूरी नहीं होती है, पर इसका वर्णन एक मनोविज्ञान को प्रस्तुति देने वाला है।

आठवें गीत का प्रारंभ अधूरी चर्चा को समापन के बिन्दु की ओर ले जाता हैं। पंडित भगवानदासजी के अनुरोध पर कालूगणी ने व्यवहार सूत्र के आधार पर साधु-साध्वियों के बीच आहार-पानी के आदान-प्रदान की बात युक्तिपुरस्सर प्रस्तुत की। प्रस्तुति का तरीका इतना सुन्दर था कि दोनों पक्षों के लोग चित्रित-से हो गए। इसके बावजूद कुछ व्यक्ति केवल वाद-विवाद ही करना चाहते थे, उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। लगभग पौने दो घंटे की इस चर्चा का समापन आठवें गीत में हुआ है।

कालूगणी के जीवन में चर्चाओं के प्रसंग बार-बार उपस्थित होते रहे। रतनगढ़-प्रवास में पूसराजजी दूगड़ (सरदारशहर) ने प्रश्न पूछा—'तीर्थ कब तक चलेगा ?' कालूगणी बोले—'तीर्थ के दो अर्थ होते हैं—प्रवचन और संघ। प्रवचन रूप तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। संघ रूप तीर्थ के बारे में कोई नियामकता नहीं है।' कालूगणी का उत्तर आगमसम्मत और युक्तिसंगत था। किन्तु अनाग्रही वृत्ति के अभाव में वह बुद्धिगम्य नहीं हो पाया।

राजलदेसर-प्रवास में कालूगणी के पैर के अंगूठे में व्रण हो गया, इस कारण एक महीने से अधिक प्रवास हो गया। उस समय कालूगणी के सान्निध्य का लाभ काफी साधु-साध्वियों को मिला। ग्रन्थकार ने प्रसंगवश साधु-साध्वियों की विशेषताओं को काव्यात्मक प्रस्तुति दी है।

कालूगणी ने एक दिन साधु-साध्वियों की गोष्ठी में तीन बातें कहीं—

१. चर्चा के लिए किसी अन्य स्थान में नहीं जाना और किसी व्यक्ति विशेष को मध्यस्थ नहीं मानना।

२. चर्चा या शास्त्रार्थ करते समय शान्त रहना। चर्चा के समय उत्तेजित होना पहली हार है।

३. शास्त्रार्थ में एक बार में एक ही प्रमाण देना। अन्य प्रमाणों को अपेक्षा होने पर यथासमय प्रस्तुत करना।

कालूगणी की शिक्षात्रयी का सम्बल साथ लेकर साधु-साध्वियों ने विहार किया। उन्होंने जिन-जिन क्षेत्रों में प्रवास किया, वहां आचार्य भिक्षु के मन्तव्यों

का अच्छा प्रचार-प्रसार किया। छोटे-छोटे साधु-साध्वियों की तत्त्व-निरूपण शैली से प्रभावित लोगों ने उनकी तुलना गुदरीवाले गोरख से की। यह नवम गीत का प्रतिपाद्य है।

दसवें गीत के प्रारम्भ में मुनि जोरजी के अनशन का उल्लेख है। गुरु के आदेश बिना की जानेवाली हर क्रिया अभिशाप बन जाती है, उसमें सफलता नहीं मिलती। तेरापंथ की इस घनीभूत आस्था के अनुसार जोरजी का अनशन सफल नहीं हुआ।

वि.सं. १९८५ में कालूगणी का चातुर्मास छापर था। एक ओर चाड़वास एवं बीदासर, दूसरी ओर पड़िहारा, तीसरी तरफ सुजानगढ, बीच में छापर, इस प्रकार पांच गांवों का झुण्ड-सा है। वहां रेवतमलजी नाहटा के मकान में चातुर्मास था। मकान के निकटवर्ती प्रवचन पंडाल में 'जोया' नामक जीवों का भयंकर उपद्रव एक इतिहास बना गया।

उस चातुर्मास में बाहर से यात्री बहुत आए। मुनि तुलसी आदि बाल साधुओं ने कालूगणी के पास सिद्धान्त-चन्द्रिका का अध्ययन शुरू किया। उन दिनों की स्मृति मात्र ने ग्रन्थकार को भावविभोर बना दिया।

उस वर्ष का मर्यादा-महोत्सव लाडनूं था। उस महोत्सव के अवसर पर पूज्य कालूगणी सहित सत्तर साधुओं को एक साथ ज्वर हो गया। मुनि अभयराजजी का अनशन और निकटवर्ती गांवों में परिभ्रमण के उल्लेख के साथ प्रस्तुत गीत सम्पन्न हो गया।

ग्यारहवें गीत में फतेहपुर, रामगढ़, थैलासर, चूरू और सरदारशहर में कालूगणी के प्रवास का वर्णन है। फतेहपुर में सम्पर्क में आनेवाले लोगों के बीच प्रश्नोत्तर का ज्ञानवर्धक क्रम चला। विद्वानों की नगरी रामगढ़ में अनेक विद्वानों की शंकाओं का समाधान हुआ। चूरू में चम्पालालजी कोठारी ने महावीर की चूक का प्रश्न उपस्थित किया। कालूगणी ने स्थानांग सूत्र की चौभंगी का हवाला देते हुए तीर्थंकरों को आत्मानुकम्पी बताया। आत्मानुकम्पी साधक दूसरे की अनुकम्पा कर लब्धिप्रयोग करे तो वह आगम-सम्मत नहीं है। प्रस्तुत प्रसंग को लेकर लम्बी चर्चा चली। सरदारशहर-प्रवास में एक साथ सोलह दीक्षाओं का कीर्तिमान बना।

कालूगणी की यात्रा के प्रभाव को उजागर करनेवाला बारहवां गीत लाडनूं-चातुर्मास की कुछ घटनाओं को अपने में समेटे हुए है। उस चातुर्मास में मुनि तुलसी ने सिद्धान्त-चन्द्रिका नामक संस्कृत व्याकरण कंठाग्र किया। प्रातः वे कालूगणी के पास पाठ पढ़ते और रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश में घंटों-घंटों बैठकर कंठस्थ करते तथा मुनि भीमराजजी के पास दशवैकालिक सूत्र और सिन्दूरप्रकर

का अन्वय सहित अर्थ करते। उसी चातुर्मास में मुनि सोहनलालजी के जीवन में एक दुर्घटना घटी, पर वे उसमें बच गए। किसी भी कारण से सही मार्ग छूटने के बाद पुनः सन्मार्ग पर आने के लिए उन्होंने जिस धृति और सहिष्णुता का परिचय दिया, उनका इतिहास बन गया।

चातुर्मास के बाद कालूगणी आसपास के गांवों में विहार कर मर्यादा-महोत्सव के लिए सुजानगढ़ पधारे। वहां कालूगणी द्वारा संघीय परम्परा के विरुद्ध प्ररूपणा करने की गलती पर मुनि रिखिरामजी पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई।

दो वर्षों से थली संभाग में स्थानकवासी साधु घूम रहे थे। वे जहां भी गए, उन्होंने तेरापंथ की मान्यताओं के विरोध में प्रवचन किए। भ्रमविध्वंसन और अनुकम्पा की चौपई जैसे तेरापंथ के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के खण्डन में सद्धर्ममंडन और अनुकम्पा विचार, अनुकम्पा षंथ आदि ग्रन्थों का निर्माण किया। अनेक पैम्फलेट और पुस्तिकाएं प्रकाशित करवाईं। चर्चा-वार्ताएं भी कीं। किन्तु उनका कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकला। उस स्थिति में महोत्सव के अवसर पर वे सुजानगढ़ पहुंचे और पुनः चर्चा करने की चर्चा करने लगे।

कालूगणी पहले ही निर्णय ले चुके थे कि ज्ञान-बृद्धि के लक्ष्य को छोड़कर केवल वाद-विवाद की दृष्टि से चर्चा के अखाड़े में नहीं उतरना है। अपनी मान्यताएं प्रस्तुत करने का अवसर हो तो, शान्ति के साथ प्रवचन में विवेचन किया जा सकता है। इधर-उधर से चर्चा के स्वर उठे, पर उसका प्रसंग नहीं आया। मर्यादा-महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया।

कालूगणी ने श्रावकों को संकेत दिया कि अब वे विवाद के लिए नहीं, पर प्रश्नोत्तर के रूप में चर्चा कर सकते हैं। उस समय सरदारशहर के तत्त्वज्ञ श्रावक नेमीनाथजी सिद्ध कुछ श्रावकों के साथ आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के पास गए। उन्होंने विनम्रता के साथ प्रश्न किया कि मिथ्यात्वी की सक्रिया भगवान की आज्ञा में है या आज्ञा से बाहर ? आचार्यजी जानते थे कि सिद्धजी का सैद्धान्तिक ज्ञान बहुत ठोस है। इसलिए उन्होंने उस प्रश्न को यों ही टाल दिया। इन सब तथ्यों को बारहवें गीत में पढ़ा जा सकता है।

तेरहवें गीत में गंगाशहर चोखले का प्रवास, चातुर्मास और श्रीडूंगरगढ़ का मर्यादा-महोत्सव वर्णित है। बीकानेर-प्रवास में कुछ मूर्तिपूजक लोग यति जयचन्दजी को साथ लेकर आए। उन्होंने प्रश्न किया कि तेरापंथ के अनुसार कितने आगम मान्य हैं ? कालूगणी ने द्वादशांगी और उससे संवादी आगमों को मान्य बताया। प्रश्न पूछनेवाले किसी पूर्वाग्रह से बंधे हुए नहीं थे। उन्होंने कालूगणी के उत्तर से सन्तुष्टि का अनुभव किया। भीनासर में कुछ स्थानकवासी श्रावकों ने श्रावक

के अव्रत की क्रिया होती है या नही ? यह प्रश्न उठाया। उस युग में प्रश्नोत्तरों का क्रम चलता ही रहता था।

उस वर्ष खानदेश के लोगों की विशेष प्रार्थना पर कालूगणी ने मुनि घासीरामजी को वहां भेजा। खानदेश की उस प्रथम यात्रा में बहुत अच्छा उपकार हुआ। श्रीडूंगरगढ़-प्रवास में बाव (गुजरात) से राणाजी दर्शन करने आए। उनके विशेष अनुरोध पर पोष महीने में साध्वी हुलासांजी का बाव चातुर्मास घोषित किया।

चौदहवें गीत में सरदारशहर का मर्यादा-महोत्सव, बीदासर का चातुर्मास, छापर का मर्यादा-महोत्सव और शेषकाल के विहार तथा प्रवास का वर्णन है। बीदासर चातुर्मास के बाद कालूगणी लाडनूं होकर छापर पधारे। चिकित्सा की दृष्टि से मुनि तुलसी को लाडनूं रहना पड़ा। उस प्रसंग में कालूगणी की करुणा का उल्लेख गुरु-शिष्य की अन्तरंग आत्मीयता को उजागर करने वाला है। उन्हीं दिनों मुनि वृद्धिचन्दजी की स्खलना पर कालूगणी ने जो अनुशासन किया, उससे पूरे धर्मसंघ को विशेष प्रशिक्षण मिल गया।

महोत्सव के बाद कालूगणी राजगढ़ पधारे। उस वर्ष गर्मी बहुत भयंकर थी। राजस्थान की गर्मी कैसी होती है, उस समय जैन मुनियों की क्या स्थिति होती है तथा आम जनता क्या करती है, इसका सांगोपांग विवेचन कवि की कल्पना और शब्द-विन्यास में अद्‌भुत सामञ्जस्य स्थापित करने वाला है।

पन्द्रहवें गीत का प्रारम्भ गर्मी की उत्कटता का सूचक है। उस वर्ष का चातुर्मास सरदारशहर था। राजगढ़ से सरदारशहर बहुत दूर नहीं है। किन्तु रास्ते में कालूगणी को लू लग गई। उस स्थिति में रास्ता पार करना कठिन हो गया। कदम-कदम पर रुककर चलते हुए एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक पहुंचने में कालूगणी को कितना कष्ट हुआ, इस वर्णन को पढ़कर पाठक भी बेचैन हो सकता है। एक दिन की आकस्मिक वर्षा से मिली थोड़ी-सी राहत से सरदारशहर पदार्पण हो गया।

सरदारशहर पहुंचने के बाद चातुर्मास शुरू होने पर भी वर्षा विशेष नहीं हुई। श्रावण मास में भी कालूगणी को गर्मी का भयंकर परीषह सहना पड़ा। आखिर भाद्रपद मास में वर्षा हुई। कालूगणी स्वस्थ हुए। धर्मसंघ में प्रसन्नता की लहर आ गई।

उस चातुर्मास में अन्य सम्प्रदाय के एक मुनि ने श्मशान में जाकर धरणा दिया। बहुत समझाने पर भी उन्होंने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। आखिर बीकानेर से होम मिनिस्टर शार्दुलसिंहजी ने आकर जैसे-तैसे सामंजस्य बिठाया।

फतेहपुर की एक श्राविका श्रीमती रतनी देवी दीक्षा लेना चाहती थी, पर परिवारवालों ने दीक्षा की आज्ञा नहीं दी। श्राविका ने संकल्प कर लिया कि आज्ञा प्राप्त किए बिना भोजन नहीं करना है। इधर बहन का संकल्प और घरवालों की पकड़, उधर परिवार की आज्ञा बिना दीक्षा न देने की कालूगणी की नीति। तीनों अपने प्रण में पक्के रहे। दृढ़धर्मिणी श्राविका ने अपने प्रण की संपूर्ति में प्राणों की बाजी लगा दी।

प्रस्तुत गीत के अन्त में रिखिराम-लच्छीराम के प्रसंग में कालूगणी द्वारा की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही का ऐतिहासिक प्रसंग भी उल्लेखनीय है। आचार्य सब कुछ सहन कर सकते हैं, पर अनुशासन का भंग बर्दाश्त नहीं कर सकते। क्योंकि संघ की दीर्घजीविता का मूलभूत आधार वही है। पन्द्रहवें गीत की ये प्रमुख-प्रमुख घटनाएं हैं।

सोलहवां गीत उल्लास का अन्तिम गीत है। इसमें वि.सं. १९७९ से १९८९ तक दस वर्षों में हुई दीक्षाओं का लेखा जोखा है। धन मुनि और चन्दनमुनि (सिरसा) की बड़ी दीक्षा छह महीनों के बाद हुई। क्योंकि उनके संसारपक्षीय पिता मुनि केवलचन्दजी की दीक्षा उनके बाद हुई थी। पिता को दीक्षापर्याय में बड़ा रखने के लिए जैनशास्त्र में सम्मत यह प्रयोग किया गया। दीक्षा का वर्णन जितना संक्षिप्त है, उतना ही रोचक है। दस वर्ष की दीक्षाओं का विवेचन एक साथ प्रस्तुत करने पर भी पद्य-रचना में उसे इतने व्यवस्थित ढंग से पिरोया गया है कि पढ़ने में कहीं भी अरुचि नहीं होती।

प्रत्येक उल्लास के अन्त में संस्कृत श्लोकों के साथ उस उल्लास में विवेचन विषय को छह भागों में विभक्त किया गया है। यह विभक्तीकरण भी नई शैली में और संस्कृत गद्य में निबद्ध है। अपने जीवन में नए-नए प्रयोग करते रहना आचार्यश्री तुलसी को अभीष्ट रहा है, वैसे ही उन्होंने अपनी रचनाओं में भी नए प्रयोग किए हैं। कालूयशोविलास इसका जीवन्त निदर्शन है।

नया संस्करण : नया परिवेश

आचार्यश्री तुलसी की काव्यकृतियों में शीर्षस्थ कृति है 'कालूयशोविलास'। इसमें पूज्य कालूगणी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को जिस रूप में उजागर किया गया है, वह कृतज्ञता-ज्ञापन का एक अद्भुत उदाहरण है। इस काव्य का शब्दशिल्पन विशिष्ट है अथवा भावबोध? इस प्रश्न को उत्तरित करना आसान नहीं है। प्रस्तुत काव्य की भाषा, भाव और शैली, तीनों में अपनी वरीयता स्थापित करने की प्रतिस्पर्द्धा-सी प्रतीत हो रही है। आचार्यपद का दायित्व संभालने के बाद प्रथम तीन वर्ष अपनी कार्यक्षमता और अनुभव सम्पदा की श्रीवृद्धि में नियोजित कर आचार्यश्री ने सृजनयात्रा प्रारंभ की। चार वर्षों के पुरुषार्थ की प्रतिकृति प्रस्तुत काव्यकृति आचार्यश्री की नैसर्गिक सृजनशीलता का जीवन्त साक्ष्य है।

वह युग मुद्रण की सुविधा का नहीं था और हमारे धर्मसंघ में मुद्रण की प्रवृत्ति भी नहीं थी। फलतः तीन दशकों तक कालूयशोविलास संघ के ग्रन्थ-भंडार की शोभा बढ़ाता रहा। पर इसकी हस्तलिखित प्रतियां प्रचुर मात्रा में तैयार हो गईं और काव्य-रसिक साधु-साध्वियों द्वारा प्रवचन में उनका उपयोग भी होता रहा।

कालूयशोविलास की रचना के तीन दशक बाद इसके सम्पादन का प्रसंग उपस्थित हुआ। उस अवसर पर आचार्यश्री ने दिल खोलकर इसका परिष्कार किया और एक प्रकार से इसे नया स्वरूप प्रदान कर दिया। 'कालू-जन्म-शताब्दी' के ऐतिहासिक अवसर पर कालूयशोविलास का प्रकाशन हुआ। काव्यरसिक, इतिहास के अनुसन्धाता और स्वाध्यायप्रेमी पाठकों को एक नया उपहार मिल गया।

कालूयशोविलास एक जीवनचरित्र है, फिर भी साधारण पाठकों के लिए सहज बोधगम्य नहीं है। इसके कतिपय स्थल तो इतने वैदुष्यपूर्ण हैं कि उन्हें पढ़ते-पढ़ते प्रबुद्ध वर्ग की मति चकरा जाती है। यदि वाचक अध्यवसायी, अनुभवी और रागिनियों का जानकार हो तो श्रोताओं को दीर्घकाल तक बांधकर रख सकता है।

कालूयशोविलास का निर्माण होने के बाद आचार्यश्री ने परिषद में इसका वाचन किया। इसी प्रकार सम्पादन के बाद भी प्रवचन के समय कालूयशोविलास का वाचन हुआ। श्रोता मुग्ध हो गए और इसका स्वाध्याय करने के लिए उतावले हो उठे। ग्रन्थ प्रकाशित होकर आया। प्रथम संस्करण को पाठकों ने सिर-आंखों पर उठा लिया।

काव्यशैली में लिखे गए कालूयशोविलास को ग्रन्थ के स्थान पर महाग्रन्थ कहना अधिक उपयुक्त रहेगा। इसका प्रथम संस्करण बहुत जल्दी पाठकों के हाथों में चला गया। कुछ वर्षों की प्रतीक्षा के बाद द्वितीय संस्करण छपकर आया। प्रतीक्षारत पाठकों को अपनी मनपसंद काव्यकृति उपलब्ध हो गई।

कालूयशोविलास का भाषाशास्त्रीय अध्ययन जितना आवश्यक है, इसकी रागिनियों का अवबोध और अभ्यास उससे भी अधिक जरूरी है। इस अपेक्षा को ध्यान में रखकर स्वयं आचार्यश्री ने अनेक बार साधु-साध्वियों को कालूयशोविलास की रागिनियों का प्रशिक्षण दिया, उनका अभ्यास कराया।

राजस्थानी भाषा में अनुसन्धान करने वाले कुछ छात्रों ने कालूयशोविलास को शोध का विषय बनाया। संभवतः एक-दो छात्रों ने उस पर डॉक्टरेट की उपाधि भी प्राप्त कर ली होगी। किन्तु कालूयशोविलास पर अनुसन्धान की कोई इयत्ता नहीं है। इस एक ही ग्रन्थ पर पचासों व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टि से काम कर सकते हैं।

कुछ वर्ष पहले राजस्थानी भाषा के विशिष्ट विद्वान डॉ. देव कोठारी ने, जो अभी-अभी राजस्थान सरकार द्वारा राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी के अध्यक्ष मनोनीत हुए हैं, एक शोधार्थी को कालूयशोविलास पर काम करने की प्रेरणा दी। शोधार्थी को बुकस्टॉल पर पुस्तक नहीं मिली। भाई देवजी ने किसी अन्य स्रोत से पुस्तक उपलब्ध कर शोधार्थी की समस्या को समाहित कर दिया। पर उन्होंने एक ऐसा प्रश्नचिह्न छोड़ दिया, जो ग्रन्थ के प्रकाशक या सम्पादक के लिए चुनौतीपूर्ण था।

आदर्श साहित्य संघ के बुकस्टॉल पर पिछले बहुत वर्षों से कालूयशोविलास की पुस्तक नहीं थी। पुनर्मुद्रण की अपेक्षा स्पष्ट रूप में परिलक्षित हुई। प्रस्तुत सन्दर्भ में एक चिन्तन आया कि इसके छहों उल्लासों के प्रारंभ में 'मंगलवचन' रूप में कुछ दोहे हैं, वे बहुत क्लिष्ट हैं। उनका हिन्दी अनुवाद अपेक्षित है। इसी प्रकार चतुर्थ उल्लास की दसवीं ढाल के कुछ पद्य डिंगल कविता के रूप में हैं। उन्हें समझना तो और भी कठिन है। उनका भी हिन्दी रूपान्तरण हो जाए तो सुविधा रहेगी।

प्रबुद्ध पाठकों की उक्त अपेक्षा आचार्यश्री महाप्रज्ञ के सम्मुख रखी गई तो आचार्यश्री ने भी स्वीकार किया कि कुछ पद्यों का हिन्दी अनुवाद आवश्यक है। स्वयं आचार्यश्री ने विशेष अनुग्रह कर उनका अनुवाद लिखवा दिया।

पुस्तक प्रेस में गई और कम्पोज होकर आ गई। पृष्ठ संख्या में वृद्धि स्वाभाविक थी। एक विशालकाय ग्रन्थ को हाथ में लेकर पढ़ना और विशेष रूप से प्रवचन में उसका उपयोग करना दुरूह-सा लगा। समस्या आचार्यश्री को निवेदित की गई। आपने निर्देश दिया कि ग्रन्थ को दो खण्डों में सम्पादित कर दिया जाए। समाधान की दिशा खुल गई।

आचार्यवर के निर्देशानुसार प्रथम तीन उल्लास और उनसे सम्बन्धित परिशिष्ट एक खण्ड में संयोजित कर दिए गए। शेष तीन उल्लास तथा पांच शिखाएं और उनसे संबद्ध परिशिष्ट दूसरे खण्ड में समायोजित हो गए। एक ग्रन्थ को दो खण्डों में विभक्त कर देने से कुछ नया जोड़ने का अवकाश हो गया। फलतः संक्षिप्त उल्लास-परिचय को पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है तथा प्रथम परिशिष्ट (सांकेतिक घटनाएं) का अनुक्रम भी जोड़ दिया गया।

कालूयशोविलास में कुल एक सौ एक गीत हैं तथा कुछ अन्तर्गीत हैं। कई गीतों की रागें अनेक बार काम में ली गई हैं, इस दृष्टि से नए गीतों की संख्या कुछ कम हो सकती हैं। जितने गीत ग्रन्थ में प्रयुक्त हुए हैं, उनकी मूल रागिनियों का एक पद या पदांश गीत के नीचे दिया गया है। इस क्षेत्र में रुचि रखने वाले कुछ व्यक्तियों से सुझाव मिला कि इन रागिनियों के एक-एक पद्य संकलित कर दिए जाएं तो एक महत्त्वपूर्ण काम हो सकता है। आज पुरानी रागों को जानने वाले एवं गानेवाले गायक बहुत कम हैं। भविष्य में उनकी संख्या में वृद्धि की संभावना तो है ही नहीं, यह संख्या दिनोंदिन घटती जा रही है। ऐसी स्थिति में मूल गीतों के एक-एक पद्य भी सुरक्षित रहेंगे तो कभी ऐसा युग आ सकता है, जब इस दिशा में नई चेतना का जागरण हो जाए।

सुझाव अच्छा था, पर काम श्रमसाध्य ही नहीं, असाध्य-सा प्रतीत हुआ। शासनगौरव मुनिश्री मधुकरजी पहले से ही इस कार्य में संलग्न थे। उन्हें आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में पुरानी रागिनियों को सीखने व गाने के अवसर मिलते रहे। इस विषय में आचार्यश्री भी उनके प्रति पूरे विश्वस्त थे। मुनिश्री मधुकरजी के सहयोग से यह कार्य सुगमता से हो सकता है, इस विश्वास के साथ उन्हें निवेदन किया कि वे अपने कार्य को शीघ्र पूरा कर सकें तो कालूयशोविलास के नए संस्करण में एक परिशिष्ट बढ़ा-दें। मुनिश्री मधुकरजी ने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया, फिर भी कुछ गीतों के पद्य उपलब्ध नहीं हो पाए। अनुपलब्ध की

उपलब्धि के लिए अब भी उनका प्रयास जारी है। अन्य स्रोतों से भी खोज की जा रही है। किन्तु उसकी प्रतीक्षा में ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण को रोकना उचित नहीं लगा। प्रस्तुत परिशिष्ट के लिए मुनिश्री के प्रति आभार ज्ञापन की औपचारिकता न करके ग्रन्थ के सम्पादन में उनकी सहभागिता को समादर देती हूं।

प्रस्तुत संस्करण के प्रूफनिरीक्षण का कार्य साध्वी जिनप्रभाजी और साध्वी कल्पलताजी ने किया। साध्वी चित्रलेखाजी, शारदाश्रीजी, अनुशासनश्रीजी और शुभप्रभाजी ने भी इस कार्य में हाथ बटाया। नामानुक्रम वाला परिशिष्ट साध्वी चित्रलेखाजी ने तैयार किया। साध्वी जिनप्रभाजी ने इसे अन्तिम रूप दिया। विशेष शब्दकोश के समाकलन में साध्वी कल्पलताजी और साध्वी विवेकश्रीजी का श्रम लगा। आचार्यवर के आशीर्वाद एवं साधु-साध्वियों के निष्ठापूर्ण परिश्रम से कालूयशोविलास का नया संस्करण नए परिवेश में पाठकों के हाथों में पहुंचेगा। पाठक अपनी परिष्कृत स्वाध्याय-रुचि का भरपूर उपयोग कर इसका रसास्वादन करते रहेंगे, ऐसा विश्वास है।

सिरियारी

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

५ जुलाई २००४

जीवन-झलक

कालूगणी के जीवन से संबंधित ज्ञातव्य विवरण

जन्म

छापर (राजस्थान)
विक्रम संवत १९३३, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
(१५ फरवरी, सन १८७७, गुरुवार)

मुनि-दीक्षा

बीदासर (राजस्थान)
विक्रम संवत १९४४, आश्विन शुक्ला तृतीया
(२० सितंबर, सन १८८७, मंगलवार)

युवाचार्य-पद

लाडनूं (राजस्थान)
विक्रम संवत १९६६, प्रथम श्रावण कृष्णा प्रतिपदा
(४ जुलाई, सन १९०९, रविवार)

आचार्य-पदारोहण

लाडनूं (राजस्थान)
विक्रम संवत १९६६, भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा
(२९ सितंबर, सन् १९०९, बुधवार)

स्वर्गारोहण

गंगापुर (राजस्थान)
विक्रम संवत १९९३, प्रथम भाद्रपद शुक्ला षष्ठी
(२३ अगस्त, सन १९३६, रविवार)

कालूयशोविलास

प्रस्तुति

१

परम उपास्य परम उपकारी, मानव संस्कृति रा आधार।
भैक्षवगण अष्टम अधिशास्ता, युग-विकास रा सरजणहार।
श्री कालू जीवन-दर्शण री, आ अनन्य अनुभूत कृति।
प्रस्तुत है श्री संघ सामनै, सादर सविनय सप्रणति।।

२

दो हजार संवत री रचना, नव संपादन रो प्रारंभ।
बत्तीसै जयपुर-पावस में, सश्रम काम चल्यो अविलंब।
तेतीसै सरदारशहर में, श्रावण बिद सातम संपन्न।
ई दर्पण में प्रतिबिम्बित, भावी अतीत अरु प्रत्युत्पन्न।।

३

तुलसी-विरचित कनकप्रभा-संपादित कालूयशोविलास।
मूर्तिमान संघीय भावना, आत्म-साधना रो विश्वास।
चातुर्वर्णी श्रमण-संघ, स्वीकार करो अभिनव उपहार।
पढ़ो बढ़ो नित प्रगति पंथ पर, सुमर-सुमर सद्गुरु-उपकार।।

आचार्य तुलसी

प्रथम उल्लास

उपजाति-वृत्तम्

१. यदीयमाख्यं श्रुतिमार्गमाप्तं,
भिनत्ति पापानि पुरार्जितानि।
तं मूल-सूनुं सुगुणैरनूनं,
श्रये सदैवालिरिव प्रसूनम्।।

जिनका नाम श्रवण ही पूर्वार्जित पापों का विनाश कर देता है, जो श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण हैं, उन कालूगणी की शरण मैं वैसे ही स्वीकार करता हूं, जैसे भ्रमर फूलों की।

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

२. [1]श्रीरासीत् सततं तनू-सहचरी यस्य स्वभावाभिका,
लुब्धो यस्य वपुष्यरंस्त सुगुणव्रातः सदा विश्वपूः।
ज्यायां यस्य च विश्रुता विमलता त्रैलोक्यपूज्योऽपि यः,
नम्रस्तं शिवतातिरस्त्विति गुरुं संप्रार्थये सोद्यमः।।

श्री स्वभाव से ही जिनकी सहचरी थी, विश्व को पावन करने वाला गुण-समूह जिनके प्रति अनुरक्त था, जिनकी विमलता विश्व-विश्रुत थी और जो तीन लोक में पूज्य थे, मैं उन्हें विनम्रभाव से प्रार्थना करता हूं कि वे गुरुदेव (श्रीकालूगणी) हमारे लिए शिवताति—शुभंकर हों।

---

१. इस पद्य की एक विलक्षणता है कि इसकी प्रत्येक पंक्ति के आदिम और अंतिम अक्षरों से एक विशिष्ट मंगल वाक्य 'श्री कालुपूज्याय नमः' की संरचना होती है। यह एक प्रकार से चित्रालंकार का सूचक है।

उपजाति-वृत्तम्

३. कल्याणकार्यस्ति समस्तकार्ये,
यद्यप्ययं मूलसुतः स्मृतः सन्।
तथाप्यमुष्मिन् सुतरां समस्तु,
विज्ञप्तिरित्थं क्रियते मया प्राक्।।

यद्यपि कालूगणी की स्मृति प्रत्येक कार्य में मांगलिक है, फिर भी मैं कार्यारंभ से पहले आवेदन करता हूं कि वे इस काव्य के रचनाकाल में विशेष रूप से मांगलिक हों।

मंगल वचन

दोहा

१. स्वस्ति-श्री-शुभ-संतती विशद वल्लरी-व्रात।
विकसावण सावण-जलद, नमूं नाभि-तनुजात।।

मैं नाभि-सुत प्रथम तीर्थंकर ऋषभ को नमन करता हूं, जो स्वस्ति, श्री और श्रेयस की सन्तति रूपी विशद वल्लरी-समूह को विकसित करने के लिए सावन का जलधर है।

२. बाल्य-राज्य-साम्राज्य-मुनि-जिन-श्री-असुहित-चित्त।
वरी मुक्ति-कमला बली, स्मरूं शान्ति सुपवित्त।।

बाल्यश्री, राज्यश्री, साम्राज्यश्री, मुनिश्री और जिनश्री—इतने श्रीसमूह को प्राप्त करके भी जिसका चित्त तृप्त नहीं हुआ, जिसने अंत में मुक्तिश्री का वरण किया, उस सुपवित्र अर्हत शांतिनाथ का मैं स्मरण करता हूं।

३. मोह-वीर श्री वीर नै, करवायो संकल्प।
क्षीण-मोह तिण स्यूं प्रथम, वंदूं विगत-विकल्प।।

कर्म-समूह में सर्वाधिक वीर है मोह। उसने महावीर को एक मोहात्मक संकल्प करवा दिया—माता-पिता के जीवनकाल में दीक्षा नहीं लूंगा। वीर वर्धमान ने इसीलिए सर्वप्रथम मोहकर्म का क्षय किया। उस वीर को मैं निर्विकल्प होकर वंदना करता हूं।

४. आदि-भान-उपमान-युत, है जग-जाहिर ख्यात।
मानसमंदिर में बसो, दीपक दीपांजात।।

आदि तीर्थंकर, अर्हत ऋषभ से जिसकी तुलना होती है, वह दीपक (स्व-पर-प्रकाशी दीपक) दीपां-सुत मेरे मन-मंदिर में वास करे। उसकी ख्याति

विश्वविख्यात है।

५. भैक्षव-वंश-वतंस-सम, पृथिवी-प्रथित-प्रशंस।
कालू भ्रम-तम-ध्वंस-हित, जाणक उदयो हंस।।

श्री कालू आचार्य भिक्षु की वंश-परंपरा में मुकुट के समान है, जिसका यश पृथ्वी पर फैला हुआ है, जो भ्रम रूप तम का विध्वंस करने के लिए मानो सूरज के रूप में उदित हुआ है।

६. पुरुषोत्तम रो अप्रगट, करण रूप प्रत्यक्ष।
मूल-तनय उपमानमय, किं वा दक्ष समक्ष।।

पुरुषोत्तम—तीर्थंकर के परोक्ष रूप को प्रत्यक्ष करने के लिए श्री कालू उपमा बन गए—तीर्थंकर को देखना हो तो श्री कालू को देखो। क्या विद्वज्जगत के सामने यह कल्पना की जा सकती है? अवश्य।

७. पद-पंकज प्रमुदितमना, प्रणमी मधुर सुवास।
भव-त्रासन-नाशन रचूं कालूयशोविलास।।

उस पुरुषोत्तम रूप श्री कालू के मधुर सुवास से सुवासित चरण-कमल को प्रमुदित मन से प्रणाम कर मैं (आचार्य तुलसी) संसार के संत्रास का नाश करने वाले कालूयशोविलास की रचना करता हूं।

८. यद्यपि मम मति रो विषय नहिं गुरुयशोविलास।
तथापि तत्कृपया भवतु, सहसा सफल प्रयास।।

यद्यपि गुरु का यशोविलास करना मेरी बुद्धि की सीमा से परे है, फिर भी मैं जो प्रयास कर रहा हूं, वह उस महान गुरु की कृपा से ही सफल बने, यह मेरी मंगल आशंसा है।

ढाळः १.

दोहा

१. कालू शासनकल्पतरु, कालू कलानिधान।
कालू कोमल कारुणिक, कालू गण की शान।।
२. कालू छोगां-मूल-सुत, कालू मघवा-शिष्य।
कालू डालिम-पट्टधर, निज व्यक्तित्व विशिष्य।।
३. धर्मसंघ नै दी सुगुरु, एक नई-सी मोड़।
जिज्ञासू जनता-हृदय, जिज्ञासा री दोड़।।
४. स्वल्प मात्र भी यदि हुवै, समाधान-संधान।
तो अनुभवूं कृतार्थता, ओ उद्देश्य प्रधान।।
५. जनम चरण गुरुपदवरण, वरणन सरस सुवाद।
षडुल्लासमय सांभलो, तज प्रमिला परमाद।।

[1]सुणिए सयणां! रचित सुवयणां
गुरुध्याख्यान सुरंगो रे, सयाणां!

६. इण ही जम्बूद्वीपे[2] दीपे,
दक्षिण भरत[3] दिदारू रे, सयाणां!
देश मरुस्थल जल-थल-विश्रुत,
आर्यक्षेत्र-अधिकारू[4] रे, सयाणा!
७. निकट-निकट बहु शहर सुरंगा, इकरंगा जिण देशे रे।
बेळू-पर्वत पर्वत-सवया, प्रवया परिणत-वेशे रे।।
८. रयणी रेणुकणां शशि-किरणां, चळकै जाणक चांदी रे।
मनहरणी धरणी यदि न हुवै अति आतप अरु आंधी रे।।
९. जिण जनपद में अनुपद निवसै, जन जिनशासन-राता रे।
गुरु भिक्खण को 'सिक्को' धारी, भारी विलसै साता रे[5]।।

---

१. लय : म्हांरै रै पिछोकड़ बाह्यो रे कुसुम्भो
२. देखें प. १ सं. १
३. देखें प. १ सं. २
४. देखें प. १ सं. ३
५. देखें प. १ सं. ४

१०. सहज सरल श्रद्धालू, है हृदयालू धर्माभ्यासी रे।
बहु परिवार अपार धान्य-धन, मुनि-सेवा-अभिलाषी रे।।
११. जिण धरणी पर अद्भुत मघवा, मूल रूप अवतारी रे।
भोगविरागी कांचनत्यागी, बलि सुरपुर संचारी रे।।
१२. रायचन्द जय मघ अघवारण, वारणरिपु गुरु विचर्‌या रे।
वर उपदेश हमेश सुणी जन, तन-मन-संकट विसर्‌या रे।।
१३. इसै अनोखै स्थल रो नाम, मरुस्थल नहीं सुहावै रे।
स्वर्णस्थल भल भावै भाखत, कुण-सी बाधा आवै रे।।
१४. बीकानेर से'र रजधाणी, 'बीकां'[1] री अति छाजै रे।
रणबंका राठोड़ ठोड़ तिण, डूंगरसिंह नृप राजै रे।।
१५. छापुर पुर सुरपुर सम सुन्दर, वर्जित व्याधि-विपद स्यूं रे।
बाहिर ताल विशाल बण्यो मनु, जिन-जन्मोत्सव-मद स्यूं रे।।
१६. सकल वंश अवतंस विलक्षण, ओसवंश अविकारी रे।
बसै शाह बुधसिंह बोपड़ा, बारू नख कोठारी रे।।
१७. पंच तनूज[2] मनूज-सरूपे, शा-घर-घरणी जाया रे।
हरस बधाय मंगल गाया, मोच्छब अधिक मनाया रे।।
१८. पांच पुत्र में दूजो नन्दन, मूलचन्द इण नामे रे।
सरल स्वभावी नहिं मायावी, महिमा ठामो-ठामे रे।।
१९. तिण ही देशे भावुक वेशे शा'जी अन्य पिछाणे रे।
नरसिंहदास वास 'कोटासर' जात लूणिया जाणो रे[3]।।
२०. तिण घर छव सुत तीन सुता में, छोटी छोगां बाई रे।
जुगती जोड़े लाडे-कोडे, मूलचन्द नै ब्याही रे[4]।।
२१. अविहड़ नेहे दम्पति गेहे, रहता बहता साता रे।
सांसारिक सुख विलसत उलसत, काल न जाण्यो जातां रे।।
२२. वय युवती दुवतीस बरस री, पाई अंग निरोगां रे।
शुभ संजोगां विगत-विजोगां, प्रसव्यो नन्दन छोगां रे।।

---

१. बीका सरदार
२. फर्शरामजी, मूलचन्दजी, खूबचन्दजी, दुलीचन्दजी और डालचन्दजी
३. नरसिंहदासजी पहले कोटासर रहते थे। वि. सं. १९४० से वे श्रीडूंगरगढ़ आकर बस गए।
४. छोगांजी का विवाह वि. सं. १९१६ के समय ढंढेरू ग्राम में हुआ। स्थानीय ठाकरों के साथ विरोध होने के बाद वे वि. सं. १९१९, सावन महीने में छापर आकर बस गए।

२३. विक्रम उगणीसे तेतीसे, वर्षे फाल्गुन मासी रे।
सुद पख दूज रु वार बृहस्पत, कन्या लगन विलासी रे।
२४. माता मन में मोद न मायो, निरखी निज नानूड़ो रे।
निलवट नीको अष्टम-शशि-सम, लोचन-युगल चरूड़ो रे।
२५. शुभ लक्षण कर लक्षित रक्षित, कोठारी-कुल केतू रे।
भावी तेरापंथ-पथाधिप, भवसागर रो सेतू रे।।
२६. रंग विलास उजास घरो-घर, सज्जन सहु हुलसावै रे।
जबर भाग-संजोगे जननी, अनुपम नन्दन पावै रे।।

सोरठा

२७. जन्मकुण्डली खास, नेष्ट-निर्मिता[1] है निमल।
शुभ-ग्रह-पूरित वास, चतुरां मति चकरावणी।।

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

२८. तार्तीयेके सहजभुवने मंगलो वासमेति,
तूर्ये स्थाने गुरुरथ पदे पञ्चमे सौम्यशुक्रौ।
षष्ठे राहुः शनि-रवि-युतः सप्तमे कौमुदीशः,
केतुश्चान्त्ये ग्रहगतिरियं लग्नमत्रास्ति कन्या।।

जन्म-कुण्डली

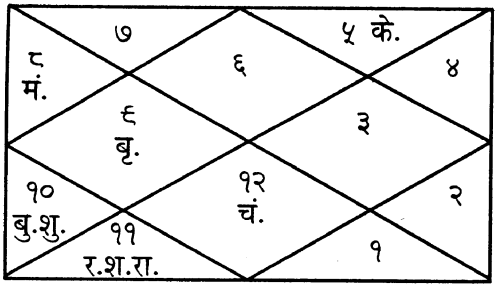

[2]सुणिए सयणां! रचित सुवयणां,
गुरुव्याख्यान सुरंगो रे, सयाणां!

---

१. प्रश्न पूछकर बनाई गई कुण्डली को नेष्ट-निर्मित कहा जाता है।
२. लय : म्हांरे रे पिछोकड़

२९. शुभ वेळा पुल ग्रह नक्षत्र, पवित्र वार मन भावै रे।
पुण्यवान रै पगले-पगले, दोड़्या-दोड़्या आवै रे।।
३०. नन्दन कुल-आनन्दन, इण संदर्भे साच कहीजै रे।
प्रथम ढाळ सुत-राग-कुसुंभे, माता मन रंगीजै रे।।

ढाळः २.

दोहा

१. तीन दिवस रो जद हुयो, मूल-लाल सुविशाल।
तब स्यूं ही खटकण लग्यो, शत्रु-हृदय में शाल।।
२. निशि में सुख स्यूं सो रही, छोगां अंगज पास।
दानव एक डरावणो, परम भयंकर भास।।
३. काळो कज्जल-सोदरू, घटा घनाघन घोर।
जड़ सजोर आयो जठै, सूतो मूल-किशोर।।
४. साहस सिंहणी-सो धरी, सुत तनु-हेठै राख।
जा जा रे पापी! परो, यूं कीन्ही मुख हाक।।
५. सुत नै तो संकट नहीं, होवण द्यूं तिलमात।
दियो पछाड़ो हाथ रो, यूं कहती तब मात।।
६. ततखिण जा अळगो पड़्यो, जाणक तामस-रूप।
क्षण में दृष्टि-अगोचरू हुयो पाप को धूप।।
७. सुत-शरीर कुशले रह्यो, अहल न आयो मूल।
शैल नहीं डोलै सहज, बजो भले वातूल।।

[1]सुणो-सुणो रे सयण! गुरु-चरित खरो।
चरित खरो निज दुरित हरो, भव-सरित तरो।।

८. द्वादशमें दिन ओच्छबपूर्वक, राशी[2] रै अनुसारे।
शोभाचन्द अमन्द नाम, थाप्यो सारे परिवारे।।
९. मात-पिता मन रंगे नन्दन, कालू नाम बुलायो।
हाथो-हाथ संचारी सुत नै, हँस-हँस कर हुलरायो।।

---

१. लय : जय जय जय जय जिनजी नै नमूं
२. कुंभ राशि

१०. चोतीसे पति मूलचन्दजी, कालधर्म जब पायो।
कालान्तर श्री छोगां सुत-युत, पीहर वास बसायो।।
११. नन्दन रो मुख निरखी जननी, निज मन नै बहलावै।
दुख री घड़ियां आलंबन बिन, बरस बरोबर जावै।।
१२. डूंगरगढ़ में सन्त-सत्यां रो, मिल्यो जोग मनभायो।
दुःखित जन विश्राम सन्त जन, आन्तर घाम मिटायो।।
१३. माता सुत साझै उपासना, मुनि उपदेश सुणावै।
जाणी जग जंजाल बाल-वय, वर वैराग उपावै।।
१४. वय साथे वैराग भावना, दिन-दिन बढ़ती जावै।
रामत ख्याल विनोद बीच नहिं, चित्त रती ललचावै।।
१५. श्री भैक्षवशासन रा भर्ता, पंचम-पट अधिकारी।
मघवा गणिवर स्थिर प्रज्ञाधर, पावन पतित-उधारी।।
१६. वर वदनारविंद री आभा, निरख न नयन अघावै।
शारद शान्त शशांक-चन्द्रिका शीतलता सरसावै।।
१७. अनुपमेय संघयण-सौम्यता, बरबस जन-मन खींचै।
पाप-ताप-परितप्त हृदय नै, शान्त सुधा स्यूं सींचै।।
१८. विहरमाण सरदारशहर इकचालीसे चोमासे।
सती गुलाब गुलाब-कुसुम-सी परिमल आसे-पासे।।
१९. खबर लही जब ही तब ही, सरदारशहर बहि आया।
माता[1] मासी-सुता[2] साथ, गुरु निरखी नयन लुभाया।।
२०. विधियुत वंदी गुरु-पद-पंकज, अनिमिष नयन निहारै।
गुरु मघवा लख भावी बालक, महर नजर निरधारै।।
२१. दीक्षा-कल्प नहीं तिण वेळां, फिर डूंगरगढ़ आया।
चउमासो उत्तरियां गणि पिण, विहरत भवि-मन-भाया।।
२२. मोमासर राजलदेसर हो, रतनगड्ढ पड़िहारै।
चन्देरी मोच्छब करि गुरुवर, मरुधर देश पधारै।।
२३. पुनि-पुनि बारंबार पठाया, छापुर गिरिगढ़ वारू।
सन्त-सती-सिंघाड़ा[3], छोगां-सुत वैराग्य-वधारू।।

---

१. छोगांजी
२. कानकंवरजी
३. देखें प. १ सं. ५

२४. विचरत मारवाड़ महिमण्डल, मघ गणप्रति मंडाणे।
बंयालीसे पावस ठायो, जबर झण्ड जोधाणै।।
२५. साध्वीप्रमुखा सती गुलाबां, आराधक पद पाई।
धन्य-धन्य मघवा-सहोदरी, सौ-सौ बार बधाई।।
२६. माघ-महोत्सव जोजावर कर, मेदपाट-महि तारी।
विचरत पावस महर कराई, उदयपुरे अवतारी।।
२७. दौलतगढ़ मोच्छब कर, पावन की नगरी चन्देरी।
श्री कालू जननी सह गुरु-पद भेट्या करी न देरी।।
२८. बारंबार विनीत प्रार्थना कर दिल दृढ़ता धारी।
श्री श्रीकालूयशोविलासे, दूजी ढाळ उचारी।।

ढाळः ३.

दोहा

१. मघ मुनिपति तब मोकळ्यो, मुनिवर आणंदराम[1]।
चरचा[2] बोल[3] सिखाण हित, डूंगरगढ़ अभिराम।।
२. शहर लाडणूं स्यूं मघव, विहरत बुद्धि विशाल।
बीदासर पावस ठव्यो, चम्मालीसे साल।।
३. अब संयमश्री स्वीकरण, करण आत्म-उद्धार।
श्री कालू परिकर सहित, आया पक्की धार।।
४. शुक्ल तीज आसोज री, स्वाती शुभ नक्षत्र।
मूल-पुत्र दीक्षा तिथी, थापी शासनछत्र।।
५. बैंगाणी बीदाण रो, श्रेष्ठी शोभाचन्द[4]।
दीक्षा रो ओच्छब करै, धरै अमित आनन्द।।

[5]गुरुवर! अब मोय तारो जी,
अब मोय तारो पार उतारो, कारज सारो जी।
गुरुजी! विनवूं बे कर जोड़, वीनतड़ी उर धारो जी।।

---

१. देखें प. १ सं. ६
२. आचार्य भिक्षु द्वारा लिखित 'पाना की चरचा'
३. पच्चीस बोल
४. देखें प. १ सं. ७
५. लय : कांय न मांगा, कांय न मांगा

६. ओछब री छवि छाई, ओपत नोपत ढोल निसाण।
गुहिर घुराया जन-मन भाया, मंडाया मंडाण।।
७. गावै गीत सुभागण गोरी, ओरी-दोरी आण।
रंग रचावै हर्ष बधावै, पावै चिर कल्याण।।
८. चपल तुरंगे चढिया चंगे, अंगे वसन बखाण।
उज्ज्वल रंगे अधिक उमंगे, संगे सकल सुजाण।।
९. भूषण-भूषित[1] अंग अदूषित, झूसित मनु शुभ झाण।
सद्गुण-सदन मदन-मद मूषित, शम-रस-पूषित जाण।।
१०. वनितावां की आंकी बांकी झांकी रो अहनाण।
नान्हो-सो बेरागी बनड़ो, निरखै करि दृग-काण[2]।।
११. लोक विलोक चकित चित बोलै, देखो बाल-विनाण।
इण वय में ओ संयम-मग, जग जाणी जहर समाण।।
१२. जोर जुलूस सझायो आयो, दीक्षा-मंडप-ठाण[3]।
श्री कालू गुरु-चरणे करणे सर्वपाप-पचखाण।।
१३. मासी-दुहिता साथ मात-युत, चरण ग्रह्यो गुणखाण।
दिल उत्साह सवायो पायो धुर सप्तम गुणठाण।।
१४. निज कर केशलोच कर, हितकर दै गुरुवर सीखाण।
सद्गुण-मंडित रहै अखंडित संयम-जीवन प्राण।।
१५. नवदीक्षित मुनि आगै कर, गणि आया मूल ठिकाण।
लोक कहै सब धन्य-धन्य है, आज शहर बीदाण।।
१६. स्वाती नखत सुगुरु-कर-शुक्ती, मुक्ताफल निरमाण।
लाखां मानव मस्तक चढ़सी, बढसी प्रतिदिन पाण।।
१७. जननी-उदर-खनी स्यूं कढियो, चढियो गुरु-कर शाण।
हीरो शासन-मुकुटे मढियो, शोभैला ज्यूं भाण।।
१८. शैशव वय में पिण शिशुता री, किंचित नहीं कुबाण।
भर जोवन में बो गणवन में, बणसी आगेवाण।।
१९. प्रथम ग्रास मघवा-कर मुक्ता पायो ओज असाण।
मोती-सी जीवन की ज्योती, खिलसी उज्ज्वल शाण।।
२०. चार मास स्यूं गुरु-दीक्षा चारित छेदोवट्ठाण।
प्रतिक्रमण रै कारण, पचखायो मघवा महाराण[4]।।

---

१. देखें प. १ सं. ८
२. देखें प. १ सं. ९
३. जीतमलजी दूगड़ का नोहरा
४. देखें प. १ सं. १०

२१. दशवैकालिक सीख सजग, आराधै सद्गुरु-आण।
विनय विवेक आदि गुण, निश्छलता स्यूं लीन्हा छाण।।
२२. तीजी ढाळ रसाल बाल-वय-चरण वरण निरवाण।
मघ-गुरु मस्तक हस्त धरायो, पायो जन्म प्रमाण।।

ढाळः ४.

दोहा

१. मिंगसर में पावस पछै, मघ मुणींद विहरंत।
मूल-नन्द सानन्द नित, सुगुरु सेव विलसंत।।
२. चारुवास छापुर रही, चातुरगढ़ पद ठाण।
चन्देरी स्यूं पाधरा, आया पुर बीकाण।।
३. भैक्षवगण गणिवर विषे, श्री मघवा गणधार।
प्रथम पवित्र करी धरा, बीकानेर पधार।।
४. मर्यादा-मोच्छब महर, जबर जमायो झण्ड।
बलि चरचा-व्याख्यान स्यूं, धार्मिक ज्योति अखण्ड।।
५. सप्तबीस वासर रही, पुनरपि कर्यो विहार।
डूंगरगढ़ मारग बही, सुखे शहर-सरदार।।

[1] गुरु-गरिमा महिमा भारी,
रहै शिष्य सदा आभारी रे, गुरु-गरिमा महिमा भारी।
ज्यांरी बार-बार बलिहारी रे, गुरु-गरिमा महिमा भारी।।

६. मघवा मुनिपति सादृश दिनपति, जिनपति ज्यूं अवतारी रे।
पापभीरु परमारथ-साधक, समता रस संचारी रे।।
७. विचरत बलि सरदारशहर पर पावस री रिझवारी रे।
पेंतालीसे पूज्य वदन-घन, बरसै अमृत-वारी रे।।
८. शहर चन्देरी छयांलीसे, छाई है छवि प्यारी रे।
सेंतालीसे श्री बीदासर, जन्मभूमि उद्धारी रे।।
९. युग चउमासे गुरुवर पासे, विद्याभ्यास बधारी रे।
संस्कृत भाषा की अभिलाषा, खासा दिल अवधारी रे।।

---

१. लय : जय जश गणपति वन में

१०. बलि उद्योग सुयोगे धारी, अक्षर लिपि अविकारी रे।
कालू-कर री वा गुरु-कर री, कुण भाखै निरधारी रे?

[1]सौभाग्य घड़ी, श्री कालू है गुरु मघवा री गोद में।
पा जीवजड़ी, पल-पल सफल मनावै परम प्रमोद में।।

११. निशिदिन गुरु-चरण-शरण विचरै, सर्वस्व समर्पण चरित चरै।
विष विषय-वासना रो विसरै, सौभाग्य घड़ी.....।।
१२. कहि कालू कालू मन-मोदे, सामंत्रण सद्गुरु सम्बोधे।
निज निकट बिठावे प्रतिबोधे, सौभाग्य घड़ी.....।।
१३. कर सिर धर देवै सीखड़ली, मीठी मनु शाकर सूंखड़ली।
श्रुति सुणतां पावै प्रीतड़ली, सौभाग्य घड़ी.....।।
१४. रहणो संयम में रम्यो रम्यो, आयो कि परीषह खम्यो खम्यो।
रखणो दुर्दम मन दम्यो दम्यो, सौभाग्य घड़ी.....।।
१५. व्रत-वसन-धवलिमा है नवली, न हुवै अंकित दूषण-अवली।
रहसी नित विकसित सुयश-कली, सौभाग्य घड़ी.....।।
१६. जो आठ बरस रो टाबरियो, है साठ बरस-सो सांभरियो।
उत्तम पद पावै गुणदरियो, सौभाग्य घड़ी.....।।
१७. सज्झाय-झाण-मारग झीणो, दुष्कर जिन-समय-अमय पीणो।
लहलीणो जो मुनि लाखीणो, सौभाग्य घड़ी.....।।
१८. संस्कृत भाषा पिण ऊंची है, पढणी मति सीमा पहुंची है।
जैनागम री आ कूंची है, सौभाग्य घड़ी.....।।
१९. आ वय है लिखणै-पढ़णै री, संयम-जंती स्यूं कढणै री।
विद्या-विवेक पथ बढणै री, सौभाग्य घड़ी.....।।
२०. समये-समये शिक्षा उचरै, गुरु-वदन-शशी वच-अमिय झरै।
कालू दिल-कमल विकास वरै, सौभाग्य घड़ी.....।।
२१. कर कालू-स्कन्धे आरोपै, गुरु इत-उत टहलत हद ओपै।
मनु शासन-भार भुजा रोपै, सौभाग्य घड़ी.....।।
२२. इक दिन शिशु पड़िलेहण करतो, दीठो डांफर स्यूं ठंठरतो।
तरुवर-पल्लव ज्यूं थरहरतो, सौभाग्य घड़ी.....।।

---

१. लय : मतिवन्त मुणी!

२३. गुरुदेव द्रवित करुणा आणी, निज गाती शिशु-तन पर ठाणी।
दीन्ही मनु युवपद सहनाणी, सौभाग्य घड़ी.....।।
२४. इसड़ी मघ मुनिप महरवानी, छोगां-नन्दन तन-मन मानी।
सेवै क्षण-क्षण जीवनदानी, सौभाग्य घड़ी.....।।

[1]गुरु-गरिमा महिमा भारी।

२५. तीन बरस तक रहिया समचै[2], महर बड़ी मघवा री रे।
अब कालू अरु मगन मुनी, हैं आजीवन सहचारी रे।।
२६. उग्र विहारे विहरत आया, जयपुर जय-पटधारी रे।
कारण-वश दस मास विराज्या, भाग्य दशा भक्तां री रे।।
२७. महासती नवलांजी निकटे, छोगां कानकुमारी रे।
गुरु-चरणाम्बुज मधुप रूप है, कालू कलिम्मलहारी रे।।
२८. पुनरपि गणिवर थळी पधारै, संभारै गण-वारी रे।
गुणपच्चासे अति उल्लासे, रतनगढ़ रतिकारी रे।।
२९. पावस पूरो कर गणशेखर, चूरू नजर निहारी रे।
माघोत्सव सरदारशहर में, चरम दया-दृग डारी रे।।

लावणी छंद

३०. अस्वस्थ अंग मघवा रो रहणै लाग्यो,
शिशु कालू रो कोमल हिरदो कुमळाग्यो।
भारी शरीर कुख उठणै री बीमारी,
उन्हाळै री रातां बा प्यास करारी।।
३१. मुख-थूक सूक रसना करड़ी कांटै-सी-
बणज्या, बेचैनी बणी रहै कम-बेसी।
संघीय व्यवस्था रो दायित्व निभाणो,
सहयोग-स्वल्पता[3] कड़ी कसौटी जाणो।।
३२. श्री जयाचार्यवर अन्तिम वर्ष अठारै,
निश्चिंत रह्या मघवा युवराज सहारै।

---

१. लय : जय जश गणपति वन में
२. देखें प. १ सं. ११
३. सहयोगी साधुओं की कमी

मघवा लारै अब लों युवराज नहीं है,
न्यारां में विचरण माणक-वृत्ति रही है।।

३३. प्रातः प्रवचन तो स्वयं सुगुरु फरमाता,
मध्याह्न निशा व्याख्यानी शीष सुजाता।
छद्मस्थां री छोळां सुण आवै हांसी,
निखरै श्री कालू रो व्यक्तित्व विकासी।।

३४. बोलै बालक कालू गुरुदेव! दयालू!
निर्देश मिलै, मैं प्रवचन करूं कृपालू!
अवनीतां नै अब मिलगी खुली चुनौती,
मघवा महसूस करी इकलौती ज्योती।।

३५. गुरुदेव स्वयं गाणै री गती सिखाता,
बोलण री विध व्याख्या री कला बताता।
खुद अर्थ करी कालू-मुख ढाळ गवाता,
निर्माण शिष्य रो निज कर्तव्य निभाता।।

३६. रहता श्री कालू मघ-पग-अंतेवासी,
संयम-जीवन-गतिविधि रा बण अभ्यासी।
करणैवाळा मघवा स्यूं करी शिकायत,
कालू पड़िलेहण समुचित करै न शायत।।

३७. गुरुवर बोलै—थां स्यूं बो ठीक करै है,
हळुकर्मी है पापां स्यूं स्वयं डरै है।
विश्वास जमायो मघवा-अंतरमन में,
व्यक्तित्व निखरणै लग्यो स्वतः जन-जन में।।

[1]गुरु-गरिमा महिमा भारी।

३८. निज शरीर आमय स्यूं आकुल, कालू धुर वय-धारी रे।
श्री माणक सुविनीत बणायो, युवपद रो अधिकारी रे।।

३९. चैत कृष्ण तिथि बीज रीझ आ, गणपति री गुणकारी रे।
गच्छ भार सहु सच्छ निभावण, बहुविध सीख उचारी रे।।

४०. पांचम निशि परलोक पधार्‌या, लोक हजारां तारी रे।
भैक्षवगण उपवन-कुसुमन की परिमल प्रबल प्रसारी रे।।

---

१. लय : जय जश गणपति वन में

लावणी छंद

४१. ओछै आऊखै मघवा स्वर्ग सिधारै[1],
जीणो मरणो है जग में किणरै सारै।
दो च्यार वर्ष सान्निध्य अगर मिल ज्यातो,
संभव स्वरूप शिशु[2] रो अद्‌भुत खिल ज्यातो।।

४२. आखिर आ ही मंजूर रही नियती नै,
भारी सदमो पहुंच्यो श्री कालू सीनै।।
अधखिली रही मानस-प्रसून री कळियां,
अणगाह्यो नाज पड्‌यो ही रहग्यो खळियां।।

[3]गुरु-गरिमा महिमा भारी।

४३. शेष समय लग सद्‌गुरु-सेवा, सारी रीते सारी रे।
चातक-घन चेतन-तन सम रहि, कालू-गुरु इकतारी रे।।

४४. अवर प्रवर जय-पटधर[4] ख्याती, मैं संक्षेपे ढारी रे।
विस्तर खातिर जो जिज्ञासा, मघव-सुयश[5] मनहारी रे।।

४५. चउथी ढाळ चतुर-चित-हरणी, वरणी बहु विस्तारी रे।
श्री मघवा शासनपति 'तुलसी' अप्रतिबंध-विहारी रे।।

कलश

४६. आचार्य पद युवराज पद चारित्र सर्वायू बली,
वर सार्द्ध ग्यार अठार इकताली त्रिपंचाशत मिली।
गहि जीत-गादी रीत सादी, स्फीत आजादी करी,
वन्नां-सुजात गुलाब-भ्रात, मुनीश 'मघ' सुर-श्री वरी।।

---

१. तिरेपन वर्ष की अवस्था में
२. मुनि कालूरामजी
३. लय : जय जश गणपति वन में
४. जयाचार्य के उत्तराधिकारी मघवागणी
५. श्री माणकगणी द्वारा रचित मघवागणी का जीवन-वृत्त, देखें आचार्य चरितावलि, खण्ड २

ढाळः ५.

दोहा

१. गुरु मघवा सुर-गमन लख, कालू दिल सुकुमार।
भारी विरह विखिन्न ज्यूं कृषिबल बिन जलधार।।
२. पलक-पलक प्रभु-मुख-वयण-स्मरण-समीरण लाग।
छलक-छलक छलकण लग्यो, कालू-हृदय-तड़ाग।।
३. मैं जाण्यो प्रभु-चरण री, युग-युग करस्यूं सेव।
पांच बरस में ही प्रवर, ओ विरहो गुरुदेव!

[1]मनड़ो लाग्यो रे, चितड़ो लाग्यो रे,
खिण-खिण समरूं गुरु! थांरो उपगार रे,
किंयां बिसराऊं म्हांरा हिवड़ै रा हार!

४. नेहड़लां री क्यारी रो म्हांरी रो के आधार रे?
सूक्यो सोतो जो इकलोतो सूनो-सो संसार।।
५. मूरतड़ी मनहारी थांरी जिनवर रै अनुहार रे।
म्हांरै रोम-रोम में मति में, स्मृति में एकाकार।।
६. मुखड़ै रो बो मुळको पळको पळ-पळ दिव्य दिदार रे।
हळको पड़ग्यो भानूड़ै रो भळको भी निहार।।
७. चंगो अंग सुरंगो सारो चूड़िउतार रे।
जाणक सुर भोळै घड़ीजग्यो ओ मानव आकार।।
८. मेहड़लै री गाज-सो आवाज को गुंजार रे।
गिरि-गह्वर में गूंजै जूंझै ज्यूं नोहत्थो ना'र।।
९. व्योम ज्यूं विशाल उज्ज्वल फेन-सो आचार रे।
निर्मल विमल कमल ज्यूं हिरदो आजीवन अविकार।।
१०. सद्गुण रो आधार सज्जनता रो सिणगार रे।
सकल त्रिलोकी सार संयम-साधना साकार।।
११. आज लों निर्व्याज राज! मानी थांरी कार रे।
भाज-भाज जोतो थांरै भांपण रो फुरकार।।

---

१. लय : मूक म्हांरो केड़लो मैं ऊभी छूं हजूर

१२. कोई कब ही बहतो थांरी मींटड़ी नै मार रे।
उणनै सहसा बेरुखी स्यूं मैं देतो दुत्कार।।
१३. आ इकतारी थांरी म्हांरी सारी ही विसार रे।
कठै क्यूं पधार्‌या म्हांरी हत्तन्त्री का तार।।
१४. वज्राहत हूं मर्माहत हूं पीड़ा रो नहिं पार रे।
मैं ही जाणूं म्हांरै मन री या जाणै करतार।।
१५. शासणदेवत! आ पिण केवत नहि निवड़ी निस्सार रे।
एकपक्खी प्रीतड़ी रो कच्चो कारोबार।।
१६. पीऊ-पीऊ करै बो पपीहो पुकार रे।
मेहड़लै नै हुई न होवै फिकर लिगार।।
१७. मोटा मिनख निहारै नाहीं पाछलै रो प्यार रे।
मोख जातां वीर छोड़्या गोयमजी नै लार।।
१८. जाणो सारी बात केणो कोरो है उपचार रे।
छूट्‌यो म्हांरो स्हारो सारो आशा रो आसार।।
१९. केणै री सुणणै री अब तो नहिं कोइ वेळा-वार रे।
इं छलना स्यूं होग्यो म्हांरो दिलड़ो डार-डार।।
२०. वापिस दिल बहुड़ायो पूरी पंचमि ढार रे।
सतगुरुवां रो विरहो सहणो दुक्कर कार।।

ढाळः ६.

दोहा

१. छट्‌ठै पट माणक मुनी, माणक सम महकंत।
मघवा आसन ऊपरे, भास्वर-भा भलकंत।।

सोरठा

२. उगणीसै गुणचास, चैत कृष्ण तिथि अष्टमी।
पाटोत्सव सुविकास, हुयो शहर सरदार में।।
३. श्रमण इकोत्तर सर्व, श्रमणी शत तेराणवै।
है सारां नै गर्व, श्री माणक-नेतृत्व रो।।

दोहा

४. गादी-ओच्छब शुभ घड़ी, ओप रह्या गण-ईश।
गुण-वर्णन वर्णन बहु, विविध हुई बगसीस।।

लावणी छंद

५. माणक आया मघवा-प्रतिछाया जाणी,
पलटै पर्याय द्रव्य ध्रुवता पहचाणी।
बण स्यामखोर गादी री सेवा साधी,
कालू मघवा ज्यूं माणक-मींट अराधी।।
६. चिंतन वर्तन में यद्यपि अंतर रहतो,
पर कभी नहीं सीमा-अतिक्रम कर बहतो।
गति में स्थिति में धृति में नहिं कहीं तरलता,
बढ़तो वर्चस्व बढ़ी व्यक्तित्व-विरलता।।

[1]शासन-स्वामी रे भारी, श्री माणक महिमाधारी।
सेवा सारी रे सारी, श्री कालू विमल विचारी।।

७. माणक महितल विचरता रे, करता पावन देश।
हरता भ्रम संसार रो रे, दे जिनमत संदेश।।
८. पच्चासै चउमास री रे, महर शहर सरदार।
प्रवचन धर्म-प्रभावना रे, अधिक कियो उपकार।।
९. हरियाणा में हूंस स्यूं रे, विचर्‌या शेखैकाळ।
माघोत्सव मर्याद रो रे, हांसी पुर सुविशाळ।।
१०. चउमासो इक्कावनै रे, चूरू चित धर चूंप।
बलि जयपुर जयश्री वरी रे, भिक्षूशासण-भूप।।
११. बीदासर में तेपनै रे, वर्षा ऋतु रो वास।
अब अंतिम चौमास है रे, सुजानगढ़ सोल्लास।।
१२. आकस्मिक आसोज में रे, आमय गुरुवर-अंग।
सम परिणामां स्वामजी रे, सहन करै मन रंग।।

---

१. लय : कोरो कलसो जल भर्‌यो कांइ धरती शोष्यां जाय

१३. तर-तर तनु आतंक रो रे, प्रबल प्रसार पिछाण।
गुरु-पद प्रणमी वीनवै रे, जो मुनि अवसर जाण।।
१४. हे जिनशासन-सेहरा! रे, हे जिनशासन-भाण!
हे जिनशासन-साहिबा! रे, भैक्षवगण-महाराण!
१५. उग्र हजारी आपरी रे, मघवा री आशीष।
आसन अखी रहो सदा रे, ज्यूं ग्रह-गण-उडु-ईश।।
१६. पण सारां री प्रार्थना रे, है विनम्र आवाज।
उग्र व्याधि स्यूं आपरो रे, ग्रसित अंग महाराज!
१७. हूणो चावै पाछलो रे, कोई पूज्य! प्रबंध।
ज्यूं भिक्षूगण में रहै रे, अविच्छिन्न संबंध।।
१८. म्है अर्थी प्रभु अरज रा रे, ऊभा जोड़्यां हाथ।
निर्णय करणो आपनै रे, आखिर शासणनाथ!
१९. बार-बार विनती करी रे, गुरु न कियो कुछ गोर।
अलख गती गुरुदेव री रे, चलै न किणरो जोर।।
२०. तीज तिथी कार्तिक बदी रे, निशा दूसरै याम।
श्री माणक महिमागरू रे, समवसर्‌या सुरधाम।।
२१. सार्द्ध च्यार बरसां सुधी रे, मघवा-पटधर पास।
कालू करत उपासना रे, बसिया गुरुकुलवास।।
२२. गौण रूप वर्णित कर्‌यो रे, माणक रो सौभाग्य।
मुख्य रूप हित झांकज्यो रे, 'माणक-महिमा'[1] प्राज्ञ!
२३. कालूयशोविलास री रे, विरमी छट्ठी ढाळ।
भव्य! सभ्य! आगल सुणो रे, रचना रसिक-रसाळ।।

कलश

२४. युवराज शासनराज संयम सर्व आयू क्रम सरस,
दिन च्यार साढ़ी च्यार अरु छब्बीस तैंयाली बरस।
मघराज-आसन पाक-शासन भिक्षुशासन रो मणी,
वरि समय-जाण सुजाण माणक सुर-समृद्धि सुहावणी।।

---

१. आचार्यश्री तुलसी द्वारा विरचित माणकगणी का जीवन-वृत्त

ढाळः ७.

दोहा

१. माणक गणिवर पट्ट पर, अणदीठे गणधार।
तेरापंथ समाज में, भारी ब्ण्यो विचार।।
२. गच्छ गच्छनायक बिना, रहै न रच्छित रूप।
यथा दच्छ वनपाल बिन, उपवन बणै विरूप।।
३. एक छेक गण-ईश स्यूं, शोभै सकल समाज।
गगनांगण विकसित करै, उदित एक उडुराज।।
४. बिन प्रचण्ड मार्तण्ड ज्यूं, तिमिरित निखिल जहान।
त्यूं गुणज्ञ गणपति बिना, शासन-प्रभा पिछान।।
५. तिण कारण सहसा मिलै, गणविभु बढ़ै उमंग।
परामर्श मिलकर करै, चतुर चतुर्विध संघ।।

६. [1]चवदै मुनि चउमास में रे, सुजानगढ सुविचार।
रत्नाधिक मुनि भीम री रे, अनुमति निज सिर धार।
अनुमति निज सिर धार हृदय स्यूं,
सारा काम करै इक लय स्यूं,
गतिविधि चालै अभय विनय स्यूं,
नहिं विचलित संशय स्यूं भय स्यूं।।
जी! गच्छेश्वरजी हो...!
७. प्रथम याम व्याख्यान को रे, काम करै मुनि मग्न।
कालू गण-संभार में रे, निशिदिन सहज निमग्न।
निशिदिन सहज निमग्न निराळो,
नहिं बहु बात-विगत रो ढाळो,
राखै पग-पग पाप रो टाळो,
करसी क्षण में गण-उजवाळो।।
८. प्रसरी देश-प्रदेश में रे, विस्तृत आ आवाज।
तेरापंथ समाज में रे, नहिं कोई नायक आज।
नहिं कोई नायक आज विराजै,
बिन नायक नहिं गण-छवि छाजै,

---

१. लय : पुण्य सार सुख भोगवै रे

बिन इक नमक अलूणो बाजै,
ज्यूं-त्यूं लोग लवै अन्दाजै।।

९. एक कहै अब देखस्यां रे, तेरापथ री तान।
पूज-पछेवड़ि कारणै रे, मचसी खींचातान।
खींचातानी भीतर बारै,
लड़सी निज-निज हक रै लारै,
मोडा मंडसी ऊठसवारै,
नहिं कोइ हटकणहारो आंरै।।

१०. एक कहै भीखण गढ्यो रे, मारग जग-विपरीत।
इत्ता दिन लग चालियो रे, ते पिण आशातीत।
ते पिण आशातीत हि भ्यासी,
अब ओ खाखो कवण चलासी?
मनमत्तै सब चलणो चा'सी,
घर हाणी लोकां में हांसी।।

११. हा! हा! भीखणजी भलां रे, सहज रच्यो कोई रास।
थाक्या करत मुकाबलो रे, आयो कंठां सांस।
आयो कंठां सांस कितां रै,
'सिंह पाखर्‌यो किणरै सारै',
मानी हार संगठन लारै,
पण अब मोज बणी आपां रै।।

१२. कई विवेकी यूं कहै रे, क्यूं आ खाली खीज।
सचमुच तेरापंथ री रे, अद्‌भुत है तजबीज।
अद्‌भुत है तजबीज अनोखी,
रहो देखता सोखी-दोखी,
प्रगतिशीलता रुकै न रोकी,
प्रगटी पुण्याई भो-भो की।।

१३. ठाम-ठाम हो एकठा रे, लोग करै मिल बात।
एकण लेखण स्यूं लिखूं रे, कठिण पड़ै आ ख्यात।
कठिन पड़ै आ ख्यात खताणी,
जितरा मूंढा उतरी वाणी,
जुदो-जुदो कूवां रो पाणी,
पार लहै कोई निर्मल नाणी।।

१४. अब पावस पूरो हुयां रे, भैक्षवगण-मुनि-संघ।
समवसर्‌यो पुर लाडणूं रे, श्रावक-समुदय संग।
श्रावक-समुदय संग सुहावै
और-और मुनि-श्रमणी आवै,
बोलै सब इक मालिक चावै,
पिण नहिं को निज जोर जचावै।।

लावणी छंद

१५. माणक डालिम रो अंतराल असुहायो,
तिण में कालू अपणो कर्तृत्व दिखायो।
जुग-जुग में बो इतिहास जीवतो रेसी,
भावी पीढ़ी नै शिक्षा सम्बल देसी।।
१६. गण-अंतरंग-संभाल चौकसी राखी,
डालिम रो आशीर्वाद संघ में साखी।[1]
पद-लिप्सा रो पिशाच कब ही न सतायो,
यद्यपि बलवान प्रसंग सामनै आयो।।
१७. मुनि कनिया रो प्रस्ताव सहज ठुकरायो[2]।
धन्नां-सुत स्यूं टकरायो गजब ढहायो।[3]
जयचनजी नै जोशीलो जाब दियो है,
मोटो-सो मोदक मुख में दाब दियो है[4]।।
१८. जेठांजी मुक्खांजी नै साफ सुणाई,
अरु भीम अभय मुनि आदि रह्या मुंह बाई।
आचार्जां री विधि आचार्जां रै सागै,
होसी ल्यो साफ सुणाऊं पाछै आगै[5]।।
१९. [6]उदियापुर स्यूं आविया रे, पोष कृष्ण तिथि तीज।
कालूजी स्वामी बड़ा रे, शासण में इक चीज।

---

१. देखें प. १ सं. १२
२. देखें प. १ सं. १३
३. देखें प. १ सं. १४
४. देखें प. १ सं. १५
५. देखें प. १ सं. १६
६. लय : पुण्य सार सुख भोगवै रे

शासण में इक चीज हि भारी,
मुलक-मुलक में महिमा ज्यांरी,
तैल-बूंद ज्यूं प्रसरै वारी,
राखी गणि गण स्यूं इकतारी।।

२०. जय मघवा माणक गणी रे, महर रखी इकधार।
वर बगसीस करी घणी रे, कुरब बढ़ायो सार।
कुरब बढ़ायो अति उल्लासे,
रहिया ज्येष्ठ-भ्रात[1] रै पासे,
अगवाणी बण अथक प्रयासे,
विचर्‌या देश-प्रदेशां खासे।।

२१. गण-वच्छल ने जाणता रे, जीवन-प्राण समाण।
टाळोकर नै टाळता रे, कालकूट विष जाण।
कालकूट विष जाण सदाई,
'बाबै स्यूं पिण करता डाई'[2]
शासण-सेवा री सुघड़ाई,
श्री मुख स्यूं गुरुदेव[3] सराई।।

२२. सन्ध्या पड़िकमणो करी रे, जोड़ी श्रमण समाज।
कालूजी स्वामी कहै रे, सोचो सब मुनिराज।
सोचो सब मुनिराज सयाणां,
किणरी धारां अब सिर आणां,
सन्त वदै हो आप पुराणां,
नाम प्रकाशो ज्यूं सहु जाणां।।

२३. तब मुनिवर कालू कहै रे, माणक-गणिवर-पाट।
डालचन्दजी आपणै रे, शासण रा सम्राट।
शासण रा सम्राट सुहाया,
तिण दिशि नमण करो मुनिराया!
वंदो विकसित मन वच काया,
सकल संघ में रंग सवाया।।

---

१. मुनि स्वरूपचन्दजी
२. देखें प. १ सं. १७
३. श्री कालूगणी

२४. जण-जण मुख जय-जय करै रे, अधिक जग्यो उत्साह।
उचरंगे मुख स्यूं कहै रे, वाह! भिक्षूगण वाह!
वाह! भिक्षूगण री पुनवानी,
जाहिर तीन जहान न छानी,
मुनिवर मिल गुरु ढूंढ्यो ज्ञानी,
सप्तम ढाळ सुजन मन मानी,
श्रोता! निसुणो सरस कहानी।।

ढाळः ८.

दोहा

१. कच्छ देश स्यूं आवता, श्री मुनि डालिमचन्द।
मारग में सारो सुण्यो, सूरीपद-संबंध।।
२. बाट बहंता थाट स्यूं, साथ श्रमण-संघात।
शहर लाडणूं आविया, तेरापथ रा तात।।
३. छाई पोष त्रयोदशी, छटा घटा ज्यूं घोर।
वदन-वचन-घन बरसतां, हर्षित भवि-मनमोर।।
४. माघ मास बिद दूज दिन, पट्टोत्सव सुविशेख।
युग तीरथ उल्लास रो, कठिन पड़ै उल्लेख।।
५. श्रमण बहोत्तर, एक सौ चोराणू चित-शान्त-
श्रमणी, श्री गुरुदेव रो शासन बहै नितान्त।।

[1]सुजन जन! सांभळो रे, इकचित कालूयशोविलास।

६. सप्तम आसण-अधिपती रे, सुजना! डालिम शासनमोड़।
उणिहारो अति ओपतो रे, सुजना! जुड़ै न दूजो जोड़।।
७. आतप अद्भुत आपरो रे, सुजना! बलि-बलि करी विमर्श।
निकट गयां पिण दोहिलो रे, सुजना! पद-पंकज रो स्पर्श।।
८. अलख छटा व्याख्यान री रे, सुजना! ओरां री के बात?
विबुध विचक्षण क्षण सुणै रे, सुजना! उठणो रहै न हाथ।।
९. पुरुष-परीक्षा कारणै रे, सुजना! प्रतिभा री जग साख।
तुलना में आवै नहीं रे, सुजना! मिलै परीक्षक लाख।।

---

१. लय : मुनि मन चलियो रे तूं घेर

१०. दीक्षा दिन स्यूं ही चढ्यो रे, सुजना! मघवा-कर खरसाण।
बो हीरो अब परखसी रे, सुजना! जौहरी डाल सुजाण।।
११. शहर लाडनूं स्यूं सही रे, सुजना! आया पुर बीदाण।
माघमहोत्सव रो जठै रे, सुजना! मंजुल-सो मंडाण।।

[1]गहरो दिल गुरुदेव रो।
आकर्षक फूल गुलाब समाण।।

१२. गणपाल डाल अब एकदा, आछो-सो अवसर झांक, सुजाण!
गहरो दिल गुरुदेव रो।।
विकसित चित आमोद में, खिलि पदम-पांख सी आंख, सुजाण!
गहरो दिल गुरुदेव रो।।
१३. पूछै सम्बोधन करी, धन्नां-सुत[2] नै इक बात, सुजाण!
माणक सुरपुर संचर्‌या, तजि तीरथ च्यार अनाथ, सुजाण!
१४. नाम निपट म्हांरो चुण्यो, क्यूं हिलमिल सकल समाज? सुजाण!
म्हांरी राय लियां बिना, क्यूं कीन्हो भारी काज? सुजाण!
१५. मगन सघन विस्मित बण्या, सुण अजब प्रश्न ओ आज, सुजाण!
गजब कला गुरुदेव री, किणरो लागै अन्दाज? सुजाण!
१६. भाग सिकन्दर संघ रो, सारां री एक अवाज, सुजाण!
सप्तम शासन-साहिबा[3]! ओ निश्चित म्हांनै नाज, सुजाण!
१७. इणमें सहमति आपरी, आवश्यक है न लिगार, सुजाण!
अब अनुमति हर काम में, लेस्यां गुरु! बारंबार, सुजाण!
१८. बोलै मुनिपति मलपता, मैं नहिं करतो स्वीकार? सुजाण!
म्हांरै मन पर तो सदा, है म्हांरो ही अधिकार, सुजाण!
१९. तो किणनै थे थापता? नहिं तर्क-फर्क रो काम, सुजाण!
सीधी बात बतायद्यो, ननु-नच रो न सुणूं नाम, सुजाण!
२०. विवश मगन गुरु-चरण में, है खोल्यो अंतर भेव, सुजाण!
श्री कालू नै सूंपता, दिल-निरणो ओ गुरुदेव! सुजाण!

---

१. लय : गहिरो जी! फूल गुलाब रो
२. मुनि मगनलालजी
३. आचार्यश्री डालचन्दजी

२१. कालू! कालूजी! किस्या? जननी छोगां रा जात, सुजाण!
सुण अवाक-सा गुरु रह्या, आ अलख अलौकिक बात, सुजाण!
२२. आकस्मिक ही झड़ पड़्यो, डालिम मुख हृदय-निचोड़, सुजाण!
और दौर तो की घणी, पण नहिं पहुंची इण ठोड़, सुजाण!
२३. गोष्ठि विसर्जी यूं कही, श्री डालिम सुमति-सुमेर, सुजाण!
अणसमझू समझै नहीं, ओ समझ-समझ को फेर, सुजाण!

[1]सुजन जन! सांभळो रे, इकचित कालूयशोविलास।

२४. पहिलां दृग पहुंची नहीं रे, सुजना! सा पहुंची इण बार।
शासनेश-संकेत स्यूं रे, सुजना! सहज हुयो इतवार।।
२५. कालू नै तिण दिवस स्यूं रे, सुजना! युवपद झालू जाण।
डालू दिल निश्चिंतता रे, सुजना! ओ म्हांरो अनुमान।।

दोहा

२६. पूछै डालिम एकदा, कालू नै एकान्त।
अंतराल में संघ की गतिविधि रो वृत्तान्त।।
२७. अणपूछ्यां तो आज लग, कभी न खोली मून।
आज कही संक्षेप में, स्थिति अनधिक अन्यून[2]।।
२८. सारी कठिनायां सही, अंतरंग बहिरंग।
सफल हुआ गुरु-करुणया, जीत बड़ो-सो जंग।।
२९. सुणी बात विश्वस्तमन, श्री डालिम गुरुदेव।
कालू री निरपेक्षता रो अंकन स्वयमेव।।

[3]सुजन जन! सांभळो रे, इकचित कालूयशोविलास।

३०. पावस प्रथम पिच्यावनै रे, सुजना! शहर लाडणूं ख्यात।
कालू गुरु-चरणां बसै रे, सुजना! कानकुंवर बलि मात।।
३१. कानकंवरजी रो कियो रे, सुजना! सिंघाड़ो गणनाथ।
चौमासो उतर्‌यां पछै रे, सुजना! छोगांजी पिण साथ।।
३२. करी शहर-सरदार पर रे, सुजना! छपनै महर महान।
श्री कालू प्रारंभियो रे, सुजना! मध्याह्ने व्याख्यान।।

---

१. लय : मुनि मन चलियो रे तूं घेर
२. पूरा विवरण पढ़ें डालिम-चरित्र, पृ. ८६, ८७
३. लय : मुनि मन चलियो रे तूं घेर

३३. बीदासर सत्तावनै रे, सुजना! राजाणै रस-रंग।
चउमासो अट्ठावनै रे, सुजना! छोगां-सुत पिण संग।।
३४. मरुधर देशे गुणसठै रे, सुजना! पावन पुर जोधाण।
मालाणी[1] में महामना रे, सुजना! उदित हुयो जगभाण।।
३५. गुरु-आज्ञा बालोतरै रे, सुजना! कालू मगन समेत।
स्थानकवासी साथ में रे, सुजना! चरचा करी सचेत[2]।।
३६. पाली हो प्रमुदितमनां रे, सुजना! उदयपुरे अविकार।
मर्यादोच्छव माघ रो रे, सुजना! अधिक कियो उपकार।।
३७. थळी पधार्‌या ठाट स्यूं रे, सुजना! श्री डालिम गणपाल।
कालूयशोविलास की रे, सुजना! सरस आठमी ढाळ।।

ढाळः ९.

दोहा

१. रूपचन्दजी सेठिया की विनती उर धार।
साठे चौमासो कियो, सुजानगढ़ सुखकार।।
२. थळी देश स्थिरवास ज्यूं, श्री डालिम रो खास।
छोगां-सुत प्रारम्भियो, तब व्याकरण-प्रयास।।
३. श्रम कर कंठस्थित कर्‌यो, 'सारस्वत' पूर्वार्द्ध।
चूरू शहर समोसर्‌या, डाल गणीश्वर सार्ध।।
४. जाति सुराणा रायशशि[3] श्रावक श्रुतसम्पन्न।
विद्यारसिक उपासना करै सुगुरु-आसन्न।।
५. बगड़ ग्रामवासी भला, घनश्यामजी नाम।
अभ्यासी व्याकरण रा, विप्र विशद परिणाम।।
६. निर्मल दिल स्यूं राखता, सत्संगति रो प्रेम।
तन-मन स्यूं सेवा करी, श्रावक ज्यूं दृढनेम।।
७. बहकावट बहुली करी, इतर लोक अनजान।
दूध पिलाणो सांप नै, आंनै विद्यादान।।

---

१. बालोतरा से आगे के क्षेत्र—जसोल, टापरा, वायतू, कवास, बाड़मेर आदि।
२. चर्चा की विशेष जानकारी के लिए पढ़ें मगन-चरित्र, पृ. ३७-४१
३. रायचन्दजी सुराणा, चूरू

८. तो पिण मन घनश्याम रो, हुयो न चंचल रंच।
पूरा प्रेरक रायशशि, श्रावक है सौ-टंच[1]।।
९. यद्यपि प्रभु-पद भेटसी, रघुनन्दन कविरत्न।
किन्तु प्रशंसापात्र है, घन्नू[2] प्रथम प्रयत्न।।
१०. बलि सद्गुरु सह इकसठै, चूरू में चउमास।
घनश्याम सहयोग स्यूं, वृद्धिंगत अभ्यास।।
११. चन्देरी सरदारसर, पावस वर बीदाण।
सद्गुरु वरिवस्या बसै, कालू हित-कल्याण।।
१२. 'अभिधान चिंतामणी', हैमकोश पर नाम।
कालू कंठस्थित कियो, शब्दकोश अभिराम।।
१३. समय उत्तराध्ययन बलि, नन्दी कर कण्ठस्थ।
गुरु-सेवा तन-मन-सहित, सारै रही तटस्थ।।

[3]सुगुरु रिझावण सुघड़ाई।
लै छोगां-अंगज अंगड़ाई, श्री कालू-कला अपार जी।।

१४. बारह बरस हरस सह कालू, डालू-पद अनुषंग जी।
परम उमंगे पुण्य प्रसंगे, रहिया रूड़े रंग जी।।
१५. जिण-जिण ग्राम नगर पुर विचरै, ले-ले लंबो गेड़ जी।
छोगां-अंगज संग रहै ज्यूं, पुण्य धरम रै केड़ जी।।
१६. 'तद्दिट्ठी तम्मुत्ती' आदिक, आगम-वयण अमोल जी।
यथातथ्य चरितार्थ करण-हित, कालू रो दृढ़ कोल जी।।
१७. सुगुरु अनुज्ञा रै अनुसारै, निज दृष्टी हर बार जी।
गुरु अनुरूप विरूप न किंचित, बुद्धि विवेक विचार जी।।
१८. लेणो किण स्यूं किण नै देणो के'णो पड़ै किंवार जी।
बार-बार दृग डार विलोकै, गुरु-इंगित-आकार जी।।
१९. एक-एक अक्षर पिण, गुरु-मुख आगल वदै विचार जी।
बिगर विमासे गुरु अभ्यासे, भाषै शंख-लबार जी।।
२०. गुरु तनु चेष्टा श्रेष्ठा निरखी, परखी अवसर सार जी।
बरतै बलि-बलि समय न सोच्यां, बाजै वणिक गिंवार जी।।

---

१. देखें प. १ सं. १८
२. पंडित घनश्यामदासजी घन्नू महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे।
३. लय : विनय निभालय निजभवनम्

२१. विद्याध्ययन सुगुरु-आज्ञा-सुख-शय्या शयन सदेव जी।
अपणी धुन में मस्त रहै आ, छोगां-सुत री टेव जी।।
२२. मूल कार्य अनुकूल तजी, प्रतिकूल भजै क्यूं भूल जी।
जिण गामे नहिं जाणो, तिणरो पंथ-प्रश्न निर्मूल जी।।
२३. गमनागमन शयन आसन में, एक सर्वदा ध्यान जी।
किंचित मात्र विमात्र न पहुंचै, गतिविधि सद्गुरु-कान जी।।
२४. पग-पग पर गुरु रो भय राखै, ताकै नहीं कुनीत जी।
महर नजर अभिलाखै आ ही, सुविनीतां री रीत जी।।
२५. बहुविध भक्ति बले गुरु रो मन, जाळवियो इण भांत जी।
डालिम गणि रो दिल केवटणो, मुश्किल बात नितान्त जी।।
२६. आ अनुपम गुरुचरण-लीनता, भक्तिभाव रमणीय जी।
निर्मलता आचार-कुशलता, सबनै अनुकरणीय जी।।
२७. विक्रम उगणीसे चउसट्ठे, पो. बिद दसमी देख जी।
डालिम आया शहर लाडनूं, जगी भाग री रेख जी।।
२८. लोक विलोकै ठर्या विलोचन, हर्या-भर्या हद हेज जी।
दर्शन कर्या कि संचित पातक झर्या न लागै जेज जी।।
२९. सुणत-सुणत व्याख्यान, कान तो नहिं लेवै उद्गार जी।
नयन निहार न हारै, मस्तक पद-परसण तैयार जी।।
३०. अहोभाग्य है इण नगरी रा, जग्यो धर्म रो प्रेम जी।
आर्यप्रवर आचार्यदेव, अधिराजै कुशले-खेम जी।।
३१. मध्याह्ने व्याख्याने स्थाने, छाजै श्री छौगेय[1] जी।
छाने-छाने हृदय-खजाने, ज्ञान भरै अनमेय जी।।
३२. शासनपाल डाल गणिवर अब, करसी गण-सिर-ढाल जी।
श्री श्री कालूयशोविलासे, विरमी नवमी ढाळ जी।।

ढाळः १०.

दोहा

१. श्री डालिम री देह में, उपनो रोग-विकार।
अन्न-अरुचि कफ है बढ्यो, शोथ श्वास में भार।।

२. मन विहार री मूड में, पिण तन सख्त अशक्त।
मर्यादोत्सव चौसठे, शहर लाडणूं व्यक्त।।
३. बहु प्रकार प्रारंभियो, औषध रो उपचार।
पण सबंक आतंक नहिं, छोड़ै गुरु-तनु लार।।
४. पायो पावस पैंसठे, और महोत्सव माघ।
छ्यांसट्ठे चोमास पुनि, चन्देरी रा भाग।।
५. बांछा बड़ी विहार री, हद हिम्मत हर बार।
दैहिक दुर्बलता प्रबल, बाधक है अनिवार।।

[1]सुजनां! श्री कालूव्याख्यान ध्यान धरि सांभळो रे लोय।

६. सुजनां! डालचन्द गणचन्द, अमन्द उजागरू रे लोय।
सुजनां! उलसै संघ समन्द, महामहिमागरू रे लोय।।
७. सुजनां! अंग प्रबल आतंक, शंक बिन विस्तर्यो रे लोय।
सुजनां! राहू-ग्रसित मयंक, अंक अंगीकर्यो रे लोय।।
८. सुजनां! धोरी धर्मवजीर, वीर व्रत आउलो रे लोय।
सुजनां! पीड़्यो प्रकट शरीर, वेदनी बाउलो रे लोय।।
९. सुजनां! उपजै नहीं उपाय, फसै नहिं फांकड़ी रे लोय[2]।
सुजनां! टाळी ही न टळाय, कर्मगति बांकड़ी रे लोय।।

[3]आया है मिल डालिम रै दरबार।
अति आवश्यक और सामयिक आवेदन उद्गार।।

१०. मगन सघन दिल सीमितभाषी, करी प्रार्थना सार।
ध्यानाकर्षण कीन्हो गुरु रो, सविनय उचित प्रकार।।
११. श्री जेठांजी श्रमणी-ज्येष्ठा, श्रमणीगण-सिणगार।
दोहराई है बा ही घटना, डालिम-दृष्टि निहार।।
१२. श्रावक कालुरामजी जम्मड़, वासी पुर-सरदार।
गहरी अरज करै गुरुवर स्यूं, वातावरण उदार।।

---

१. लय : भविकां! मिथुन उपर दृष्टान्त कहै जिन
२. देखें प. १ सं. १६
३. लय : स्वामीजी! थांरी बा मुद्रा जग ख्यात

१३. पूछै डालिम, रूपचन्दजी आया नहीं अबार?
गया परा गुरुदेव! चतुरगढ़, सन्त कहै सुविचार।।

सोरठा

१४. पायो जब संकेत, बे'ली चढ़ आया तुरत।
श्रावक सेठ सचेत, रूपचन्दजी सेठिया।।
१५. श्री गुरुवर एकान्त, परामर्श प्रमुदित कियो।
समय सन्तुलित शान्त, भावी पद युवराज-हित।।

[1]आया है मिल डालिम रै दरबार।

१६. चिंतन मंथन बाद सुगुरु रो, पिण दृढ़ बण्यो विचार।
करणो अबै प्रबंध पाछलो, निश्चित ही अनिवार।।

[2]सफल दिन आज रो रे,
थापै डालिम निज युवराज, सफल...।
होसी हुलसित सकल समाज, सफल...।।

१७. इंगित लख गुरुवर्य रो रे, लेखण स्याही पत्र।
मगन शीघ्र हाजर कर्‌या रे, देख लिया गणछत्र।।
१८. अयन हयन युग सर्पिणी रे, कालचक्र प्रारंभ।
ओ दिन एकम श्रावणी रे, सकल दिनां रो थंभ[3]।।
१९. बैदां री हेल्यां[4] बड़ी रे, उतरादै तिरबार।
जोड़ी छव बाजोट री रे, आसण तकियादार।।
२०. सहज समय दोपहर रो रे, लीन्हो कागज हाथ।
महामहिम-कृपया हुवै रे, सारो संघ सनाथ।।

---

१. लय : स्वामीजी! थांरी बा मुद्रा जग ख्यात
२. लय : कीड़ी चाली सासरै रे
३. देखें प. सं. २०
४. राजलदेसर-निवासी लच्छीरामजी बैद की हवेलियां। विशेष जानकारी के लिए देखें मगन-चरित्र, पृ. १६६, प. १ सं. ३१

२१. जेठां ऊभी माळियै रे, मगन गया अति दूर।
रूपचन्दजी जा खड़्या रे, बाहिर रूंस सनूर।।
२२. नहीं जरूरत जाण री रे, डालिम दया अगाध।
नहीं 'रूप' रहसी नहीं रे, ओ विवेक अविबाध।।
२३. गुप्त लेख लिख खाम में रे, पूठे धर्‌यो प्रछन्न।
पूठो निज निजर्‌यां ठव्यो रे, सन्त रह्या सब सन्न।।

[1]सुजनां! श्री कालूव्याख्यान ध्यान धरि सांभळो रे लोय।

२४. सुजनां! जाणै जाणणहार और क्यूं ओळखै रे लोय।
सुजनां! प्राज्ञाप्राज्ञ प्रकार प्राज्ञजन ओ अखै रे लोय।।
२५. सुजनां! जोड़ी श्रमणसमाज सांझ गणनाहलो रे लोय।
सुजनां! आखै मनु आवाज गाज वर्षाहलो रे लोय।।
२६. सुजनां! आज एक एकत्र पत्र मैं लिख दियो रे लोय।
सुजनां! युवाचार्य रो तत्र नाम अंकित कियो रे लोय।।

[2]सफल दिन आज रो रे,

२७. किणरो? जिज्ञासा जगी रे, दाखै डालिम देव।
गुरुकुलवासी है जिता रे, छांट लियो स्वयमेव।।
२८. ओ रहस्य किण ही कनै रे, प्रगट न करणो रोक।
युवपद-पत्र लिख्यो सही रे, इण में रोक न टोक।।
२९. भारी चेष्टावां हुई रे, पण नहिं पाई रेस।
कुण युवपदधारी हुसी रे, रूप रंग सविशेष।।
३०. पांच मिनट पिण पाखती रे, बिठा नहीं दी सीख।
प्रगट काम नहिं सूंपियो रे, जाणक मन में तीख।।
३१. शक्तमल्ल! तूं बांचज्ये रे, राते रामचरित्र।
पिण कालू नै नां कह्यो रे, ओ कोई चित्र विचित्र।।
३२. कुरब-कायदो है बढ़्यो रे, जिण-जिण रो विख्यात।
तिण में अंतर क्यूं पड़ै रे, सुणो मगनजी! बात।।

---

१. लय : भविकां! मिथुन उपर दृष्टान्त
२. लय : कीड़ी चाली सासरै रे

३३. भक्ता ठाकुर लाडणूं रे, आणँदसिंह सिवाय।
डालिम दिखलाई नहीं रे, किणनै अपणी दाय।।
३४. युवाचार्य आचार्य रो रे, अननुमेय अनुबंध।
डालिम क्यूं नहिं निर्वह्यो रे, ओ समुचित संबंध?
३५. निश्चय ही होणो चहै रे, कारण को अविवाद।
पण आ है अनभिज्ञता रे, वितरक बेबुनियाद।।

लावणी छंद

३६. यद्यपि डालिम आजीवन गोपन कीन्हो,
यावत प्रच्छन्न रूप में युवपद दीन्हो।
केवल विस्मयबोधक ही वृत्ति रही है,
मैं अंतरंग में जा आ बात कही है।।
३७. प्रत्यक्ष काम अरु राम परोक्ष सुहावै,
ओ उदाहरण डालिम साकार करावै[1]।।
व्याख्यान विहार अनेक कार्य उल्लेखी,
डालिम री विस्मय बोधक वृत्ती देखी।।
३८. कालू ँ कीम्मत डालिम खूब करी है,
निश्चिन्त निरन्तर अन्तर-आंख ठरी है।
निम्नोक्त निरूपण सुणो ध्यान में ल्याओ,
डालिम कालू अनुबंध स्वयं अजमाओ।।
३९. संभाळ सत्यां री जब-जब आप कराता,
तब-तब कालू नै निश्चित पास बिठाता।
स्थिरवासी सत्यां लाडणूं काम पड़्यो जब,
कालू नै ही सुजानगढ़ स्यूं भेज्या तब[2]।।
४०. बगसीसां प्रायश्चित श्री कालू कर स्यूं-
लिखवाता डालिम, जद-तद महर नजर स्यूं।
जो-जो भी बातां अंतरंग शासण री,
कालू रो अंकन, सहज प्रतिष्ठा गण री।।
४१. संस्कृत-प्राकृत-पाठी जब कब भी आता,
डालिम परबारा कालू पास पठाता।

---

१. देखें प. १ सं. २१
२. स्थिरवासिनी साध्वियों में व्यवस्था संबंधी गड़बड़ी होने पर अनेक बुजुर्ग और अनुभवी साधु-साध्वियों के होने पर भी सुजानगढ़ से कालूगणी को ही लाडनूं भेजा गया।

उगणीसै साठै बीदासर रा ठाकर,
ल्याया इक पानै संस्कृत श्लोक लिखाकर।।
४२. दीधो डालिम नै इणरो अर्थ बतावो,
श्री डालिम सूंप्यो कालूजी नै ठावो।
'शार्दूलविक्रीडित' श्लोक-अर्थ नहिं आयो,
कालू तिणनै अध्ययन-निमित्त बणायो[1]।।
४३. अपणै पुरुषारथ रा कालू विश्वासी,
निरपेक्ष निरंतर रहणै रा अभ्यासी।
आखिर बो पौरुष स्वयं सामनै आयो,
पुरुषार्थ भाग्य स्यूं शासण नै चमकायो।।
४४. कालू 'स्वामी'[2] नै प्रतिक्रमण संभळाता,
अन्तिम आराधन कालू स्वयं कराता।
गण-आर्त-गवेषण भीतर-भीतर करता,
छानै-छानै निज गुप्त खजानो भरता।।
४५. अंतर-विनोद रो जब-जब अवसर आतो,
कालू रो अंकन स्वयं सहज हो ज्यातो[3]।
विस्तर-भय स्यूं ओ प्रकरण अब विरमाऊं,
श्री डालिम-कालू-चरणां में झुक ज्याऊं।।

[4]सुजनां! श्री कालूव्याख्यान ध्यान धरि सांभळो रे लोय।

४६. सुजनां! प्रमुदित सारो संघ, रंग रग-रग रम्यो रे लोय।
सुजनां! अभिनव खुशी उमंग, सहज में जी जम्यो रे लोय।।
४७. सुजनां! आ पहलै उल्लास, ढाळ दसमी कही रे लोय।
सुजनां! कालूयशोविलास, सुणो बांचो सही रे लोय।।

---

१. देखें प. १ सं. २२
२. डालगणी
३. देखें प. १ सं. २३
४. लय : भविकां! मिथुन उपर दृष्टान्त

ढाळः ११.

दोहा

१. श्री डालिम गुरुदेव री, गतिविधि रो वर रूप।
अंकन करणो है कठिन, सही-सही तद्रूप।।
२. सिंहासन स्हाजै यदा, ओढ़ी अंग बनात।
रुजाग्रस्त पिण कुण कहै, गद-पीड़ित गुरु-गात।।
३. तन-बल तो तर-तर घटै, त्यूं मन-बल अतिरेक।
तन-मन अंतर ओ बड़ो, बूझो करी विवेक।।
४. अब पावस ऋतु पावसी, विकसी है वनराजि।
पर्ण मिषे पुहवी मनु, रही कर्ण निज साजि।।
५. भुवन-भार-व्याकुलमना, करण क्लेश रो ह्रास।
डालिम-मुख-उपदेशना, श्रवण उद्यता खास।।

[1]सुणिए सज्जन! शुभमना।

६. सालम्बन सिंहासने, गुरु श्रमण-समूहे।
शिक्षामृत वच बागरै, श्रुति-निष्प्रत्यूहे।।
७. आयो हाथ चिंतामणि, सुरपादप छायो।
कामधेनु मनु कर चढ़ी, भैक्षवगण पायो।।
८. पायो शिव-पल्यंक रो, भवियां मनभायो।
शोभायो सौभागियो, जय-स्वाम सवायो।।
९. रहिए स्थिर पद रोपनै, बहिए गुरु-आणां।
सहिए मृदु कटु सीखड़ी, सुणो मुनिवर स्याणां।।
१०. प्राणान्ते पिण दृढ़प्रणी, गण-गृह न बिसारै।
पवनेरित-च्युत-कुसुम री, गति क्यूं न निहारै।।
११. सावधान अवधान में, जो मुनि-मर्यादा-
पाळै, ते प्रभुता लहै, नहिं कहणो ज्यादा।।
१२. गणि रो जो कर्तव्य है, गण रो पिण जाणो।
जुदो-जुदो दरसावियो, जिनशासन-राणो।।

---

१. लय : वीरमती कहै चन्द नै

१३. मधुधूली धूली समी, गुरु-शिक्षा आगे।
धन्य स्वयं श्रुति सांभळी, मुनिवर बड़भागे।।
१४. बगसीसां तीजे दिने, कालू निज कर स्यूं-
लिखै, मगन नै ही मिली रिझवारी धुर स्यूं[1]।।
१५. अवर श्रमण-श्रमणी गुणी, जह-जोग पिछाणी।
दृग-दौलत डालिमगणी, बगसै वर नाणी।।
१६. शुक्ल भाद्रपद द्वादशी, आखिर अब आई।
सायंकाले स्वाम री, तनु-छवि पलटाई।।
१७. श्री कालू 'गुरुदेव' नै, प्रतिक्रमण सुणायो।
सन्निकटे आयू लखी, अनशन उचरायो[2]।।
१८. शरणां स्व मुख सुणावतां, सुरलोक सिधाया।
सप्तम आसन-अधिपती, डालिम गणराया।।
१९. दूजै दिन गुरु-देह रो, संस्कार करायो।
उच्छब ठाट-हगाम स्यूं, लौकिक कहिवायो।।
२०. जय-जय शासन-साहिबा! महिमा महि भारी।
मोहन मूरति ऊपरै, बलि-बलि मैं वारी।।
२१. डालगणीश्वर री कही, संक्षिप्त कहाणी।
विस्तृत रूप बखाणवा अवसर अगवाणी[3]।।
२२. एकादशमी ढाळ में, गुरु-गरिमा गाई।
कालू-वृत्त बखाणस्यूं, शुभ बेळा आई।।

कलश

२३. आचार्यपद-पर्याय संयम सर्व आयू स्वाम जी,
सह अर्धग्यार तंयाल सत्तावन सुहायन रो सझी।
गण-सिन्धु-उलसन इन्दु, सद्गुण-सिन्धु तेजे दिनमणी,
सुर-वर्ग-सेवित स्वर्ग-श्री स्वीकरी श्री डालिमगणी।।

---

१. मन्त्री मुनि को समुच्चय के वजन और बारी से मुक्त रहने का पुरस्कार प्राप्त हुआ।
२. मन्त्री मुनि श्री मगनलालजी ने डालगणी को अनशन करवाया।
३. यह पद्य उस समय का है, जब आचार्यश्री ने डालिम-चरित्र की रचना नहीं की थी। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन-काल तक डालिम-चरित्र मुद्रित होकर आ चुका है।

सोरठा

२४. अड़सठ मुनि बेजोड़, एकतीस दो सौ सती।
कालू-शरणे छोड़, स्वर्ग सिधाया डालगणि।।
२५. ग्यारह अट्ठाईस, बहिर्विहारी मुनि-सती-
सिंघाड़ा नतशीष, बाकी गुरुकुलवास में।।

ढाळः १२.

दोहा

१. संत मगन तिण अवसरे, पत्र-प्रकार सुजाण।
कहै बिराजो पाट पर, भैक्षवगण-नभ-भाण!
२. कालू कर काठो करै, भरै नहीं हुंकार।
बोलै पहली देखल्यो, गुरु-कर-पत्र निकार।।
३. मगन कहै, हां देखस्यां, आप बिराजो पाट।
पळपळाट करतो प्रकट, दीखै लेख ललाट।।
४. जन्मस्थली तुम्हारड़ी, स्थली सुघड़-सरदार!
तो किण ठामे सीखिया, मारवाड़-मनुहार।।
५. शिष्य-वर्ग री वीनती, सहसा दिल अवधार।
श्री-आसन शोभित करो, शासन-तन-सिणगार!
६. सारा मिल अति आग्रहे, सिंहासन शुभ साज।
मुश्किल स्यूं आसित किया, श्री कालू गुरुराज।।
७. मगन मगन-मन तिण समै, तीरथ च्यार समक्ष।
श्री डालिम रो लिखित खत[1], संभळायो निरपक्ष।।
८. पाट महोत्सव कारणे, निकट मुहूर्त निभाल।
श्रेष्ठ प्रोष्ठपद पूर्णिमा, वासर ठव्यो विशाल।।
९. मोटां रै मारग बहै, वर बेळा बिन मांग।
जन्म समै गहि हाथ में, कुण देखै पंचांग।।

१०. [2]भाद्रवि पूनम भावी, भावी-प्रगति-प्रतीक।
नियता पूज्य पटोत्सवे, मंगलीक निर्भीक।।

---

१. देखें प. १ सं. २४
२. लय : भूमीश्वर अलवेश्वर कानन फेरै तुषार

११. दुतिया स्यूं प्रारम्भी, लम्बी जिण री लीक।
सो साबत अब ऊगसी, रोहिणिधव रमणीक।।
१२. नव-नव मानव धावै, आवै ओच्छब-स्थान।
हेतु भव-भ्रम-रो शमन, प्रभु-पद-स्पर्शन मान।।
१३. बलि वामा अभिरामा, स्वामी रै दरबार।
धावै गृहकामा तजी, सझी सघन मन प्यार।।
१४. नियत समय श्री कालू, झालू डालू-पाट।
समवसर्‌या मधरी गती, सज्जन-जन-सम्राट।।
१५. उच्चासन अधिराजै, साझै आप्त-सबूत।
पुण्य-पुंज अथवा हुयो, निज-जश पिण्डीभूत।।
१६. मानूं भानू संगे, धरतो शशधर खार।
विजयी वासर अवतर्‌यो, सह मुनिगण-ग्रह-तार।।
१७. एकण पासे भासे, सौम्य श्रमण-समुदाय।
श्रमणी श्रावक श्राविका, निज-निज पद सोभाय।।
१८. नूतन निरुपम निरखी, मण्डप रो निर्माण।
नितप्रति नभ अवगाहणो, सफल गिण्यो निज भाण।।
१९. सघन सुकृत सम सिततम, प्रवर पछेवड़ि एक।
मुनिवर प्रधरावी नवी, कीन्हो पद-अभिषेक।।
२०. डीले डपटी दुपटी, दीपै धवल प्रकाश।
पूज्य-वदन रयणीधणी, प्रकटी ज्योत्स्नाभास।।
२१. नव शासणधव-स्तवना, भव-नाशण रै हेत।
गावै हुलसावै गुणी, श्रमणी श्रमण सचेत।।
२२. संघचतुष्टय समुदित, प्रमुदित बोलै वाय।
भाग्यदशा जागी भली, बड़भागी गुरु-पाय।।
२३. जय-जय नन्दा! भद्दा! भद्दं ते चिरकाळ।
अणजीता जीती करो, जीतां री रिछपाळ।।
२४. स्वर्गे अनिमिष-वर्गे, ज्यूं सुपर्व-शिरताज।
असुराधिप असुरान में, उडुगण में उडुराज।।
२५. व्रतिवर! प्रतपो व्रत-पोषित नित दीन-दयाल!
तीव्र तपोबल स्यूं तरुण, गण-गोकुल-गोपाल! (युग्म)
२६. क्रोड बरस क्रोडीकृत, सूरी-पद री सोड़।
शासन-मोड़! सदा रहो, नव अंकां री जोड़।।

२७. ईड़ा-पीड़ा अळगी विलगो व्रीड़ा धार।
गण-उपवन मांही करो, क्रीड़ा नित अतिकार।।
२८. आशीर्वाद-निनादे नादे, दिग्गज नाद।
मनु अनुरागी राग में, राग मिलावै साद।।
२९. नव गुंजारव निसुणी, करण छाण पहचाण।
आवै नरलोके सुरा, नन्दन-वन मिष ठाण।।
३०. अति उत्साह-प्रवाहे, पाट-महोत्सव-ठाट।
चन्देरी नगरी तदा, किण नगरी स्यूं घाट।।
३१. करसी राज अचक्कां, छक्कं-छक्कां देव।
तिण स्यूं दो छक्का मिल्या, छ्यांसट्ठे स्वयमेव।।
३२. दाखी दिल-बिच राखी, श्री गुरुदेव दयाल।
कालूयशोविलास री, आ द्वादशमी ढाळ।।

ढाळः १३.

दोहा

१. मौली[१] जिन-मत-मस्तके मौली[२] सुविहित-मूल।
तम्बोली प्रगट्यो तरुण, अरुणन भवि-ताम्बूल।।
२. अष्ट कर्म[३] अरि-दल दली, हो अष्टम गुणठाण[४]।
अष्ट इलातल[५] ऊपरै, अष्ट महागुण ठाण[६]।।
३. गन्तुमना सुमना सदा, अष्ट मातृपद[७] लीन।
महामना मथ अष्ट मद[८], अष्टम पद आसीन।। (युग्म)

---

१. कालूगणी (मूलचन्दजी के सुपुत्र)
२. मुकुट
३. देखें प. १. सं. २५
४. देखें प. १ सं. २६
५. देखें प. १ सं. २७
६. देखें प. १ सं. २८
७. देखें प. १ सं. २९
८. देखें प. १ सं. ३०

४. अष्ट सिद्धि[1] आगम-कथित, अष्ट आप्त-प्रतिहार्य[2]।
अष्ट रुचक[3] रुचिकर बणै, अष्ट अंक अविकार्य।।
५. रीति राज्य-अभिषेक री, रची सुचारू रूप।
बहुविध बगसीसां हुई, यथायोग्य अनुरूप।।
६. भिक्षू-कृत श्री लिखत री, नव्य नकल करि सद्य।
अष्टम-अधिपति री करी, अंकित अभिधा मध्य।।
७. नीचै सारा ही मुनी, सही करी सुखकार।
भैक्षवशासण री सदा, अद्भुत छटा उदार।।
८. प्रथम याम व्याख्यान अब, प्रारम्भ्यो शुभ वेण।
श्रवण-सरस रस-कूपिका, आगम उतरज्झेण।।
९. रात्रि-समय पीयूषमय वचने रामचरित्र।
श्रीमुख स्वाम समुच्चरै, वर्णन विपुल विचित्र।।

[4]सुकृत-महिमा सुणो रे,
शुश्रूषा स्वीकार, सुकृत-महिमा सुणो रे।
जिज्ञासा दिल धार, सुकृत-महिमा सुणो रे।।

१०. अष्टम पद अनुशासना रे, प्रारम्भी गुरुराज।
स्वाभाविक हुइ द्विगुणता रे, त्रिक-युग छकता साझ[5]।।
११. दो छक्का तो बरस रा रे, षष्ट मास इक छक्क।
इक तिथि रो वय रो बली रे, परिषद छक्क अवक्क।।
१२. छव छक्का सहजे मिल्या रे, घूणाक्षर री राह।
सुकृत संचित सामठो रे, तिणनै क्यूं परवाह।।
१३. परिषद जद पावन करै रे, निज आसन उपविश्य।
दृग-गोचर जनता करै रे, शक्र-सुधर्मा-दृश्य।।
१४. सझे सपदि उपदेशना रे, समये गण-अधिराज।
वचन सघनता स्यूं हुवै रे, सावन-घन ओगाज।।

---

१. देखें प. १ सं. ३१
२. देखें प. १ सं. ३२
३. देखें प. १ सं. ३३
४. लय : कीड़ी चाली सासरै रे
५. देखें प. १ सं. ३४

१५. पवयण-वयण-विवेचना रे, समुचित समय विमास।
व्याख्याने आणे तदा रे, पूरवधर आभास।।
१६. श्लोक लोक-मन-मोहनां रे, संस्कृत में बिन रोक।
सुणी ओक तजि विश्रम्यो रे, सुरगुरु तो सुरलोक।।
१७. अनुपम अंग-सुरंगता रे, बिन भूषण अभ्यंग।
व्यंग भाव दिल में भजी रे, अंगज आज अनंग।।
१८. अद्‌भुत वत्सलता भली रे, सारां पर इक साथ।
भणै सकल जन मोद स्यूं रे, त्रिभुवन-तात वदात।।
१९. अतिशय आभा ओपती रे, अंतर अच्छ अनूप।
अतिशयोक्ति नहिं जो कहूं रे, वीरप्रभु-प्रतिरूप।।
२०. चकित हुया जन देखनै रे, मुख मुखरित आवाज।
ओ आसी इण तखत पै रे, कुण करतो अन्दाज।।
२१. मेला-मेला राखतो रे, तनु-अनुकूल दुकूल।
भूल चूक नहिं भाखतो रे, बेमतलब वच मूल।।
२२. साद-साद में सादगी रे, दरसातो हर बार।
वाणी वाद-विवादगी रे, नहीं कही मुख बार।।
२३. मौनी करतो गोचरी रे, ल्यातो पाणी-पात्र।
उण दिन इण दिन में हुयो रे, ओ अंतर अतिमात्र।।
२४. बैठ्या मन में सोचता रे, डालिम गणिवर बाद।
स्वाद मधुर व्याख्यान रो रे, आसी निशिदिन याद।।
२५. पिण आ कल्पित कल्पना रे, राखी हृदये व्याप।
न सुणी कालू-देशना रे, सो करसी अनुताप।।
२६. गुण जितरा आचार्य रा रे, आगम रै अनुभाव[1]।
एक अंग में झांकल्यो रे, गादी रो परभाव[2]।।
२७. मघवा कर खरसाणता रे, डालिम री पहचाण।
कालू री कोहनूरता रे, आज हुई सुप्रमाण।।
२८. पारस्परिक विमर्शणा रे, करै लोक अस्तोक।
पल-पल में पुलकित हुवै रे, कालू-वदन विलोक।।

---

१. देखें प. १ सं. ३५
२. देखें प. १ सं. ३६

२९. शासन-सागर री अबै रे, बधसी बेल विशाल।
श्री कालू राका-शशी रे, उदयो गणप्रतिपाल।।
३०. सुद आषाढ़ त्रयोदशी रे, सत्ताणू री साल[1]।
कालूयशोविलास री रे, आ तेरहवीं ढाळ।।

ढाळः १४.

दोहा

१. शहर लाडणूं स्यूं सुगुरु, कीन्हो प्रथम प्रवास।
मिगसर मास सुजानगढ़, संघ सकल सोल्लास।।
२. दो-दो पोथी राज री, बूढ़ा-बूढ़ा साध।
ले-ले चल्या सुजानगढ़, डालिम री मरजाद।।
३. मगन करी अभ्यर्थना, कीजे माफ महेश।
पूरववत चालू करी, श्रीकालू करुणेश[2]।।
४. बहिर्विहारी आविया, सिंघाड़ा मन हर्ष।
अभिनव शासनदेव रा, दर्श करै सोत्कर्ष।।
५. प्रांजल-दिल बद्धांजली, पूज्य-पदाम्बुज भेट।
अकथनीय आनन्द रो, अनुभव पथ-श्रम मेट।।
६. धन्य-धन्य डालिम गणी भणी घणी-घणि बार।
सोध्यो निज अनु आफणी, शासनमणी उदार।।
७. व्रतपीनो लीनो गुणे, निमल नगीनो न्हाल।
गण-सुवरण-मुकुटे मढ्यो, बढ्यो सुयश तव डाल!
८. बढ़ै शिष्य री साहिबी, ज्यूं हिम ऋतु री रात।
त्यूं-त्यूं ही गुरु री हुवै, विश्व व्यापिनी ख्यात।।
९. यूं हार्दिक उल्लास स्यूं, गणपालक प्रति राग।
अंतरंग अनुराग रो हुवै निरालो माग।।

---

१. वि. सं. १९९७, लाडनूं में
२. देखें प. १ सं. ३७

[1]आज आनन्दा रे,

१०. बीकाणै पावस करी आनन्दा रे,
श्री छोगां गुरु-मात क आज आनन्दा रे।
कानकंवरजी संग में आनन्दा रे,
भगिनी-दुहिता ख्यात क आज आनन्दा रे।।
११. अति उत्साहे आविया, चातुरदुर्ग चलाय।
निज सुत तीरथ-तात नै, वन्दै विकसित-काय।।
१२. रूं-रूं शीतलता हुई, हरस हिये असमाण।
मोद न मावै चित्त में, लोयण अमिय भराण।।
१३. अनिमिष नयणां निरखती, जाणक अनिमिष-रूप।
अद्भुत अनुभवती रती, चिन्तै चित अनुरूप।।
१४. मैं प्रसव्यो इण पुत्र नै, उदर धर्‌यो नव मास।
स्तन्य-पान स्यूं पोषियो, हुलरायो हुल्लास।।
१५. मनमोदे गोदे गह्यो, पोढावी उत्संग।
पाळ्यो परिघल प्रेम स्यूं, अनहद हृदय उमंग।।
१६. भाग्यवती मैं हूं सती, इण जग मांही आज।
म्हांरो सुत त्रिभुवन-तिलो, छाजै तखत विराज।।
१७. अमित प्रेम-घन ऊमड़्यो, रोमांचित तनु-सन्ध।।
जग में जननी-जात रो, है अभिहड़ संबंध।।
१८. निज लोचन गोचर कर्‌यो, ज्ञातपुत्र शुभ पुत्र।
देवानन्दा माहणी, सुणो भगवती सूत्र[2]।।
१९. उण अपूर्व आनन्द रो, किंयां हुवै अनुवाद।
कुण जलनिधि कल्लोल री कलना में उस्ताद।।
२०. जननी जननी सुत जणै, इसड़ो सुत इण मात-
जाम्यो, रयणोत्पादिका रोहणभू विख्यात।।
२१. एतादृश सुत एक ही, सकल-वंश-अवतंस।
एक दशाकर्षे यथा, आलय-ओप-प्रशंस।।
२२. सुतनय एक सुहामणो, कुण गुण-इतर हजार।
चंदन-कटकी सामनै, काठ-शकट बेकार।।

---

१. लय : आज आनन्दा रे
२. भगवई श. ६ सूत्र १४६-१४८

२३. रयण-कुक्षि री धारिणी, जिन-जननी कहिवाय।
तो क्यूंकर ऊणी हुवै, अजिन-जिनोपम माय।।

कलश

२४. कर मधुर आमन्त्रण सभा में, मातृ-उपकृति संथुणी,
बगसीस बारी बोझ री, आजन्म की गणिवर गुणी।
सब छूट पांती असण-पाणी री करी जीवन सुधी,
अरु च्यार श्रमणी हृदयगमणी चाकरी हित विमलधी।।

[1]आज आनन्दा रे,

२५. सारो संग उमंग स्यूं, जम्पै हे जगदीश!
थोड़ी है जेती करो, जननी नै बगसीस।।
२६. कानकंवरजी नै गणी, तिण ही दिन दोफार।
बारी री बगसीस की, और उतार्यो भार।।
२७. विहरत श्री बीदासरे, समवसर्या गणनाथ।
माघमहोत्सव कारणे, साथ श्रमण-संघात।।
२८. पुरजन निज परिवार स्यूं, प्रमुदित गुरु-मुख भाल।
कालूयशोविलास री, जमी चवदमी ढाळ।।

ढाळः १५.

दोहा

१. अब बीदासर शहर में समुदित शोभा पाय।
वार्षिक मर्यादोत्सवे, श्रमण-सती समुदाय।।
२. सद्गुरु-चरण-सरोज री, साझै सेव महान।
धन्य घड़ी जीवन जड़ी, धन्य भाग निज मान।।
३. किसो पठन-पाठन विषे, कियो नयो अभ्यास?
स्मरण निशा-जागरण-युत, कियो न वा प्रतिवास?

---

१. लय : आज आनन्दा रे

४. आगम अवलोकन समन, समये लेखन-कार्य।
आर्य! समाचरता क नहिं तथा कार्य अनिवार्य?
५. इणविध विहरण आदि रो वार्षिक विवरण व्यास।
खास-खास अवगत करै, शासनेश शुभ-भास।।
६. उपालम्भ सालम्ब ही, सावकाश स्याबाश।
यथायोग्य देवै यतिप, श्रमण-सती सोल्लास।।
(चतुर्भिः कुलकम्)

७. [1]समये-समये स्वामी, साद सुहामणे,
मेटण खलता-खामी जि, सीखड़ली भणे।
संयम भार समाह्यो, जिण निज खंधले,
कांचनगिरि ऊंचायो जि, तिण निज भुजबले।।
८. आत्मोद्धार विचारी, नितप्रति निर्वहै,
शाश्वत संपति सारी, सहसा संग्रहै।
अंश अणी मत चूको, उच्च कुलोप्पना!
ध्येय ध्यान में ढूको, मुनिवर शुभमना।।
९. स्नेह राग रो दागो, मत लागो कदा,
इण जागरणा जागो, रात्रिदिवं सदा।
दूर रहो सन्निकृष्टे, एक स्वभाव में,
सम्मुखीन हो पृष्ठे, भाव विभाव में।।
१०. भैक्षवगण-मर्यादा, अविवादास्पदा,
आराधो बिन बाधा, मुदितमना मुदा।
रीझ-खीज समभावे, गणपति री खमो,
सहू सरीखे दावे, गणवन में रमो।।
११. एक समान प्रवृत्ती, वृत्ति इक सारखी,
नीति रीति अरु भित्ती परखो पारखी।
संघ सकल संबंधी, इक गणपाल स्यूं,
एकज सूत्रे सन्धी, मौक्तिक-माल ज्यूं।।
१२. सारभूत जग एको, देखो प्यार स्यूं,
एकै बिन नहिं लेखो, शून्य हजार स्यूं।

---

१. लय : सायर लहर स्यूं जाणै जि

पूज्य-वदन-घन-पाणी, वाणी बरसती,
गणवन री विकसाणी, कलियां हरसती।।
१३. शिक्षा-शुक्तिज सारा, इकधारा चुगै,
मुनि मानस-वसणारा, नहिं इत-उत डुगै।
माघ-महोत्सव हेते, मनुज उम्हाविया,
वहता वासर केते, प्रभु-पद पाविया।।
१४. देश-देश रा वासी, निज-निज वेष में,
छोड़ी ऐश-विलासी, सुकृत-गवेष में।
झुक-झुक निज सिर झोंकै, पूज्य पदाम्बुजे,
देवालय ज्यूं धोकै, कर-युग संयुजे।।
१५. जुळ-जुळ आवै आगै, पाका पानड़ा,
लुळ-लुळ चरणां लागै, बालक नानड़ा।
ऊंचै शब्द उचारै, स्वाम! खमा घणी,
पाखति आय पुकारै,आरत आपणी।।
१६. भाखै मारग मूको, शीघ्र अबार स्यूं,
आया ले निज कूको, कोश हजार स्यूं।
माल-मलीदै ढूको, नित-नित मोज स्यूं,
म्हांरै हाथे टूको, बहुली खोज स्यूं।।
१७. पूछै प्रभु! सुखसाता, है तनुरत्न में,
थांरै लारै त्राता! सफल प्रयत्न में।
मांगे मन अनुरागे, मुख आगे खड़ा,
गुरु आगल समभागे, लहुड़ा नै बड़ा।।
१८. सातम वासर आयो, सफल उमंग में,
वचन-अगोचर छायो, मंगल संघ में।
च्यार तीरथ रा मेळा, रंग-रेळा वरै,
मनु नन्दन-वन केळा, सुर भेळा करै।।
१९. सात तीन सिंघाड़ा, गणविभु ठाविया[1],
मेटण पाप-पवाड़ा, भवि मन भाविया।
देश-देश विचराया, मुनिवर आर्यिका,
चउमासा उचराया, जहजोगे जिका ।

---

१. देखें प. १ सं. ३८

२०. कार्यदक्षता देखी, दक्ष-शिरोमणी,
विस्मित चित्त विशेखी, बलि-बलि सिर धुणी।
अकटुता पटुताई, अल्प अनेह में,
कुण आ किंयां सिखाई? ई भ्रम में भमै।।
२१. रवि नै कुण सीखावै, पंक प्रशोषणो,
अमृतरुचि नै आवै, पंकज पोषणो।
सागर में शोभावै, सहज सधीरता,
त्यूं ही कालू-काये, पटु कोटीरता।।
२२. ब्रह्मचर्य री आभा अभिनव आबरू,
जिनशासन में वा-वा अधिक उजागरू।
पूरी प्रथमोल्लासे ढाळ आ पनरमी,
कालूयशोविलासे तन-मन में रमी।।

ढाळः १६.

दोहा

१. प्रथमोल्लास प्रसंग में, दीक्षा-व्यतिकर देख।
पाठक-सुविधा-हित करूं, एकत्रित उल्लेख।।
२. छ्यासट्ठै स्यूं सित्तरै, माघोत्सव चौमास।
थोड़ै में बलि वर्णवूं, शासण रो इतिहास।।
३. पूनमचन्द जसोल रो, सुद सातम आसोज।
प्रथम-प्रथम दीक्षा ग्रही, करणै अंतर खोज[1]।।
४. कार्तिक कृष्ण अमावसी, दो दीक्षा दृढ़ कोल।
करणपुरी लिछमां सती, मालू जनम जसोल।।
५. सुद कार्तिक एकादशी, रूपां संयम साध।
च्यारूं दीक्षा छ्यांसठे, चंदेरी अविवाद।।

लावणी छंद

६. मिगसर बिद नवमी देवगढ़ी इक आछो,
कस्तूर नाम पृथ्वी-मुनि-दीक्षित साचो[2]।

---

१. देखें प. १ सं. ३६
२. देखें प. १ सं. ४०

सुद नवमी दिन पटुगढ़ भव-भ्रमण उदासी,
ली दीक्षा घासीराम दिवेर-निवासी[1]।
तिण ही मासे सुद चवदस बीकाणे री-
धनकुमरी, गोगुन्दै री जमना हेरी।
तीजो गिरिगढ़ रो तपसी संत हजारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

दोहा

७. राजलदेसर में रज्या, राजनपति राजाण।
रमकू कुडरै की लियो, संयम अव्यवधान।।

लावणी छंद

८. बीदासर माघमहोत्सव रै शुभ टाणै,
फागण बिद पांचम दीक्षा भाग्य-प्रमाणै।
फूलांजी रीणी रा नोहर पीहरियो,
ली विदा बिदासर स्यूं गणिवर गुणदरियो।
गिरिगढ़ मोमासर सर-सरदार पधार्‌या,
पुर बाहिर इक वनिता रा कारज सार्‌या।
पन्नां पुरवासिणि[2] संयमश्री स्वीकारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

सोरठा

९. जाति बरड़िया खास, पीहर डागां घर प्रवर।
हद संयम हुल्लास, सुवटां रो मधुमास में।।

लावणी छंद

१०. चूरू वसुगढ़ हो पुनरपि पूज्य पधारै,
सरदारशहर जनता रा भाग उघारै।
सिड़सट्ठै पावस स्वल्प-संख्य मुनि पासे,
केवल सोलह अरु सतियां उणपच्चासे।

---

१. देखें प. १ सं. ४१
२. सरदारशहर-निवासिनी

आषाढ़ शुक्ल दसमी दिन संयम धार्‌यो,
छगनां बोरावड़-वासिणि जन्म सुधार्‌यो।
चरमोत्सव पट्टोत्सव री छटा अटारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।

सोरठा

११. चरमोत्सव मध्यान, च्यार तीरथ रै सामनै।
मगन मुनी मतिमान, शेष काम बगसीस ली[1]।।

लावणी छंद

१२. अमरू आसोज कृष्ण में दीक्षा लीनी,
सुद कार्तिक में झमकू वेरागे भीनी।
रुकमा कोटासर गिरिगढ़-वासिणि हीरां,
कार्तिक सुद तेरस संयम लियो सधीरां।
चूरू हो वसुगढ़[2] वसुपट-वासव आया,
मूलां दवेर[3] री दाखां संयम पाया।
सड़सट्ठै मोच्छब धरती राजाणा री,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।
१३. वासी बरार रो सेंसमल्ल लहुवंशी[4],
माह सित आठम ली दीक्षा परम प्रशंसी।
सित चवदस सोनां कन्या असोतरा री,
बीदासर छापर चाड़वास दृग डारी।
अब सुजानगढ़ वैशाख सुदेकम दीक्षा,
संतोखां मुक्खां तपसण तीव्र तितिक्षा।
लघुसिंह परिपाटी नवमासी निरधारी[5],
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

---

१. इससे पहले उनको समुच्चय के वजन और रात की बारी की बख्शीश थी।
२. रतनगढ़
३. साध्वी मूलांजी और दाखांजी दोनों ही दिवेर की थीं। देहली दीपक न्याय से मध्यवर्ती दिवेर दोनों के साथ जुड़ जाता है।
४. दसा ओसवाल लघुवंशी कहलाते हैं।
५. देखें प. १ सं. ४२

दोहा

१४. डूंगरगढ़ रो भानजी, बीदासर आषाढ़।
संयम ले बाहिर हुयो, मोहकर्म-गति गाढ़।

लावणी छंद

१५. अब अड़सट्ठै है बीदासर चौमासो,
इकचाली श्रमणी बीस संत सुखवासो।
सित सावण में छगनां बीदासर-वारी,
भाद्रव बिद दो दीक्षा दोनूं सतियां री।
चांदां पेमां डूंगरगढ़ री बसणारी,
प्यारां पचपदरा री सित भाद्रव भारी।
सारी की सारी कृपया गुरुवर तारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।
१६. चूरू रो चावो सोहनलाल-सुराणो[1],
मां सिरेकंवरजी साथ चरण रंगाणो।
सरदारशहर रो आशकरण अगवाणी,
पूनां चांदांजी दोनूं सती सयाणी।
आसो सुद चवदस पांचूं संयम साध्यो,
गुरुदेव दयालू रो इंगित आराध्यो।
है खुली खान-सी देखो बेराग्यां री,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।
१७. मीठै-चंपक रो छोटो भाई चूनो[2],
कार्तिक-दीक्षित संसार लग्यो है सूनो।
पूरो अड़सठ रो पावस अब राजाणै,
पो, बिद पख में है दीक्षा पांच प्रमाणै।
बो घोर तपस्वी मुनि सुखलाल[3] सिसोद्यो,
फूलां मुक्खां मालू निज जीवन सोध्यो।

---

१. देखें प. १ सं. ४३
२. देखें प. १ सं. ४४
३. देखें, मुनि सुखलालजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा विरचित गीत—घोर तपसी हो मुनि घोर तपसी।

छोटांजी की कर्मां पर चोट करारी[1],
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

सोरठा

१८. तेरस पो. बिद पक्ष, छापर छापर-वासिणी।
संयम पूज्य-समक्ष, चांदां चांद उगावियो।।
१९. माघ मास बिद दूज, सुजानगढ़ में स्वामजी।
छव दीक्षा शुभ सूझ, भव सागर स्यूं उद्धर्‌या।।

२०. [2]सिरसा रो रहवासी गणपतराम क,
मौलांजी सह संगिनीजी।
सोदर-दुहिता साथ हुलासां नाम क,
संयम हृदय उमंगिनी जी।।
२१. पंचोलै-पंचोलै दृढ़ परिणाम क,
तप आयंबिल पारणै जी।
धृतिधर धीरो धार्‌यो गणपतराम क,
कर्म-कटक जय कारणै जी।।
२२. अमीचंद मुनि मन वैराग्य अमंद क,
भोगी भ्रमर विलासियो जी।
भर यौवन में न्हायो सुकृत-समंद क,
संयम में मन वासियो जी।।
२३. संत किशनजी तिण पुरवासी बैद क,
छगनांजी तन-छांहड़ी जी।
उभय आदर्‌यो संयम आण उमेद क,
पकड़ी शिवपुर-राहड़ी जी।।

लावणी छंद

२४. अड़सट्ठै माघ महोत्सव है चंदेरी,
फागण बिद तीज तीन दीक्षा शिव-सेरी।

---

१. देखें प. १ सं. ४५
२. लय : जिणशासण में धुर स्यूं

सुख मुनि की मां चांदां केसरां जड़ावां,
बिद छठ बलि दीक्षा च्यारूं वरी सुभावां।
मुनि प्यारचंद मगनां नोजां ज्ञानांजी,
पीथास-निवासिणि जीती जीवन बाजी।
मां-बेट्यां[1] सति जेठां[2] री सेवा सारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

२५. लच्छी-रिखिराम पिता-सुत हरियाणे रा,
बिद चेत रतनगढ़ संयम लियो सवेरा।
जनपद विहार कर चूरू पावस ठायो,
गुरु महर नजर स्यूं गुणंतरे गरणायो।
सावण में आत्मनिवासी गुरु-गुण रीझ्या,
धनरूप[3] हेममुनि[4] चरण रंग रंगीज्या।
भाद्रवि पूनम पुनि च्यार बण्या भवतारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

२६. [5]मुनिवर नेमी रूपांजी भल भाल क,
पकड़ी शिवपुर पावड़ी जी।
पुर पहुना रो चींपड मांगीलाल क,
प्यारांजी सह मावड़ी जी।।

२७. मां विरधांजी सुता सोहनां संग क,
कार्तिक कृष्ण उणंतरै जी।
चूरू में ली दीक्षा परम उमंग क,
डोढ़ मास रै अंतरै जी।।

---

१. साध्वी नोजांजी, साध्वी ज्ञानांजी
२. साध्वीप्रमुखा
३. मुनि धनरूपजी और मुनि हेमराजी, ये दोनों परस्पर संसारपक्ष में चाचा-भतीजे थे।
४. देखें, मुनि हेमराजजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा विरचित गीत—'हेम हरष धर समरिये'।
५. लय : जिणशासण में धुर स्यूं

लावणी छंद

२८. मिगसर में पुर-सरदार पोष राजाणै,
मर्याद-महोत्सव छायो छक बीदाणै।
एकोत्तर दो सौ श्रमण, सती है भेळा,
सुद सातम लागै अजब-गजब का मेळा।
अब शहर लाडणूं पूरण मास विराजै,
फिर सुजानगढ़ भी अभिनव शोभा साझै।
चावै दोनूं पुर पावस री रिझवारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

२९. ठाकुर आणँदसिंहजी पुरजन सागै,
अत्यधिक प्रार्थना सफल बणी बड़भागै।
यूं साल सित्तरै रो पावस चंदेरी,
सतरह मुनि श्रमणी है अट्ठावन हेरी।
तपसी तपसण सावण में संयम पायो,
अणचां[1] आसोजी गण में नाम कमायो।
आसोज जड़ावां निज आतम निस्तारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

सोरठा

३०. वृद्धिंगत तप त्याग, मासखमण महिमानिला।
हुया च्यार बड़भाग, सतियां में पुर लाडनूं[2]।।

लावणी छंद

३१. हो बीदासर पथ देशनोक रो लीन्हो,
जाणो है बीकानेर कियो दृढ़ सीनो।
धर्मा रो संगम कट्टर धर्मस्थल है,
नहिं यात्रा निष्फल पुण्याई रो बल है।

---

१. पष्टिपूर्ति समारोह (वि. सं. २०३१) के अवसर पर आचार्यश्री तुलसी द्वारा 'दीर्घ तपस्विनी' के रूप में सम्मानित।

२. साध्वी कस्तूरांजी (इंदौर), साध्वी हीरांजी (डीडवाना), साध्वी सुखांजी (चंदेरा) और साध्वी चांदांजी (आमेट) ने लाडनूं में मासखमण तप किया।

पो. बिद में सिरेमल्ल संयम रै सरणै,
बीकाण निवासी देवी आत्म उधरणै।
हरखू भूरां धारी उज्ज्वल उपरारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

दोहा

३२. माघ महोत्सव सित्तरै, पुनरपि पुर बीदाण।
मुनि चउसठ श्रमणी गुणी, इक शत नवती माण।।

लावणी छंद

३३. बींजो खाटू रो चंदू चरण उम्हाई,
मा. बिद फागण बिद क्रमशः दीक्षा पाई।
लीलाधर शाकरजी किलाण कस्तूरो,
गोविंद मंदमति कियो चरण चकचूरो।
इत्यादिक टाळोकर सिवाय गणसेवी,
मुनिवर-सतियां पाई गण-संपत दैवी।
तुलसी विरचित सोलहवीं ढाळ सुप्यारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

कलश

३४. गुरु-जनन[1] जागृति[2] समन संयम[3] त्रि-गुरु-चरण-उपासना[4],
सिर डाल शासन-पाल-आसन री ग्रही अनुशासना[5]।
परिपार्श्व विहरण विमल विवरण तरण-तारण रो कही[6],
षट दस सुढाले दिल खुशाले पूर्ण प्रथमोल्लास ही।।

शिखरिणी-वृत्तम्

अलं पारेकीर्त्याः कलयितुमहो यस्य सुगुरो-
र्गुरूद्योगैरासन्न च भुवि बुधा नैव विबुधाः।
परं तच्छिष्यत्वादहमहह चेत्स्यामिति धिया,
प्रपन्नेऽस्मिन् कार्ये कथमिव न लप्स्ये सफलताम्।।

पूज्य गुरुदेव की कीर्ति का पार पाना न विद्वानों के लिए संभव है और न देवों के लिए। पर संभवतः उनके शिष्यत्व का गौरव मुझे उनके यशस्वी जीवन के अवगाहन में सक्षम बना दे।

उपसंहृतिः

आचार्य-तुलसी-विरचिते श्री-श्री-कालूयशोविलासे

१. श्रीकालूस्वामिनः पुण्यातिपुण्यसमये जन्मधारण...
२. बाल्यवयसि भववैरस्यौदासीन्यदर्शन...
३. श्रीभैक्षवगण-पंचमाचार्यमघव-पूज्यसमीपे संयमश्रीस्वीकरण...
४. श्रीमघव-माणिक्य-डालचंद-गणेन्द्रैः सह शिष्यत्वेन वहुवर्षपर्यन्तविहरण...
५. रस-रस-निधि-चन्द्राब्दे भाद्रपदशुक्लपूर्णिमायां श्रीडालिमपूज्यपदाधिकारित्वस्वायत्तीकरण...
६. चतुर्वर्षपर्यन्तमाचार्यपदे निजनिमलचरणयुगलन्यासेन महीतलपावनीकरण-समुदित-दीक्षा- विवरणरूपाभिः षड्भिः कलाभिः समर्थितः षोडशगीतिकाभिः संदृब्धः समाप्तोऽयं प्रथमोल्लासः।

द्वितीय उल्लास

द्रुतविलम्बित-वृत्तम्

१. मुदितमित्थमहो मम मानसं,
फलितमंशमवेक्ष्य मनीषिणम्।
असुहितेन तु तेन प्रधावितं,
पुनरहो मनसः स्थितिरीदृशी।।

प्रथम उल्लास के रूप में अपने अभिलषित कार्य का एक अंश फलित देखकर मेरा मन प्रमुदित हो रहा है। पर लाभ लोभ को उभारता है, यह मन की स्वाभाविक स्थिति है। इसलिए वह अतृप्त भाव से पुनः आगे दौड़ रहा है।

२. तमथ मानसवेगमनाविलं,
समवरोद्धुमदःकृतयेऽप्रभुः।
पुनरिति प्रयतः प्रकृते कृते,
ह्यनुभवानि यतः कृतकृत्यताम्।।

इस कृति के लिए मैं अपने मन के पवित्र वेग को रोकने में असमर्थ हूं। अतः प्रस्तुत कार्य में पुनः प्रवृत्त होकर मैं कृतार्थता का अनुभव करता हूं।

मंगल वचन

दोहा

१. त्रिभुवन-धव अभिनव-विभव, अनुभव-भव-आराम।
वासव-सेवित संभरूं, त्रिशला-संभव स्वाम।।

जो तीन लोक का स्वामी है, अभिनव-वैभव है—त्रिरत्न का धारक है, जिसका आराम अनुभव से उत्पन्न है, जो इंद्र द्वारा सेवित है, उस त्रिशला-सुत महावीर स्वामी का मैं स्मरण करता हूं।

२. अनाबाध आस्वाद युत, सरलसाद-संवाद।
हृदयाह्लाद विषादहर, वीर-वाद स्याद्वाद।।

महावीर द्वारा प्रतिपादित वाद स्याद्वाद है। वह दोषरहित है, इसलिए अनाबाध है—परवादियों द्वारा उसमें बाधा उत्पन्न करना अशक्य है। वह आग्रह से मुक्त है, इसलिए सबको आस्वाद देने वाला है। जिसमें सरल शब्दों से युक्त संवाद है। जो आग्रह से मुक्त विचारकों के हृदय को आह्लाद देने वाला है और आग्रह से उत्पन्न विषाद (तनाव) का हरण करने वाला है।

३. स्वंगी सतभंगी सुखद, सत-मत-संगी हेत।
व्यंगी एकांगी कृते, झंगी-सो दुख देत।।

अस्ति, नास्ति आदि जिसके सात भंग (विकल्प) हैं, वह सप्तभंगी यथार्थवाद के पक्षधर लोगों के लिए सुखद है, समस्या को सुलझाने वाली है। सुखद इसलिए है कि सापेक्षता, सहअस्तित्व आदि उसके अंग बहुत सुंदर हैं।

एकांत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति उसके अंगों में सौंदर्य देख नहीं पाते। उनके लिए वह घोर अटवी की तरह दुःखद है, उलझन में डालनेवाली है।

४. इतर दर्शणी कर्षणी, नय-वणिज्य-अनभिज्ञ।
विज्ञ वणिग जिनदर्शणी, नय-दुर्णय-विपणिज्ञ।।

एकांतवादी दार्शनिक की तुलना किसान से की जा सकती है। नय-सापेक्ष दृष्टि वाले दार्शनिकों की तुलना चतुर व्यापारी से की जा सकती है।

एकांतवादी दार्शनिक सत्य को अपने मत की ओर खींचने का प्रयत्न करता है। नयज्ञ दार्शनिक नय और दुर्नय का भेद समझता है, इसलिए वह सत्य को अपने विचार की ओर खींचना नहीं चाहता, किन्तु यथार्थ और अयथार्थ का विवेचन कर सत्य को जनता के सामने प्रस्तुत करता है।

जैसे कुशल वणिक विक्रेय वस्तु के प्रति आग्रह नहीं रखता। वह उत्कृष्ट और साधारण माल का पृथक्करण कर उसका मूल्यांकन करता है। जो उत्कृष्ट और जनता के लिए उपयोगी होता है, उसे जनता तक पहुंचाता है।

५. वस्तु-अंश-ग्राही विशद, अंशेतर-सापेक्ष।
नय-नयज्ञ निर्दिष्ट है, नयाभास निरपेक्ष।।

वस्तु के अनन्त अंश—धर्म होते हैं। उनमें से एक अंश का ग्रहण करने वाला नय है। वह वस्तु के शेष अंश-सापेक्ष होता है—उसका विरोध, प्रतिकार या निरसन नहीं करता, नयज्ञ मनीषियों ने ऐसा बतलाया है।

जो दृष्टिकोण एक अंश का ग्रहण करे और शेष अंशों का निरसन करे, उसका नाम नयाभास है।

६. भव्य रूप भावित त्रयी, प्रमा-प्रमातृ-प्रमेय।
अनेकांत मत कांन्त मम, हृदि नितान्त आधेय।।

अनेकान्त के द्वारा प्रमाण, प्रमाता और प्रमेय की समीचीन व्यवस्था होती है, इसलिए अनेकांत का मत मेरे लिए कमनीय है, हृदय में नितांत रूप से आधेय—धारण करने योग्य है।

७. स्मृति-गोचर सौ वर करी, गुरु-गरिमा-आभास।
कालूयशोविलास रो, अब दूजो उल्लास।।

पूज्य गुरुदेव श्री कालूगणी की गुरुता के आलोक को सौ बार स्मृति का विषय बनाता हूं और कालूयशोविलास के दूसरे उल्लास का प्रारंभ करता हूं।

ढाळः १.

दोहा

१. जाहिर जर्मन देश रो, जेकोबी मतिमान।
दर्शन अरु इतिहास रो, ख्यातिप्राप्त विद्वान।।
२. अष्टादश भाषा-विबुध, वक्ता पठिता प्राज्ञ।
विविध-विषय सिद्धांत रो, जिज्ञासू सद्भाग्य।।
३. वयोवृद्ध चिंतन-तरुण, कर्मठ सक्रिय स्फूर्त।
लक्ष्य-समर्पित दृढ़मना, जीवन-जागृति मूर्त।।
४. दशवैकालिक उत्तरज्झयणं आचारंग।
इंग्लिश-अनुवादक प्रथम, निरुपचरित निस्संग।।
५. भारतीय धर्म-स्थिति-संस्थिति-अनुसंधान।
है सलक्ष्य पुनरागमन, संप्रति हिंदुस्तान[1]।।
६. श्रावकगण जोधाण में, जा साध्यो सम्पर्क।
तेरापंथ सुपंथ रो, व्यतिकर सुण्यो अनर्घ।।

[2]आवै अब आवै, हर्मन जेकोबी जर्मन देश रो।
सुण हृदय लुभावै, वरणन श्री तेरापंथ-पथेश रो।।

७. चिन्तै चतुर चकोर गोरवपु, सुणी अलौकिक वाणी।
तेरापंथ-संघ री सुषमा, कालू-पूज्य कहाणी रे।।
८. जैन तीर्थ आगम जैनां रा, संघ निहार्‌या शिष्ट।
पण ओ अबलों रह्यो अछूतो, अश्रुतपूर्व अदृष्ट रे।।
९. परोक्ष तात्कालिक परिचय भी, सुणतां लागै श्रव्य।
नगर लाडणूं अगर निकट हो, तो अवश्य गन्तव्य रे।।
१०. आ अलभ्य एकत्व-त्रिवेणी[3], संप्रति सहज्यां देखूं।
संभव म्हांरी भारत यात्रा, सफल सफलतम लेखूं रे।।
११. श्रमप्रधान जो श्रमण-संस्कृती सुणी वीर-बरतारै।
आज मिलै झांकण आंख्यां नै, मन उत्सुकता म्हांरै रे।।

---

१. देखें प. १ सं. ४६
२. लय : म्हारी रस सेलड़ियां
३. एक आचार्य, एक समाचारी और एक प्ररूपण-पद्धति, यह तेरापंथ संघ की त्रिवेणी अन्यत्र नहीं मिलती।

१२. समय अल्प पिण हित अनल्प लखि, निज संकल्प सुणावै।
सुकृततल्प जिनकल्प पूज्य रा, दरसण सुकृती पावै रे।।
१३. पायो जब आभास विरोधी, वृथाऽऽयास प्रारम्भ्यो।
साहिब पास पाश फैलावै, ज्यूं नहिं जाय विलम्ब्यो रे।।

जेकोबी साहिब!
क्यूंकर तुम जास्यो निर्जल देश में।

१४. सुणी मरुस्थल थल री यात्रा करणी मन में ठाणी।
अति आतप अंधड़ असभ्य जन, निर्जल मुल्क निशाणी रे।।
१५. सरदी-मौसम लक्कड़दाहो, घाम तपै ज्यूं भट्टी।
बरसाले बिरखा रा सांसा, उड़ै मौसमी मट्टी रे।।
१६. मिलै न खाद्य पदार्थ-सार्थ, जिण देशे साहिब! स्वादू।
बाजर-रोट सोट-सम नहिं कोइ फल रस रो आस्वादू रे।।
१७. दाड़िम दाख अनार मौसमी, आलू आम जमेरी।
नींबू बिस्कुट डबलरोट नहिं मिलै दूध री डेरी रे।।
१८. तेरापंथ-पंथ जिण देशे, दान-दया जड़ कापै।
चूहै-बिल्ली रै प्रपंच में, पाप-मान्यता थापै रे।।
१९. प्रतिमा रा अप्रतिम विरोधी, नोंधी श्रद्धा न्यारी।
अविरोधी जिण-वयण-रयण सम भूल्या उतपथचारी रे।।
२०. नहिं विभीषिका स्यूं घबरायो, बोल्यो सिक्त सुधा स्यूं।
कुछ भी हो संकल्प कियो, तब एक बार तो जास्यूं रे।।
२१. सचमुच प्रतिवच साहिब रो सुण, सारा हुया निराश।
बारह महिनां कात्यो-पीन्यो, मानो हुयो कपास रे[1]।।
२२. शहर लाडणूं शुभ बसंत में, सद्गुरु दर्शन पायो।
संघ-हितेच्छू श्रावक इणमें, उचित प्रयास उठायो रे।।
२३. प्रमुदितमना प्रथम दर्शन में, सोचै खड़्यो समक्ष।
मरुभूमी में फलै कल्पतरु, देख्यो मैं प्रत्यक्ष रे।।
२४. शांत स्वभाव ओज आकृति में, भाल विभामय दीप्त।
सहज साधुता शब्द-शब्द में, झलकै अजब अलिप्त रे।।

---

१. देखें प. १ सं. ४७

२५. समय-समय साझी उपासना, जिज्ञासा पुरजोर।
सुगुरु-देशना में सुधैषणा, 'हर्मन' हर्षविभोर रे।।
२६. दिनचर्या निशिचर्या मुनिचर्या री की प्रतिपृच्छा।
वर्या भैक्षवगण-मर्यादा, अवगत करी यदृच्छा रे।।
२७. शयनासन भोजन की विधियां, गोचराग्र गति सार।
नवदीक्षित शिक्षा की पद्धति, पूछ करी निरधार रे।।
२८. देखी हस्तकलात्मक कृतियां, सूक्ष्माक्षर लिपिकार।
लेखण लेखणघर सामग्री, वर प्राचीन प्रकार रे।।
२९. संस्कृत यत्किंचित प्राकृत में वरत्यो वार्तालाप।
श्रावक-जन आतिथ्य-सुघड़ता, रंजित हृदय अमाप रे।।
३०. आचारंग अंग अंतर्गत 'मच्छं मंसं' पाठ[1]।
तिणरो अर्थ यथार्थ सुणायो, श्री शासन-सम्राट रे।।
३१. पंचम अज्झयणे दसकालिय रै पहलै उद्देश।
'बहुअट्ठिय पुग्गल'[2] गाथा रो समझायो संदेश रे।।
३२. श्री पन्नवणा सूत्र प्रथम पद रो सुन्दर संदर्भ।
'एगट्ठिय बहुबीयेत्यादिक'[3], आगमवाणी गर्भ रे।।
३३. मिनटां भर गुरु-कर पकड़्यां, जेकोबी पाठ निहारै।
बण गंभीर धीर धीमै-सी, साहिब वचन उचारै रे।।
३४. इंग्लिश भाषा में मैं कीन्हो, अनुदित आचारंग।
तिणमें चिंतनीय है 'मच्छं मंसं' पाठ प्रसंग रे।।
३५. अद्यावधि न मिल्यो एतादृश अर्थ-सूचनाकार।
श्री आचार्यदेव रो म्हांरै ऊपर ओ आभार रे।।
३६. 'अमज्जमंसासी'[4] इत्यादिक श्रमण विशेषण सार।
विशद-वेश गुरु-मुख-वागरणा, साहिब सुणी सुप्यार रे।।
३७. 'चेइय' शब्दे जिन मुनि वृक्ष यक्ष उद्यान समावै।
ओतू-ऊन्दर रो अति कौतुक, साहिब हृदय न मावै रे।।
३८. बण्यो प्रबल उपहास-विषय, जो पहिलां सुण्यो विरोध।
कुसंस्कार जनता री जड़ता, सन्त सहै सामोद रे।।

---

१. आयारचूला, अ. १, उ. १० सू. १३४
२. दसवेआलिय ५।१।७३
३. पन्नवणा पद१।३४
४. दसवेआलिय चूलिआ २।७

३९. दम्पति-दीक्षा[1] सहज दीपती, 'हार्मन' नयन निभालै।
दुर्लभ अवसर भर जीवन में, जेकोबी दिल हालै रे।।
४०. रीति नीति संघीय वृत्तियुत, वातावरण विशाल।
महावीरकालीन निहाली, तेरापथ री चाल रे।।
४१. सभा-समक्षे सकल सुलक्षे, दक्ष स्व मुख स्यूं बोलै[2]।
अद्‌भुत है विरतंत अठै रो, देख्यां हिवड़ो डोलै रे।।
४२. सदा सर्वथा रही अपरिचित, तेरापथ री राह।
नहिं तो कम-स्यूं-कम गुरुवर पे, रहतो दो सप्ताह रे।।
४३. तीन दिवस में पिण जो मन में, तत्त्व-सत्त्व अवतार्‌यो।
श्री कालू-उपकार कभी जीवन में जाय विसार्‌यो रे?
४४. यूं गुण-गाहन करतो वाहन चढ़ियो हार्मनवासी।
दुतियोल्लासे यशोविलासे पहली ढाळ प्रकाशी रे।।

छप्पय छंद

४५. जूनागढ़ में जाय मुदित हर्मन जेकोबी,
साजन सभा सझाय कियो भाषण जेकोबी।
अबकै हिंदुस्तान ठान दिल दूजै आयो,
तीन वस्तु रो सरस दरस मैं नूतन पायो।
सुध साधु वीर बरतार रा दम्पति दीक्षा साथ में,
'मच्छं मंसं' पाठ रो अर्थ यथार्थ वदात में।।

ढाळः २.

दोहा

१. अकस्मात ही जोधपुर, राज्यसभा में एक।
नाबालिग-दीक्षा-विषय, उदित हुयो उल्लेख।।
२. राजगजट मांही प्रगट, करी सूचना चून।
शिशु-संयम प्रतिबन्ध-हित, होसी यूं कानून।।
३. नाबालिग नै जो अबै, देसी दीक्षा-भार।
पांच बरस री हो सजा, रुप्यक एक हजार।।

---

१. मुनि हुलासमलजी-साध्वी मालूजी
२. *देखें प. १ सं. ४८*

४. इत्यादिक उण गजट में, दफा लगाई खूब।
सफा-सफा कानून में, कोइ न राखी कूब।।
५. तीन मास टाइम दियो, जन-मत जाणण हेत।
पिण कानून विपक्ष में, नहिं करणो संकेत।।
६. सन चवदह उन्नीस सौ, मास मार्च इक्कीस।
राजपत्र जोधाण रो, मुद्रित वार शनीश।।
७. सोचै अब अवलोक कर, तेरापंथ समाज।
जैन-अहितकारी हुसी, निर्णय ओ निर्व्याज।।

[1]सुणो श्रावक सारा,
शिशु-संयम रोक सबल रे, मरुधर-नृप[2] द्वारा।
आयो प्रस्ताव प्रबल रे, सुणो श्रावक सारा।।

८. सोचै मिल अधिकारी श्रावक, व्रत-वय-वित्त-विवेक-प्रभावक।
दृश्य बण्यो ओ हृदयद्रावक, करणो अब उपक्रम-बल रे।।
९. शैशव-वय संयम रुक ज्यासी? तरुण स्थविर ही दीक्षा पासी?
कुण होसी आगम-अभ्यासी? धुर ओ ही चिंता-स्थल रे।।
१०. बिन गुरु-गम आगम रो भणणो, श्रीजिन-आणा रो अवगणणो।
तरुण स्थविर हो बहुश्रुत बणणो, गणणो ग्रह-गण-मंडल रे।।
११. जो अयोग्य नै दीक्षा देवै, तिणमें किण री सहमति रेवै?
(पर) योग्यायोग्य एक कर देवै, आ बणसी किंया मिशल रे?
१२. तिण स्यूं मिल जाणो जोधाणे, करणो अति उद्यम इण टाणे।
प्रभुवर कालू पुण्य प्रमाणे, सब होसी काम सफल रे।।
१३. कर विचारणा शीघ्र सिधाया, गण-हित-वंछक श्रावक[3] धाया।
कार्य करण-हित अधिक उम्हाया, आया जोधाण संभल रे।।
१४. न्यायाधीश मुख्य तिण ठामे, गोरांग 'बार-साहिब[4]' इण नामे।
मुलाकात सब तिणरी पामे, तब आखै बात असल रे।।
१५. नाबालिग दीक्षा रै काजे, नूतन नियम हुसी इण राजे।
तिण स्यूं तेरापंथ समाजे, है अद्‌भुत-सी हलचल रे।।

---

१. लय : तू तो पल-पल राम समर रे
२. महाराजा उम्मेदसिंहजी, जोधपुर
३. श्रीचंदजी गधैया (सरदारशहर,) रूपचंदजी सेठिया (सुजानगढ़), केशरीचंदजी कोठारी (चूरू), गणेशमलजी चंडालिया (लाडनूं), रावतमलजी सेठिया (सरदारशहर) आदि।
४. ए. डी. सी. बार (चीफ जज, मारवाड़ स्टेट)

१६. चोर असज्जन जो दण्डीजे, सज्जन साथे क्यूं भंडीजे।
खळ अरु गुड़ इकसार न कीजे, कुछ दीजे ध्यान विमल रे।।
१७. यूं कह तेरापंथ-प्रणाली, बलि दीक्षा-शिक्षा नियमाली।
कठिन परीक्षण-पद्धति आली, बतलाई बात सकल रे।।
१८. व्यथित 'बार साहिब' सुण बाणी, ओ अनुशासन आ कुर्बाणी।
आ पद्धति मैं कदे न जाणी, तेरापथ-नीति निमल रे।।
१९. चिंता री कोई बात नहीं है, मध्य दिहाड़े रात नहीं है।
पथ बहतां कोई घात नहीं है, निश्चिंत रहो निश्चल रे।।
२०. यूं आश्वासन और दिलासा, दी सारां नै ही ज्यूं आशा।
'राजगजट' में खबर खुलासा, पढ़ मिल्यो प्रबल संबल रे[1]।।
२१. स्थगित हुयो प्रस्ताव हि सारो, शिशुदीक्षा रो रोकणहारो।
कालू पूज्य प्रभाव निहारो, उन्मीलित नयन-युगल रे।।
२२. इलाबाद री कौंसिल धारा, करण हेतु नाबालिग धारा।
जब लों न हुवै प्रथित प्रचारा, तब लों ओ लेख सरल रे।।
२३. देखो तेरापंथ-प्रभावे, नाबालिग दीक्षा ले पावे।
कुण यूं बणतो नियम रुकावे, प्रसरी है यश-परिमल रे।।
२४. दूजी ढाळ सरस रसभीनी, प्रभुवर प्रौढ प्रतापे पीनी।
सज्जन-रंजन रागिनि झीनी, श्री कालू अकथ अकल रे।।

ढाळः ३.

दोहा

१. चंदेरी स्यूं ली विदा, सीधा छापर ताल।
जन्मभूमि पावन करै, कालू पूज्य कृपाल।।
२. मासकल्प अवकाश पा, संस्कृत-विद्याभ्यास।
पुनरपि अब चालू कियो, लै व्याकरण-विकास[2]।।
३. वरण बिना वाणी यथा, बिना आभरण अंग।
नग सुवरण व्याकरण बिन, विद्या है बिदरंग।।
४. निरवद्या विद्या बिना, वरै न बुद्धि विकास।
हृद्या हृदय-विमर्शणा, करै सुगुरु सव्यास।।

---

१. सन १९१४ एक अगस्त जोधपुर राजपत्र शनिवार जिल्द ४८, नं. ४५
२. इससे पहले वि. सं. १९४६ लाडनूं में मघवागणी ने कालूगणी को सारस्वत व्याकरण सिखलानी शुरू की थी।

५. श्री कालू हृदय-स्थले, मघवा मुनिपति उप्त।
बीज विशद व्याकरण रो, रह्यो सुरक्षित गुप्त।।
६. साठै जल-सिंचन मिल्यो, बण्यो बीज अंकूर।
वृक्ष-रूप लहसी प्रवर, अब बो समय अदूर।।
७. आचार्या द्वारा इसो, घो. चि. पू. लि. आयास।
अश्रुतपूर्व अपूर्व है, गुरु-गरिमा आभास।।

[1]गुरु-चरणां म्हांरो जी रम्यो रे,
खिण ही विरह न जाय खम्यो रे।
श्री कालू गणसिणगार हो राज।।

८. साल इकोत्तर रो सही रे, चातुरगढ़ चउमास हो राज!
मुनि चउविंशति साहुणी रे, बंयालीस सुभास हो राज!
९. दीक्षोत्सव आसोज में रे, आया आग्रह झाल।
श्रावकगण मेवाड़ रा रे, प्रांजलि विनय विशाल।।
१०. पतितोद्धार! पधारिए रे, संग सबल लहि थाट।
मेदपाट री मेदिनी रे, जोवै खड़ि-खड़ि बाट।।
११. सघन शिलोच्चय ब्याज स्यूं रे, ऊंचा कर-कर हाथ।
चंचल दल शिखरी मिषे रे, दै झाला जगनाथ।।
१२. नयणां विरह तुमारड़े रे, झरै निझरणां खास।
भ्रमराराव-भ्रमे करी रे, लै लाम्बा निश्वास।।
१३. कोकिल-कूजित ब्याज स्यूं रे, राज! उड़ावै काग।
अरघट खट-खटका करी रे, खटक दिखावै जाग।।
१४. अबला अचला जन्म स्यूं रे, पूज्य वियोग विशेष।
ऊबड़-खाबड़ता लही रे, कृशता रो संक्लेश।।
१५. मुनिपति! अब तो मानिए रे, आ मोटी मनुहार।
महि-माता री जो खरी रे, लाचारी अवधार।।
१६. भक्तिभाव अद्भुत लखी रे, दीन्हो गुरुवर ध्यान।
हुवै आंतरिक भक्ति स्यूं रे, वशवर्ती भगवान।।

---

१. लय : हेम ऋषी भजिए सदा रे

१७. मेदपाट पधराण री रे, आज्ञा दी गुरुदेव।
जननी छोगां वीनवै रे, निकट खड़ी स्वयमेव।।
१८. अब हूं किण दिन देखस्यूं रे, मनहर मुनिप दिदार?
ययण-रयण श्री वदन रा रे, सुणस्यूं अब किण बार?
१९. कद पाछी पास्यूं बलि रे, पद-पंकज री सेव।
म्हांरी वय आ आखरी रे, थांरी यात्रा देव!
२०. दै मधुरी आश्वासना रे, श्री मुख शासनराव।
पाछा दरसण वेग स्यूं रे, देवण रा मुझ भाव।।
२१. यूं माजी राजी करी रे, भेज्या पुर बीदाण।
तिण दिन स्यूं माजी रह्या रे, बीदासर थिर ठाण[1]।।
२२. पो. बिद एकम पाधरा रे, मेदपाट री बाट।
समवसर्‌या जन उद्धर्‌या रे, शासण रा सम्राट।।
२३. खाटू-डेगाणा हुई रे, सित नवमी तिण मास।
ब्यावर पूज्य पधारिया रे, पुरजन पुण्य-प्रकाश।।
२४. दूजे उल्लासे सही रे, कही तीसरी ढाळ।
अब देशाटन रो भवी रे, वर्णन सुणो विशाल।।

ढाळः ४.

दोहा

१. मारवाड़ जोधाण रो, नाबालिग प्रस्ताव।
यू. पी. में पुनरपि लह्यो, परतख प्रादुर्भाव।।
२. परिचित तिण ही प्रांत रा, कौंसिल मेंबर धीर।
नगर मुजफ्फरवासिया, लाला सिंह सुखवीर।।
३. पेश कियो प्रस्ताव यूं, पा संन्यासी-साख।
भारत में इत-उत भमै, भिक्षुक चउपन लाख।।
४. नहीं स्वपर कल्याणकर, नहीं धर्म-अभ्यास।
तिण कारण करणो उचित, इण संख्या में ह्रास।।
५. नाबालिग संन्यास री, करणी सख्त मनाह।
साबालिग खातिर लहे, मजिस्ट्रेट री राह।।

---

१. वि. सं. १९७१, पोष कृष्णा १२

६. सब मजहब पर एक-सो, एक मात्र कानून।
लागू करणो ज्यूं हुवै, भिक्षुक-संख्या न्यून।।
७. विशदवेश धारा-सभा, इलाबाद विख्यात।
पेश हुयो प्रस्ताव ओ, बहु जन सम्मति साथ।।
८. आठ सदस्य रहस्यविद, चारु रूप सहु चून।
बणी कमेटी है सुघड़, घड़ै सघन कानून।।
९. सभापती सुखबीरजी, नेहरू-मोतीलाल।
मालवीयजी आदि यूं मेम्बर आठ निहाल।।

१०. [1]हां रे जब निसुणी-निसुणी तेरापंथ समाज जो,
यू. पी. कौंसिल घड़सी अभिनव कायदो रे लोय।
हां रे इक नई कमेटी बैठी इण ही काज जो,
कुण जाणै कुण सोच्यो होसी फायदो रे लोय।।
११. हां रे गुरु कालू परम कृपालू पूज्य प्रभाव जो,
रोक्यो जा जोधाणै जिण प्रस्ताव नै रे लोय।
हां रे अब यू. पी. प्रान्ते पायो पुनरुद्भाव जो,
मोटो पातक घातक धर्म-प्रभाव नै रे लोय।।
१२. हां रे हो दुर्जन दंडित सज्जन जीवन सेफ जो,
राजधर्म ओ नीतिशास्त्र-निर्देश में रे लोय।
हां रे शुभ धार्मिक कृति में करणो हस्तक्षेप जो,
ओ अन्याय नहीं जाग्रत जनता खमै रे लोय।।
१३. हां रे यदि धर्म नाम स्यूं पापाचार प्रसार जो,
सचमुच प्रलयंकारी भारी भ्रष्टता रे लोय।
हां रे हो तिणरो कड़ै रूप में जदि उपचार जो,
कुण तिण में अवरोध करै कर धृष्टता रे लोय।।
१४. हां रे अन्याय मिटावण न्यायी रोंध्यो जाय जो,
'जळै गोहिरै रै पातक स्यूं पीपळी' रे लोय[2]।
हां रे ओ मोठां साथै घुण पीसण रो न्याय जो,
करणो है प्रतिकार उचित पथ पर चली रे लोय।।

---

१. लय : हां रे हुं तो इचरज पामी स्वामी वचने
२. देखें प. १ सं ४६

१५. हां रे अब उद्यम-निगमे बहणो अपणो कार्य जो,
कार्य-रूप निर्वहणो गुरु-करुणा करै रे लोय।
हां रे है करणो संघ-चतुष्टय नै अनिवार्य जो,
ज्यूं निरबाध धर्मपथ जनता संचरै रे लोय।।
१६. हां रे तब प्रमुख-प्रमुख मिल शासनसेवी लोक जो[1],
श्री कालू चरणाम्बुज भेटी संचर्‌या रे लोय।
हां रे जा इलाहबाद अविवाद समय अवलोक जो,
धारासभा सभासद भाव समुद्धर्‌या रे लोय।।
१७. हां रे जब जाणी सब री वाणी एक समान जो,
लालाजी अगवाणी है इण काम में रे लोय।
हां रे तिण साथे मिलणो परमावश्यक मान जो,
पहुंच्या सारा लालाजी रै धाम में रे लोय।।
१८. हां रे जिनधर्म-मर्म परिचय करवायो खास जो,
तेरापंथ संघ री विदित विशेषता रे लोय।
हां रे श्रीकालू-गुरु रो अश्रुतपूर्व प्रकाश जो,
शासन-शैली अद्‌भुत नीति-निवेशता रे लोय।।
१९. हां रे बलि दीक्षा विषय परीक्षा रो परिमाण जो,
लिखिताज्ञा प्राणाधिक संयम में रती रे लोय।
हां रे जँह कठिन राखणी इक गुरुवर री काण जो,
सारी ही समझाई शासन-पद्धती रे लोय।।
२०. हां रे अंहि नाबालिग दीक्षा रो है बिल पेश जो,
तिण स्यूं म्हांरै धार्मिक नियमां में क्षती रे लोय।
हां रे ओ थोहर गौ-वर दूध हुयो इक वेश जो,
लूण-कपूर हंस-बक री इक-सी गती रे लोय।।
२१. हां रे सुण होळै बोलै लाला सिंह सुखवीर जो,
इसै धर्म-धार्मिक पर नहिं लागू दफा रे लोय।
हां रे जो अड़ता सेती टलतो हृदय सधीर जो,
कुण गुणज्ञ जण होवै तिण साथै खफा रे लोय।।
२२. हां रे म्है आज लगे नहिं इस्या निहार्‌या संत जो,
आत्मसाधना में समय-व्यय जो करै रे लोय।

---

१. देखें प. १ सं. ५०

हां रे किण ठामे मिलसी तेरापंथ-भदंत जो,
नयन निहारूं तो म्हांरा तन मन ठरै रे लोय।।

२३. हां रे तब आया ब्यावर नग्र व्यग्र-दिल चाल जो,
निरख्यो है सुविशाल भाल श्री पूज रो रे लोय।
हां रे चिहुं तीरथ रो एकत्व सत्त्व समकाल जो,
पावै प्रमुद निभाल चंद मनु दूज रो रे लोय।।

२४. हां रे गुरु-अंगे झळकै ब्रह्मचर्य रो तेज जो,
पळपळाट कर पळकै वदन-विधु-द्युती रे लोय।
हां रे वर चरण-रयण री चळकै चमक सहेज जो,
भळकै भळ जुग-नयण-विभा ज्यूं विद्युती रे लोय।।

२५. हां रे आ वदन-गगन उमटाणी आणी जोर जो,
बरसै वचन-अमिय-धाराधर-धोरणी रे लोय।
हां रे बिच उपनय हेतू शीतल पवन झकोर जो,
चातुर-नर-चित-चातक-पातक-चोरणी रे लोय।।

२६. हां रे करि लोचन-गोचर सकल अलौकिक बात जो,
लालाजी मन राजी कहतां नहिं बणै रे लोय।
हां रे बलि दम्पति-दीक्षा[1] सहज सुखद साक्षात जो,
निज नयणां स्यूं निरखी अतिभावुकपणै रे लोय।।

२७. हां रे समझायो गुरुवर स्वल्प-स्वर संकेत जो,
तिण रो झांक्यो असर अनश्वर वेश में रे लोय।
हां रे पद-पंकज प्रणमी पहुंच्या नैज निकेत जो,
लालाजी हित साझी गुरु उपदेश में रे लोय।।

[2]प्रबल पुण्य-पोरसो रे,
ओ तो छोगां-कूख-उजार, प्रबल पुण्य-पोरसो रे।
ओ तो कालू गण-सिणगार, प्रबल पुण्य-पोरसो रे,
ओ तो जैन-जगत-आधार, प्रबल पुण्य-पोरसो रे।।

२८. तेरापंथी टाळ नै रे, नाबालिग-प्रस्ताव-
करणो, यूं निश्चित हुयो रे, लालाजी रो भाव।।

---

१. मुनि शिवराजजी और साध्वी हुलासांजी की दीक्षा
२. लय : कीड़ी चाली सासरै रे

२९. समर मच्यो यूरोप में रे, तिण स्यूं बो प्रस्ताव।
बरसां तक झिलतो रह्यो रे, हुयो न को निपटाव।।
३०. लाला सिंह सुखवीरजी रे, दिल्ली कौंसिल मध्य।
नव निर्वाचन में बण्या रे, सद्य सफल पार्षद्य।।
३१. अब यू. पी. नै छोड़ के रे, नाबालिग-प्रस्ताव।
दिल्ली कौंसिल में ठव्यो रे, पूरववत दृढभाव।।
३२. उगणीसै गुणियासियै रे, विक्रम संवत भाल।
श्रावक तेरापंथ रा रे, खबर लही तत्काल।।
३३. प्रोत्साही श्रीचंदजी रे, गधैया गणभक्त।
छोगमल्लजी चोपड़ा रे, शासण में अनुरक्त।।
३४. रावतमलजी सेठिया[1] रे, गोठीजी[2] व्रत-पीण।
कोठारी शशि-केशरी[3] रे, वाचो-युक्ति-प्रवीण।।
३५. भारी हार्दिक भाव स्यूं रे, कीन्हो पूर्ण प्रयास।
ठेट लाट साहिब निकट रे, मिल कीन्हो संभाष।।
३६. आखिर दिल्ली कौंसिले रे, हुयो नहीं बिल पास।
हुवै समस्यावां घणी रे, राजनीति में खास।।
३७. तीरथ च्यार सुप्यार स्यूं रे, राखै नित इक ध्यान।
ज्यूं त्यूं धार्मिक संघ में रे, हुवै न विघ्न-वितान।।
३८. [4]हां रे तब ब्यावर पुर स्यूं विहरत गुणमणिधाम जो,
दौलतगढ़ आसींद पूज्य पगल्या धर्‌या रे लोय।
हां रे गुरु अल्प समय ही लीन्हो शुभ विश्राम जो।
पुरजन परिजन सारां रा हिवड़ा ठर्‌या रे लोय।।
३९. हां रे अब फरसत बिच-बिच छोटा-मोटा ग्राम जो,
स्वाम पधार्‌या गंगापुर गौरव घणै रे लोय।
हां रे मर्यादा-मोच्छब रो है ठाट-हगाम जो,
इक शत छप्पन संत सती प्रमुदितपणै रे लोय।।
४०. हां रे है समुदित श्रावक-गण दस सहस प्रमाण जो,
जाण सुजाण-शिरोमणि गणि-चरणां झुकै रे लोय।

---

१. सरदारशहर-निवासी
२. वृद्धिचन्दजी गोठी (सरदारशहर)
३. केशरीचन्दजी कोठारी (चूरू)
४. लय : हां रे हुं तो इचरज

हां रे कहि चौथी ढाळ सुगुरुवर कीरति बखाण जो-
करतां म्हांरै कर री लेखण नहीं रुकै रे लोय।।

ढाळः ५.

दोहा

१. मासकल्प वर कल्पतरु, गंगापुर गणमोड़-
रही, पंथ पहुने बही, पहुंच्या गढ़ चित्तौड़।।
२. कांटा रो साहिब[1] जठै, आंटो हो अनपार।
लोक विरोधी भ्रांतचित, बहकायो बहु बार।।
३. आयो स्वामी रै निकट, विकट समस्या हेत।
प्रभुवर समझावै प्रगट, सार्व-समय-संकेत।।
४. तिण बिच इक मानव त्वरित, दानव रो मनु दास[2]।
साहिब पास उदास मुख, वदै वचन अविमास।।
५. गउ-बाड़े आगी जलै, तेरापंथी लोग।
खोलै या खोलै नहीं? ओ है प्रश्न अमोघ।।
६. बोलै अम्बालालजी[3] कावड़िया तिण ठाम।
लै उत्तर इण प्रश्न रो, मैं द्यूं तुरत निशाम।।
७. तूं थारै निज गेह में दियासलाई दाग।
देखी म्है आवां क नहिं सकल बुझावण आग।।
८. व्यर्थ वितण्डावाद में, साधू रो के काम।
हुयो निरुत्तर निम्नमुख, गयो अबोलो गाम।।

[4]गुरु-गरिमा भारी,

९. साहिब नै समझावियो रे, गणभूषण क्षण मांह।
रग-रग में जिणरै रुची रे, तेरापथ री राह रे।।
१०. बालिश-वच-विष व्यापियो रे, सारै अंग सजोर।
गुरुवच विष-भैषज्य स्यूं रे, सज्ज हुयो तिण ठोर रे।।

---

१. अफीम तोलने के कांटे का अफसर।
२. मंदिर का पुजारी, जिसे पांच सेर घी देने का प्रलोभन देकर भेजा गया।
३. उदयपुर-निवासी, ये दानवीर भामाशाह के इक्कीसवीं पीढ़ी के वंशज थे।
४. लय : साधु श्रावक व्रत पालनै रे

११. साहिब नै समझ्यो सुणी रे, तुरत विरोधी लोग।
मिलजुल आया जोश में रे, साझै पुनरुद्योग रे।।
१२. देखी नै इक पुस्तिका रे, गुरु पूछै तत्काल।
आ पुस्तक किण री रची रे? उत्तर दै बाचाल रे।।
१३. खंडन 'तेराद्वार'[1] रो रे, कीन्हो मम गुरुराज।
अक्षर-अक्षर मान्य है रे, इण पुस्तक रो राज! रे।।
१४. क्षण इक झांकी पुस्तिका रे, फरमावै गुरुदेव।
जीव नाम इण में लिख्या रे, दोय बीस स्वयमेव रे।।
१५. सिद्ध नहीं सिद्धांत स्यूं रे, प्रतिपख वदै सनेह।
साच हमारी पुस्तिका रे, नहिं इण में संदेह रे।।
१६. नव पदार्थ री जोड़ में रे, भीखणजी तेबीस।
नाम कह्या ते नहिं मिलै रे, देखो समय अधीश! रे।।

दुमिला छंद

१७. तब पूज्य करै फरमान अरे! अनजान तुं तान करे मत नां,
भगवान की आन महान गिणी, जिय ते धिक जान करी जतना।
अनुमान प्रमान विधान [illegible], जिन- पिछान रची रचना,
उगलै दिशि पच्छिम भान भलै, न मिलै क्षति भीखन के वचनां।।
१८. शिव-थांह कि राह विदाह करी, निज बांह लुकाह सुराह-मना,
इक नाह सिवाह अहा! वाह-वाह, करी परवाह न एक अना।
दिल में विसवाह अथाह हमें, हम पन्थ-पनाह यथाह भना,
उगलै दिशि पच्छिम भान भलै, न मिलै क्षति भीखन के वचनां।।

१९. [2]कही-सुणी मानै नहीं रे, ताणै अपनी रूढ़।
सानै-वानै जो लखै रे, क्यूं कहिवावै मूढ़ रे।।

२०. सूत्र भगवती भगवती रे, काढ़ी करुणानाथ।
जीव नाम री आमना रे, निसुणै सारो साथ रे।।
२१. एक-एक गिणती कर्‌यां रे, नाम हुया तेबीस[3]।
कठै छिपावै जा अबै रे, पृच्छकजी निज शीष रे।।

---

१. जैन सिद्धांत से संबंधित एक लघु संकलन।
२. लय : साधु श्रावक व्रत पालनै रे
३. भगवई श. २०।१७

२२. अवसर अवर अदेख नै रे, बोलै उन्मुख होय।
थांरी है आ भगवती रे, मैं नहिं मानूं कोय रे।।
२३. ल्यास्यूं म्हांरी भगवती रे, किल्ला मां स्यूं जाय।
किल्ला में तो जन कहै रे, शिल्ला भरी अथाय रे।।
२४. यूं कहि चाल्यो वेग स्यूं रे, बिन माने गुरु-वाच।
पाछो फिर आयो नहीं रे, जाण लियो जग साच रे।।
२५. पांच रात 'चित्तौड़' में रे, 'पुर' में आया पूज।
एक मास रै आसरै रे, स्थिति कीन्ही अणबूझ रे।।
२६. 'भीलवाड़ै' भल 'आरज्यै' रे, त्यूं 'पीतास' 'बागोर'।
'मोखुणदो' मारग गही रे, झण्ड 'रायपुर' जोर रे।।
२७. दूजे दिन व्याख्यान में रे, बलि प्रतिपक्षी लोग।
आया हिलमिल सामठा रे, चरचा रो उद्योग रे।।
२८. अळगी जाजम ढाळ नै रे, बैठा मन आनंद।
ढाळ पांचवीं में सुणो रे, चरचा रो संबंध।।

ढाळः ६.

दोहा

१. प्रमुख प्रश्न निज पंथ रो, मत-मन्दिर रो थंभ।
पूछै परिषदि गुरु निकट, दम्भ-भाव अवलंब।।
२. गायां रो बाड़ो जळै, वह्नि-ज्वाल प्रयोग।
कांई करणो? गुरु कहै, ओ कोइ पूछण जोग?
३. महानंद-आनंद रो अभिलाषी अणगार।
सदा उदासी में रहै, धर्म-धुरा आधार।।
४. पुनरपि प्रतिवादी वदै, जीव बचायां पाप?
सद्गुरु—पाप-प्रलाप स्यूं, जीव बचावां आप।।
५. गो-जीवां बचियां बिना, दया न घट रै बीच।
प्रत्युत्तर इण प्रश्न रो, आगम-साखे सींच।।

लावणी छंद

६. नौका में बैठ्यो जैन संत सन्मति है,
नौका-विहार री जैनागम अनुमति है।
नर-नारी बालक गो महिष्यां हैं अन्दर,
तटिनी-प्रवाह है जाणक भर्‌यो समन्दर।।

७. इक छेद भेद आवण लाग्यो है पाणी,
केवल मुनि देखै और नहीं को जाणी।
अब कुण-सो है कर्तव्य सन्त रो सोंचो,
नाविक नै कहणो है क नहीं? आलोचो।।

८. ओ पढ़ो पाठ आगम रो आगै कीधो[1],
गो-बाड़ै रो उत्तर मिल ज्यासी सीधो।
न्यायोचित उत्तर दियो सुगुरु अविवादी,
देखी अणदेखी करै वितंडावादी।।

९. निज प्रज्ञा नहिं निरपेक्ष, न समता मन में,
नहिं जिज्ञासा री बात, न विनय वचन में।
आगम-उद्धरण अगुणकर बिना समर्पण,
दो लोचन बिना निरर्थक है सौ दर्पण[2]।।

१०. बाढ़ स्वर कर आह्वान सुगुरु तब बोलै,
पार्श्व-स्थित जनता रो मानस टंटोलै।
बोलो भाई! जो प्रश्न सामनै आयो,
उणरो प्रत्युत्तर समुचित रूपे पायो?

११. सब शीष हिला स्वीकार करै गुरु-वाणी,
तुम शांतवृत्ति री बात न जाय बखाणी।
है सम्मुख मियां-मौलवी बैठा देखी,
बतलावै सद्‌गुरु तुरत प्रपंच उवेखी।।

---

१. आयारचूला ३।१।२२

२. यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्?
लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति?

दुमिला छंद

१२. तुम मान कुरान प्रमान यदा, निज जान रिवाज नमाज पढ़ो,
सब काज हि त्याज सिवातम-काज, गरीबनिवाज के ध्यान चढ़ो।
घड़ि दो घड़ि हेत रहो दृढ़चेत, चहे कोइ आय कटो जु बढ़ो,
जंह जीवन-यापन है इह भांत, फकीरि रो पंथ तो अंत बड़ो।।

इंदव छंद

१३. आगम रो फरमान इसो, परिधान कियो भगवान रो बानो,
आतम ज्ञान अमी रस पान करी किन को नहिं जीव दुखानो।।
एक सुखी चहे अन्य दुखी लखि विश्वव्यथा दिल नां घबरानो,
संत फकीरन को सत्पंथ, चहे कोइ मानो चहे मत मानो।।
१४. गौवन-बाड़ लगी कहीं राड़ जगी, जग मच्छ-गलागल जानो,
निब्बल-नाड़ गहै बल-गाढ, फड़ाफड़ फाड़ उजाड़ बहानो।
देख कहै पथ नेक उवेख, पड़ै बिच पेख संसार रो खानो,
संत फकीरन को सत्पंथ, चहे कोइ मानो चहे मत मानो।।

लावणी छंद

१५. सुण खुश-दिल मुसलमान गुरु नै विरुदावै,
है सही राह आ, जो श्रीमुख फरमावै।
अनजान करै बकवास सुवास न जोवै,
नहिं असली सुवरण शान सांवळी होवै।।
१६. यूं जन-जन रो संदेह मिटावै स्वामी,
पुर नगर-नगर री डगर गहै शिवगामी।
'गढ़-टाट' 'देवगढ़' ठाट अनुक्रम आवै,
दस रात रह्या 'आमेट' भक्त सुख पावै।।

१७. [1]आमेट-राव शिवनाथसिंह जी नेठ,
अति लम्बी दाढ़ी ढळक रही लग पेट।
दो बार सुगुरु-पद भेंट दिदारू देह,
गुणकीर्तन आंतर मन स्यूं करै सनेह।।

---

१. लय : नमूं अनंत चौबीसी

लावणी छंद

१८. हो 'राजसमंद' 'कांकड़ोली' करुणागर,
'नाथद्वारे' पति-पत्नी[1] बण्या उजागर।
गोगुन्दैराज[2] राज[3] रा दरसण पाया,
दीक्षा रो उत्सव देखी लोक लुभाया।।

१९. अब 'उदियापुर' चौमास सरस रसधारा,
विक्रम बहतर री साल लाल छोगां रा।[4]
तेबीस संत सति कानकुमारी मांझी-
है तीस सत्यां, 'राजाण' रह्या जेठांजी[5]।।

२०. श्री विजयधर्म[6], श्रीलाल[7], शंकराचारी[8],
श्री कालू तेरापथ-शासन-अधिकारी।
च्यारूं चौमासा एक साथ तिण वर्षे,
उदियापुर उदित-उदित-सो है उत्कर्षे।।

[9]उदियापुर में गणिवर गाजै।
वीर-वचन-घन साझै जी।।

२१. *एक दिवस कइयक प्रतिपक्षी श्रावक हिलमिल आया जी।*
धार्मिक-चर्चा प्रश्न-पडुत्तर, उत्तर लेण उम्हाया जी।।

२२. पूछै प्रश्न प्रसन्नमना, थे चूक्या वीर बतावो जी[10]।
ते किण लेखे? सुगुरु विशेखे छउमथता रो दावो जी।।

---

१. बीदासरनिवासी अमृतलालजी गोलछा और उनकी धर्मपत्नी रत्नांजी
२. मनोहरसिंहजी
३-४. अष्टम आचार्य श्री कालूरामजी
५. देखें प. सं. ५१
६. मूर्तिपूजक (संवेगी) सम्प्रदाय के आचार्य।
७. स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य।
८. वैष्णव मत के धर्माधिकारी।
९. लय : सुमतिनाथ सुमता पथ दाता
१०. देखें प. १ सं. ५२

२३. सब में अग्रगण्य इक बोलै, प्रभु तो पंचम नाणी जी।
गर्भ-छतां पिण हूंता साहिब! तब कुण चूक निशाणी जी?
२४. जद जनम्या जद परण्या भगवन, तब ही केवलधारी जी?
पुत्री एक हुई तब ही? पूछंतां शीघ्र स्वीकारी जी।।
२५. बोलै पूज्य विनोद भाव में, अब कोई प्रश्न न बाकी जी।
केवलज्ञानी गर्भ धरै अरु जनमै परणै भाखी जी।।
२६. सुणो सयाणां! छद्मस्थां री म्है तो चूक बताई जी।
केवलियां नै परणावत, नहिं थांनै शंका आई जी।।
२७. बिन बोले सहु होले-होले, निज-निज सेरी संभी जी।
द्वेष-भाव स्यूं निंदात्मक परचेबाजी प्रारंभी जी।।
२८. राणा फतेसिंहजी इक दिन, छापा निरख्या नयणां जी।
हीरालालजी[1] मुरड़्या आगल, यूं आखै निज वयणां जी।
२९. थांरी निंदा रा जो छापा, विद्वेषी जन छापै जी।
थे विरोध-प्रतिरोध बहानै, मत होज्यो इक मापै जी।।
३०. 'बड़ो हुकम' कहि नै मुरड़्याजी पंथ-प्रणाली गाई जी।
म्हांरै गुरु रो ओ ही कहणो, समता भाव सदाई जी।।
३१. एक अनर्गल बात उठाई, पंचायत-नोहरा में जी।
जलती भट्टी में गउ धसगी, पन्थी[2] ऊभा सामे जी।।
३२. पिण को गउ नै नहीं निकाली, देखो निर्दयताई जी।
सारै पुर में अरु घर-घर में, चरचा एक चलाई जी।।
३३. राणाजी पिण पेंफलेट पढ़, मुरड़्याजी नै भाखै जी।
इणरो प्रत्युत्तर तुम देवो, साच लहै सहु साखै जी।।
३४. श्री राणाजी रो दिल देखी, साची घटना छापी जी।
सारी जनता में जो फैली, वितथ कथा सब कापी जी।।
३५. चार मास पंचायत नोहरै, नहिं कोई भोज बुलावै जी।
जीमणवार बिना कुण तिण में, भट्टी जाय जगावै जी।।
३६. बिना जगायां क्यूं कर गउवर, भट्टी में आ पड़गी जी।
'ग्रामो नास्ति कुतः सीमा', जड़-मूलां झूठ उखड़गी जी।।

लावणी छंद

३७. मालव प्रदेश री स्पेशल ट्रेन सुहाई,
छह सौ मिनखां नै एक साथ ले आई।
पुरजोर प्रार्थना की मालव पधरावण,
पायो गुरु-मुख-संकेत उमंग-बधावण।।

---

१. एक तेरापंथी श्रावक, जो उदयपुर राणा फतेहसिंहजी के कामदार थे।
२. तेरापंथी

३८. 'कानोड़' पधार्‌या मालव नहिं फरसाणो,
यूं अंतराय रो प्रवल उदय पितवाणो।
फिर लीन्हो मारग सुगुरु 'रेलमगरै' रो,
'मोई' में मोड़्यो सबल सीन झगड़ै रो।।

सोरठा

३९. इतर संघ रा साध, पूज्यपाद पे आय नै।
कियो खड़ो बिखवाद, इकतरफै आक्षेप में।
४०. श्री कालू गणधार, शांतिभाव अनपार बहि।
रोक्यो द्वन्द्व-प्रचार, साधुवाद सौ बार हो।।
४१. दूजै दिन शुभ-चेत, बा ही मुनि-युगली बली।
खमतखामणा हेत, आ निज गलती स्वीकरी।।

लावणी छंद

४२. 'केलवै' कृपा 'बोरज' 'भाणो' 'तासोयल'[1],
'पूठोल' 'पीपलांतरी' 'आतमा' 'कोयल'।
सायां-खेड़ै[2] शुभ नजर 'मजेरै' भारी,
हो 'जीलवाड़' 'रीछेड़' छटा दीक्षा री।।
४३. बलि चारभुजा 'गडबोर' 'पराली' पथ रे,
'दीवेर', 'छापल्यां' स्यूं अब घाटै उतरे।
'जोजावर' आया मारवाड़ सुखवासे,
आ छट्ठी ढाळ कही दूजे उल्लासे।।

ढाळः ७.

दोहा

१. कांठा में फरस्या गणी, आंटा-सांटा ग्राम[3]।
मतिशाली पाली कियो, माघमहोत्सव स्वाम।।

---

१. तासोल
२. देखें प. १ सं. ५३
३. अरावली पर्वत की तलहटी में मारवाड़ (जोधपुर) के किनारे बसे हुए क्षेत्र—राणावास, सुधरी, रामसिंहजी का गुड़ा, कंटालिया, सिरियारी, मांढा, जोजावर आदि।

२. ओछी संख्या में हुयो, श्रमण-सती मेलाप।
सुद चौदस दिन च्यार जण, दीक्षा ली स्थिर थाप।।
३. 'धिनावास' अरु 'धाकड़ी', 'सोजत रोड़' सुरोड़।
बरसाई 'बगड़ी' झड़ी, 'गुडा' च्यार[1] गणमोड़।।
४. 'सिरियारी' 'कंटालियै', 'राणावास' सुवास।
'रामसिंहजी कै गुड़ै'[2], है होली चउमास।।
५. स्वामी आया 'आउवै', विद पख चेत सुमास।
प्रतिमा-पूजा पर चली, धार्मिक चरचा खास।
६. 'बीठोड़ै' थोड़ै समय, 'चोबार्‌यां' 'चाणोद'।
'समंदड़ी' में स्वामजी, समवसर्‌या सामोद।।
७. विचरत पुर बालोतरै, श्री शासण-सिरताज।
नेक भविक प्रतिबोधिया, तेरह दिवस विराज।।
८. पूज पधार्‌या पाधरा, 'पचपदरै' सोभाग।
श्रद्धालू घर सैकड़ां, है अंतर अनुराग।।

[3]सयण जण! सांभळो वारु कालूयशोविलास।

९. पचपदरै में आविया जी, प्रतापजी अभिधान।
भूतपूर्व श्रावक सही जी, संघ-बहिष्कृत जान।।
१०. खरतर अंचल गच्छ रा जी, दोय जती ले साथ।
पेटी पोथ्यां री भरी जी, ल्याया निज संघात।।
११. कनीरामजी[4] की कृती सिद्धांतसार ले हाथ।
समाधान हित स्वाम स्यूं जी, पूछै झीणी बात।।
१२. इणमें मिथ्यात्वी-क्रिया जी, आज्ञा-बाहिर सिद्ध।
जय-कृत 'भ्रमविध्वंस' में जी, आज्ञा-मांहि समृद्ध।।
१३. सूत्र-पाठ स्यूं नहिं मिलै जी, पूज्य करै फरमाण।
अठै भगवती जो हुवै तो, देखो करी मिलाण।।

---

१. रामसिंहजी का गुड़ा (छोटा), चतुरोजी का गुड़ा, बड़ा गुड़ा, अजवोजी का गुड़ा।
२. हवेल्यां वाला गुड़ा
३. लय : जम्बू! कह्यो मानलै रे जाया!
४. स्थानकवासी मुनि

१४. जयाचार्य री योजना जी, सूत्र भगवती साख।
कर कंकण क्यूं आरसी जी? करो न कूड़ी हाक।।
१५. पेटी खोल प्रतापजी अब, सूत्र भगवती काढ़।
जती-जुगल नै सूंपियो जी, मन में हरस प्रगाढ़।।
१६. खूब फरोव्या पानड़ा जी, जति-जुग सबल सहोश।
मूल पाठ मिलियो नहीं जी, गुम होग्या सब होश।।
१७. जैन जत्यां री एकदा जी, रही प्रतिष्ठा खास।
संचित बल चारित्र रो जी, अद्भुत विद्याभ्यास।।
१८. अध्यापन अध्ययन में जी, अति श्रम करता सार्थ।
प्राणार्पण नहिं हिचकता जी, पा जिन-मत परमार्थ।।
१९. गहन ग्रन्थ गौरव भर्‌या जी, रच भरता भण्डार।
करता अनुसंधान स्यूं जी, नव-नव आविष्कार।।
२०. आज निहार्‌यो लोचनां जी, जतियां रो हालात।
हिचकिचाट इक पाठ में जी, निज भगवति री बात।।
२१. दोन्यूं जती प्रतापजी अब, बोलै हो हैरान।
कृपया पाठ निकाल कै जी, करो सूत्र-सन्धान।।
२२. तदा भगवती 'भगवती' जी, कर लीन्ही गुरुदेव।
ततखिण अष्टम शतक रो जी, काढ्यो पाठ स्वमेव।।
२३. संभळायो समझावियो जी, चोभंगी रो लेख।
बाल तपस्वी मोक्ष रो जी, देशाराधक देख।।

लावणी छंद

२४. है प्रथम भंग श्रुतरहित शीलयुत कोरो,
मिथ्यादृष्टी अज्ञानी कोरो-मोरो।
इक श्रुतयुत शीलरहीत उभय-युत तीजो,
चोथो है उभय-रहीत पिछाण पतीजो।।
२५. है प्रथम भंग रो स्वामी बाल तपस्वी,
देशाराधक शिवपथ रो बण्यो यशस्वी।
तब आज्ञा-बाहिर क्यूं मिथ्यात्वी-करणी?
निष्पक्ष निहारो आत्मसाधना-सरणी।।
२६. मिश्री मीठी चाखै सम-मिथ्या-दृष्टी,
खारो ही नमक रसज्ञा री सम सृष्टी।

ओ पाठ भगवती[1] रो हीरो-सो परखो,
है अभय-वृत्ति[2] रो अर्थ समर्थन सरखो।।
२७. कर हृदय-कपाट अनावृत बात विचारो,
ज्यूं जिज्ञासा रो समाधान हो सारो।
अब जयाचार्य रो 'भ्रमविध्वंस' निकाळो,
सिद्धांतसार ओ कनीराम-कृत भाळो।।
२८. अनुकूल सूत्र स्यूं कुण प्रतिकूल पड़ै है?
कुण बहै बेधड़क कुण अधबीच अड़ै है?
अक्षर-अक्षर रो मेळ करो मिल तीनों,
निज भ्रांति हरो, मत सत्य छद्म स्यूं छीनो।।
२९. विस्मित प्रताप गुरु प्रौढ़-प्रताप-समक्षे,
जति-जुगल प्रफुल्लित-नयन वदै शुभलक्षे।
इणमें तो जयाचार्य रो 'भ्रमविध्वंसन',
आगम-अनुसारी भारी भ्रम-विध्वंसन,
'सिद्धांतसार' सिद्धान्त-सार नहिं पायो,
पायो गुरु-कृपया तत्त्व हृदय उलसायो।।

[3]सुजन जन! सांभळो वारु कालूयशोविलास।

३०. सहु सांभळतां गुरु कहै जी, समझी बात यथार्थ।
म्है मानां तिण कारणे जी, म्हांरो उद्यम सार्थ।।
३१. कालूयशोविलास री जी; निमल सातमी ढाळ।
पुण्यपोरसो गुरु मिलै जी, जिणरो भाग्य विशाल।।

---

१. भगवई श. ८ सू. ४५०
२. भगवती सूत्र अभयदेवकृत वृत्ति पत्र ४१८
देशं स्तोकमंशं मोक्षमार्गस्याराधयतीत्यर्थः
३. लय : जम्बू! कह्यो मान लै रे

ढाळः ८.

दोहा

१. सुद पख जेठ 'जसोल' में, 'असाड़ा' आषाढ़।
तिहोत्तरै 'जोधाणपुर', पावस हर्ष प्रगाढ़।।
२. श्रमण साथ चौबीस है, श्रमणी अट्ठावीस।
शय्यातर श्रावक सुघड़, भंडारी[1] नतशीष।।
३. अल्पवृष्टि प्रारंभ में, पछै सघन घन-रीझ।
सन्त सही साचे मने, जन-जन रीझ रु खीज।।
४. पूरण कर पावस सुगुरु, शहर लाडणूं साझ।
बीदासर माजी दरस, मेटी मन री दाझ।।
५. पुनरपि माघोत्सव कृते, शहर लाडणूं पूज्य।
घर-घर रंग-बधावणा, उपासना उपयुज्य।।
६. शहर मुकसदाबाद रा, मानसिंह गुरु भेट।
सुध समकित पाई प्रवर, मानस-शंका मेट।।
७. आसपास विचरत कर्‌यो, चउत्तरै चोमास।
महर शहर-सरदार पर, होती आई खास।।
८. पंचबीस चौबीस है, श्रमण सती संघात।
भारी बिरखा रो हुयो, पावस में उत्पात।।

[2]प्यारो कालूयशोविलास।

९. चिहोत्तरै सरदारशहर में, चतुर्मास-उल्लास।
घर-घर गावै रंग-बधावा, सद्‌गुरु रो सुखवास।।
१०. श्रावण में मुनि मगन-गात में, उग्र-व्याधि-आभास।
उदर-व्यथा आकस्मिक उपजी, जाणक जावै श्वास।।
११. आखिर अश्विनिकुमर मुखर्जी, सर्जी सेवा खास।
सात दिवस विश्राम सेक स्यूं, आमय रो व्यपनाश।।

---

१. मानमलजी-सोनमलजी भंडारी
२. लय : भजिए निशदिन कालु गणिंद

१२. भाद्रव मासे देव[1] दयालू, बण्या बिमारी-ग्रास।
बेहोशी-सी व्यापी तन में, सारो संघ उदास।।
१३. स्वल्प समय में शान्त बिमारी, शासण पुण्य-प्रकाश।
वर्धमान धार्मिक गतिविधियां, शुभ भावी आभास।।
१४. टेसीटोरी[2] इटली रो प्रोफेसर गुरुवर पास।
भमतो आयो हर्ष बधायो, पायो अति आश्वास।।
१५. मिगसर मासे चूरू जनता की पूरी अभिलाष।
धर्मसंघ रै संवर्धन में, एक जुड़्यो इतिहास।।

[3]गढ़ चूरू में, सद्गुरु-वंदन रघुनंदनजी आवै।
सुख रूं-रूं में, नयनानंदन निरखत नांहि समावै।।

१६. इक दिवस श्रावकां रै साथे, चादर ओढ्यां खुल्ले माथे।
कोइ आय खड़्यो बाते-बाते, गढ़ चूरू में...
१७. है जैन जती रावत नामे, सिर नामे गुरुवर चरणां में।
श्रद्धानत झांक रह्यो सामे, गढ़ चूरू में...
१८. क्यूं घणां दिनां स्यूं आया हो? जाणै कुछ कहण उम्हाया हो।
कोइ खबर अनोखी ल्याया हो? गढ़ चूरू में...
१९. झट सरक जती गुरुवर पासे, अति विस्मित-चित-सो आभासे।
बोले होळे-से मृदुहासे, गढ़ चूरू में...
२०. इक विबुध विबुधमणि आयो है, विद्या-वारिधि कहिवायो है।
वाणी रो वर मनु पायो है, गढ़ चूरू में...
२१. बो अजब उम्र को नान्हो है, क्षमता रो भर्‌यो खजानो है।
पिण अब लों छानो-मानो है, गढ़ चूरू में...
२२. है आशुकवी इचरजकारी, चुपकै सौ श्लोक रचै भारी।
बोली मृदु मंजुल मनहारी, गढ़ चूरू में...
२३. नहिं कागज कलम जरूर पड़ै, मुख जबां धड़ाधड़ श्लोक घड़ै।
मनु तार कूकड़ी रो उधड़ै, गढ़ चूरू में...

---

१. कालूगणी
२. इटालियन विद्वान डॉ. एल. पी. टेसीटोरी
३. लय : उभय मेष तिहां आहुड़िया

२४. पारंगत आयुर्वेदी है, संस्कृत शब्दार्णवबेदी है।
मेधावी मर्मावेधी है, गढ़ चूरू में...

[1]पूज्य यूं श्रीमुख फरमावै, पूज्य यूं श्रीमुख फरमावै।
सुणो गुरांसा! थांरी भाषा कुण समझण पावै।।

२५. आजकाल री चाल जतीजी! है इण ही खाहै।
जतीजी! है इण ही खाहै।
चौदह आना काण टाण रुपियो ही दरसावै।।
पूज्य यूं श्रीमुख फरमावै।
२६. घर में खींचाताण सभा में मूंछां बळ ल्यावै।
है कंगाल हाल तो ही मगरूरी नहिं मावै।।
२७. संधी अरु षट-लिंग लिंग अणजाण गजब ढावै।
झूठमूठ इक सूंठ पाण पंसारी बण ज्यावै।।
२८. देख्या सुण्या अनेक छेक विरलो निजर्यां आवै।
उशरट[2] 'तुम्बक-तुम्बक-तुम्बा'[3] लुम्बा लटकावै।।
२९. बढ़ा चढ़ाकर बात बणाणी भावुकता भावै।
मिनटां में सौ श्लोक हृदय मानै जद अजमावै।।

[4]गढ़ चूरू में, सद्गुरु-वंदन रघुनंदनजी आवै।

३०. अब पुनरपि यतिवर बोल उठ्यो, हियड़ो जियड़ो सो डोल उठ्यो।
म्हांरो सारो विश्वास उठ्यो, गढ़ चूरू में...
३१. बरसां स्यूं आप पिछाणो हो, म्हांरी गतिविधि नै जाणो हो।
अब फिर कांई पितवाणो हो? गढ़ चूरू में...

---

१. लय : तावड़ा धीमो-सो तपजै
२. देखें प. १ सं. ५४
३. देखें प. १ सं. ५५
४. लय : उभय मेष तिहां आहुड़िया

३२. सौ श्लोक कह्या मैं तो डरतो, गुरु आतप-भय स्यूं थरहरतो।
बो सँहस रचै फिरतो-घिरतो, गढ़ चूरू में...
३३. मुझनै मत नां झूठो जाणो, ल्या खड़ो करूं यदि अजमाणो।
परखो अरु छाणो पहचाणो, गढ़ चूरू में...
३४. मैं सेवक जिणशासण रो हूं, नहिं नयो सदा जो हूं सो हूं।
विश्वास नहीं अपणो खोऊं, गढ़ चूरू में...

गढ़ चूरू में, तेरापन्थी संत कवीश्वर! चालो।
सुख रूं-रूं में, पास्यो नहिं विसरास्यो एक'र चालो।।

३५. पंडितंजी रै पासै आवी, कहि बात विगत सब समझावी।
है दिखलायो उज्ज्वल भावी, गढ़ चूरू में...
३६. धीमै-धीमै कवि-हाथ ग्रह्यो, तेरापथ रो इतिहास कह्यो।
श्री कालू पुण्य-प्रकाश नयो, गढ़ चूरू में...
३७. है अमित शांति युग नयणां में, अमृत-रस बरसै वयणां में।
जीवन जागरणा जयणां में, गढ़ चूरू में...
३८. ल्यो शिष्य सैकड़ां साधू है, अविचल आज्ञा-आराधू है।
कोइ अजब जागतो जादू है, गढ़ चूरू में...
३९. भारी संगठन सलूणो है, तप तेज बधै दिन दूणो है।
किण ही बाते नहिं ऊणो है, गढ़ चूरू में...
४०. जिणशासण रो अधिनायक है, पंडितजी! देखण लायक है।
'रावत'[1] तो बीच सहायक है, गढ़ चूरू में...!

[2]वदै यूं पंडितजी वाणी, वदै रघुनंदनजी वाणी।
तेरापंथ पास नहिं जाऊं, हरगिज मैं जाणी।।

४१. पढ़ै भणै नहिं मूल, बण्या अणपढ़ रा अगवाणी।
काव्य कोश व्याकरण वरण री सुणी न सहनाणी।।
४२. जावै जो कोइ पास, हास अरु इज्जत री हाणी।
कटुक कटुकवत वचन वदन-घन स्यूं बरसै पाणी।।
४३. कूप तड़ाग बाग बणवावै पुण्यात्मा प्राणी।
तिणरो करै निषेध, नहीं महिमा है अणजाणी।।
४४. जीव-दया में पाप बतावै श्रुतपूर्वा व्हाणी।
एक-एक है बात भ्रात! म्हांरै दिल अणखाणी।।

---

१. यतीजी
२. लय : तावड़ा धीमो-सो तपजै

४५. भले सैकड़ां शिष्य, मती लाखां री भरमाणी।
बौद्धिक जनता कभी नहीं इण स्यूं आकरसाणी।।
४६. एक बार सौ बार कहूं मैं 'ना' दृढ़ता ठाणी।
निकट गयां ही पाप, आप करते ताणाताणी।।

[1]सुणो पंडितजी! गुण-मंडितजी!
एक'र तो चालो भरम तजी।।

४७. बोलै जतिवर अति मृदु वाण, नहिं कोई म्हांरी ताणाताण।
साग्रह नम्र निवेदन जी, एक'र तो...
४८. भ्रान्त धारणा है अणबूझ, न मिली अब लों संवळी सूझ।
बहुली दुनियां धरमधजी, एक'र तो...
४९. कीड़ी-पीड़न समझै पाप, फिर क्यूं मानव-मानस-ताप।
सोचो बहकावट बरजी, एक'र तो...
५०. दीखण में जो आंगळ च्यार, बुध जन भाखै कोस हजार।
आंख कान रो अंतर जी, एक'र तो...
५१. सुण-सुण संचित जो कड़वास, आंख झांकता ही इकलास।
अनुभव री आ बात अजी, एक'र तो...
५२. अति आग्रह म्हांरो अनुरोध, नहिं निष्कारण सुज्ञ! सुबोध!
मानो म्हांरो हठ समझी, एक'र तो...
५३. एक बार ल्यो नयन निहार, कड़वी औषध लख उपचार।
फिर करज्यो मन री मरजी, एक'र तो...

[2]गढ़ चूरू में, सद्गुरु-वंदन रघुनंदनजी आवै।

५४. दीठो अति आग्रह हठ-भीनो, मुश्किल स्यूं हूंकारो दीन्हो।
उपनय पय-धोवण रो चीन्हो[3], गढ़ चूरू में...
५५. हो डरूं-फरूं-सा आय खड़्या, गुरु-सम्मुख सहसा हाथ जुड़्या।
दै परिचय जतिवर कर पकड़्यां, गढ़ चूरू में...

---

१. लय : ऐसो जादूपती
२. लय : उभय मेष तिहां आहुड़िया
३. देखें प. १ सं. ५६

५६. ओ तरुण कवी रघुनन्दन है, वाग्देवी रो अभिनन्दन है।
रूं-रूं प्रकाश रो स्पन्दन है, गढ़ चूरू में...
५७. संपूर्ण हुयो म्हांरो प्रण है, ल्यां खड़्यो कियो इण आंगण है।
ज्यूं चाहो करो परीक्षण है, गढ़ चूरू में...
५८. साश्चर्य सशंक निहारै है, नहिं निरखत पलकां हारै है।
संशय री बाट विसारै है, गढ़ चूरू में...
५९. गुरु बोलै वाणी गीर्वाणी, प्रेमामृत मिश्रित गुणखाणी।
पंडित सस्मित योजित-पाणी, गढ़ चूरू में...

अयि कविवर्याः! साधूनामिह संगतिरनिशं कार्या।
भिषगाचार्याः! उचितं रुचितं अतिवर्तन्ते नार्याः।।

६०. किं शुभाभिधानं? का जातिः? अभ्यस्तं किं? कतरा ख्यातिः?
प्रथमोवसरः बुध आयाति, अयि कविवर्याः!...
६१. सुकृतित्वं साधोः संसर्गात्, सुकृतित्वं साधोः संसर्गात्
किं न स्यात् साधोः संसर्गात्, अयि कविवर्याः!...
६२. भयभीतानामभयं बाढ़ं, संत्रस्तानां त्राणं बाढ़म्
सुनयाध्वनि गमनं इह गाढ़म्, अयि कविवर्याः!...
६३. तेरापथसंघे रीतिरियं, श्रीभिक्षोर्नियता नीतिरियम्
चित्रं! धीमन्! हृदि भीतिरियम्, अयि कविवर्याः!...
६४. दृष्ट्वा श्रीभिक्षोः साहित्यं, स्पृष्ट्वा गुरुलापनलालित्यम्
हृष्ट्वा सन्[1] प्रापत् सौहित्यम्, अयि कविवर्याः!...

[2]प्यारो कालूयशोविलास।

६५. आशुकवित्व परीक्षण शिक्षण, विश्रुत श्रुत विश्वास।
सहज विचक्षणता रो परिचय, बोली रो विन्यास।।
६६. सुणो जतीजी! धीज पतीजी, ल्यो म्हांरो स्याबाश।
बड़ो खेद थांरी कहणी पर, म्हांरै मन उपहास।।
६७. वसुंधरा आ धरा कहावै, जरा न वितथ विलास।
ढाळ आठवीं धर्मसंघ हित, ओ अद्भुत आयास।।

---

१. विद्वान
२. लय : भजिए निशदिन कालु गणिंद

ढाळः ९.

दोहा

१. रघुनंदनजी रै हृदय, गुरु-वंदन रै काल।
परमाह्लाद विषाद रो, विषम समन्वय भाल।।
२. सद्गुरु-चरणसरोज रो, संगम सौख्य-निमित्त।
तदपि वृत्त प्रागूकाल रो, स्मरत व्यथाकुल चित्त।।
३. अहो! पुरुष-अवतंस-सो, तेरापंथ-भदंत।
भू-भूषण दूषण-रहित, महित महामतिमन्त।।
४. घृणा करी जड़ता भरी, अबुध-वचन-अनुसार।
सम्यग-दर्शन स्वीकरण, अब इण रो उपचार।।
५. दूजै दिन निर्मलमती, घंटात्रय समवेत।
'साधुशतक'[1] रचना करी, आत्मविशोधन हेत।।
६. आपणपे अभ्यर्थना, करी पूज्यवर पास।
हाजर हूं अहनिशि विभो! देव-पदाम्बुज-दास।।
७. बणी योजना है विशद, संस्कृत वरै विकास।
सहयोगी रघुवर सखर, सर्वांगीण प्रकाश।।
८. समय-समय साझी समन, सेवा विद्यादान।
पूज्य पुण्यवानी प्रगट, है परतख पहचान।।
९. रघु-ऋण शासण-शिर सदा, शासण-ऋण रघु-माथ।
यूं अन्योन्याश्रित बण्यो, धर्मसंघ रघु साथ।।

१०. [2]इक मास रह्या चूरू में, श्रद्धानत लोग गुरू में।
मर्यादोत्सव राजाणे, चीहोत्तर सहु सुख माणे।।
११. साध्वीप्रमुखा जेठांजी, बीदाणै छोगां माजी-
संभारी, गिरिगढ़ फरसी, सरदारशहर शुभ-दरसी।।
१२. राजाणै गुरु-पदमूले, व्रण-वेदन अति प्रतिकूले।
सहज्यां पावस खिलखिलतो, बीदासर रहग्यो झिलतो।।
१३. एडी रो व्रण विस्तार्यो, है रूप भयंकर धार्यो।
आसोजां लग अनुभावै, नहिं प्रवचन खुद फरमावै।।
१४. आखिर चक्कू स्यूं चीरो, दै मुनिवर मगन सधीरो।
बण निष्कृप पीप निकाल्यो, दर्दी रो दरद न भाल्यो।।

---

१. देखें 'साधुशतक' पुस्तक
२. लय : डाभ मुंजादिक नी डोरी

१५. साहस साहस री ठोड़े, तब ही तो तत्त्व निचोड़े।
कालू-दृढ़ता उल्लेखी, नहिं चेहरे सिकुड़न देखी।।
१६. कार्तिक में व्रण उपशान्ती, लहि संघचतुष्टय शान्ती।
मिगसर मासे सुविचारी, बीदासर मन्द-विहारी।।
१७. अब सुजानगढ़ सामेळो, है माघ-महोत्सव-मेळो।
मोच्छब में मोच्छब भारी, संयम साध्यो नर-नारी।।
१८. बीदासर फाल्गुन मासी, माता मन मोद न मासी।
नव कोस राज राजाणै, वसुगढ़ आया शुभ टाणै।।

[1]सुगुरु म्हांरो मन मोह्यो,
मन मोह्यो मृदुता भर्‌यो रे, मृदुता भर्‌यो।
मंजुल मुखड़ै रो घाट रे, सुगुरु म्हांरो मन मोह्यो,
पळकत ललित ललाट रे, सुगुरु म्हांरो मन मोह्यो।
जस-झल्लरी-झणणाट रे, सुगुरु म्हांरो मन मोह्यो।।

१९. गुरु-वन्दन उत्सुकमना रे, उत्सुकमना,
हरिनन्दन भूदेव रे, सुगुरु म्हांरो मन मोह्यो।
नाम ठाम वासस्थली रे, वासस्थली,
पूछै पूज्य स्वमेव रे, सुगुरु म्हांरो मन मोह्यो।।
२०. बात चली व्याकरण री रे, पंडित सीनो ताण रे।
आगै कीन्ही कौमुदी रे, सब शास्त्रां री शाण रे।।
२१. भट्टोजी दीक्षित रची रे, है शिक्षित साह्लाद रे।
अखिल शब्दगण-साधिका रे, विबुध-मान्य अविवाद रे।।
२२. सागर जल कुंभोद्‌भवी[2] रे, तीन चळू में चोष रे।
त्यूं 'त्रिमुनि व्याकरण'[3] में रे, शब्दसिन्धु रो शोष रे।।

गुरुदेव

२३. जदपि विबुध! व्याकरण रो रे, शब्द-सिद्धि ही साध्य रे।
तो पिण शोषित-सिन्धु में रे, बचै बिन्दु अविबाध्य रे।।

---

१. लय : कुंवर! थांस्यूं मन लाग्यो
२. अगस्त्य ऋषि
३. पाणिनि कृत अष्टाध्यायी, कात्यायन कृत वार्तिक और पतंजलि कृत भाष्य, यह 'त्रिमुनि व्याकरण' कहलाता है।

पंडित

२४. करै शब्द-जंग-कौमुदी रे, कौमुदीव संचार रे।

गुरुदेव

फिर भी गरभागार में रे रहै सहज अंधियार रे।।
२५. जोश भरी पंडित भणै रे, एक हि शब्द अविद्ध रे।
कोई बतलासी सही रे, जो न कौमुदी-सिद्ध रे।।
२६. 'तुच्छ' शब्द पूछै गुरू रे, पंडित पुस्तक खोल रे।
सचमुच ही अति श्रम कियो रे, ज्यूं-त्यूं हो प्रतिबोल रे।।

पंडित

२७. आज नहीं तो कल सही रे, प्रतिवच हे व्रतिराज! रे।
कोई कठिनाई नहीं रे, दीन्हो सद्गुरु स्हाज रे।।
२८. खिन्नमना दूजे दिने रे, प्रस्तुत है विद्वान रे।
प्रगट करी असमर्थता रे, ओ वैदुष्य महान रे।।
२९. 'तुच्छ' शब्द की सिद्धता रे, नहीं कौमुदी पास रे।
क्षमाश्रमण! चाहूं क्षमा रे, हुयो अहंताभास रे।।
३०. बड़ो मधुरिमामय बण्यो रे, वातावरण विराट रे।
यूं विचार-विनिमय-प्रथा रे, प्रकट पढ़ावै पाठ रे।।

३१. [1]पिचहत्तर होणैवाळो, छीहत्तर रो बरसाळो।
बीदासर माजी पासे, प्रारंभ्यो हर्षोल्लासे।।
३२. माघोत्सव छिहंतरा रो, सरदारशहर सुविचारो।
महा बदी[2] धर्म छक छायो, महाबदी क्षेत्र मनु भायो।।
३३. जन हरियाणै रा आवै, निज प्रान्त प्रार्थना ठावै।
हरियाणै पगला फेरो, करुणा री दृष्टी हेरो।।
३४. धुर माणक पूज्य पधार्‌या, म्हांरा तकदीर उभार्‌या[3]।
अब अपणो विरुद निहारो, तारो-तारो गुरु! तारो।।

---

१. लय : डाभ मुंजादिक नी डोरी
२. माघ मास के कृष्ण पक्ष में
३. वि. सं. १९५० में

३५. आदेश दियो गणस्वामी, अभिलाष सफलता-गामी।
दूजे उल्लासे आखी, आ नवमी ढाळ सुसाखी।।

ढाळः १०.

दोहा

१. हरियाणै दिशि हूंस स्यूं, विभुवर करै विहार।
चूरू-पथ पावन कियो, पुर 'टमकोर' पधार।।
२. दस वासर 'रीणी' रही, 'ददरेवै' हो देव।
राज पधार्‌या 'राजगढ़' बरसी बाण सुधेव।।
३. विश्वाधार पधारिया, पहली पुर 'हिस्सार'।
सार्वजनिक स्वागत कियो, जनता अधिक उदार।।
४. तारण-तरण 'हिसार' स्यूं, फरसत लघु-लघु ग्राम।
तुरत टुहाणा में लियो, तीन रात विश्राम।।
५. सात कोस आक्रोश बिन, बिच इक मंडी फर्श।
'उच्चाणा मंडी' दिया, देव दयानिधि दर्श।।

६. [1]लोक सैकड़ां साथ, पूज्य पजुवास करै,
जाणी शासणनाथ, महर-दृग आश धरै।
आश धरै, भव-पाश टरै, आध्यात्मिक ज्ञान उजास वरै,
ज्यांरै लग्यो धर्म रो रंग, सकल अभिलाष तरै।।
७. 'छातर' जिन-मत-छत्र, रात्रि-युग वास कियो,
'नगुरै' होय 'कसूण', 'बड़ोदो' बीच लियो।
बीच लियो, जग सुजश जियो, हो 'कोथ' 'खापड़ा' गुणरसियो,
खेड़ा फर्श्या सर्व, दिव्य जिनधर्म-दियो।।

[2]है अपणा भाग्य सवाया, भाया! हरियाणै हरि आया जी।
आ कंचनवरणी काया, भाया! हरियाणै हरि आया जी।।

---

१. लय : धन-धन भिक्षु स्वाम
२. लय : आदिनाथ मेरे आंगण आया

८. ग्राम-ग्राम रा जन हो भेळा, गुरु-पद भेंटण आवै जी।
नयन निहाली सुरत सुंहाळी, रूं-रूं रंग रचावै जी।।
९. खमा-खमा आवाज सुणत ही, दड़बड़-दड़बड़ दोड़ै जी।
खड़बड़ाट घर हाट खाट तज, गुरु-चरणां कर जोड़ै जी।।
१०. खिण इक खड़्या रहो म्हाराजी! पगला भेंटण प्यासो जी।
इतलै एक कहै बाबाजी! कुछ उपदेश प्रकाशो जी।।
११. थांरा प्यारा दर्शन दीठा, पातक सारा नीठा जी।
हे अलवेश्वर! म्हांनै लागो, परमेश्वर-सा मीठा जी।।
१२. सुणवाओ गुरुमन्त्र गुरुजी! भेंट रुपैया लीजे जी।
म्है म्हांरै घर-सारू धामां, इण में खंच न कीजे जी।।
१३. नहिं रुपिया लेणै री मरजी, हाथ नारियल हेरो जी।
रीता हाथां राजा गुरु रो, दरसण नहीं भलेरो जी।।
१४. इचरज लाखां लोग-लुगाई, आंरी आणा पाळै जी।
तो किण साटे विषमी बाटे, पय अलवाणा हालै जी[1]।
१५. हय रूपाळो गय मतवालो, दुंदाळो फुंदाळो जी।
हाजर है हर वक्त, फक्त इण गुरु रो पन्थ निराळो जी।।
१६. कनक कामिनी ज्यूं सुदामिनी, त्यागी शिव-अनुरागी जी।
जय-जय कालू परम-कृपालू, वन्दै जो बड़भागी जी।।

१७. [1]फरस 'लुहारी' 'मोठ' पूज्य 'पाली' आया,
शासनराय 'सिसाय' वचोमृत बरसाया।
बरसाया, भवि हरसाया, जुग मारग पृथक पृथक गाया,
पावन युगल-पदाब्ज, शहर 'हांसी' ठाया।।
१८. स्वमति अन्यमति तत्र हजारां संख्या में,
अभिमुख हो एकत्र, पूज्य दरसण कामे।
दरसण कामे, सब शिर नामे, कृतकृत्य आज गुरु चरणां में,
यूं आखै मुख आवाज, राज सुख शरणां में।।
१९. दीक्षा युग आषाढ़ कृष्ण तिथि चोथ हुई[2],
हांसी-श्रावक भक्ति-भावना खूब बही।
खूब बही, निशि तेर रही, 'सुलतानपुरे' 'उमरे' उमही,
जय 'जमालपुर' 'तोषाम', 'भिवानी' बाट गही।।

---

१. लय : धन-धन भिक्षु स्वाम
२. वि. सं. १९७७

२०. शुक्ल तीज आषाढ़, वार शुभ शुभ दिवसे,
बहि हल्लू[1] बाजार, विराज्या ल्होड़[2] विषे।
ल्होड़ विषे, विभुवर विलसे, बाईस संत सति तीस लसे,
साल सितंतर च्यार-मास[3] सुखवास वसे।।

२१. मूरति अति रमणीय, अलौकिक योग-छवी,
कोमलता कमनीय, विलोकत लोक भवी।
लोक भवी, पा वस्तु नवी, है ध्वांत-विधंसण इतर रवी,
कामित-वितरण हेत, कहूं कोइ कामगवी।।

[4]तेरापथ रा अधिनेता राज स्वामजी।

२२. बोलै भीवाणीवासी, राज स्वामजी!
ओ गुरुवर विमल विकासी जी। तेरापथ रा...
आया आवै कइ आसी, राज स्वामजी!
पिण इणसी नहिं इकलासी जी।। तेरापथ रा...

२३. कइ भस्म विलेपित गात्रा, शिर जटाजूट बेमात्रा जी।
मृग-छाल विशाल बिछावै, मुख सींग डींग संभलावै जी।।

२४. बाबा बाघंबर ओढ़ै, गंगा-जमना-तट पोढ़ै जी।
कइ न्हा-धो रहै सुचंगा, कइ नंगा अजब अड़ंगा जी।।

२५. कइ पंचाग्नी तप तापै, जंगम-थावर संतापै जी।
ऊंचै स्वर धुनं आलापै, कइ जाप अहोनिश जापै जी।।

२६. कइ ॐ हरि ॐ हरि बोलै, उदरंभरि मौन न खोलै जी।
कइ डगमग मस्तक डोलै, भव-वारिधि ज्यान झकोलै जी।।

२७. बण रहै ब्रह्म-सा सागी, नहिं कनक कामिनी त्यागी जी।
गांजै सुल्फै रा रागी, इक ल्याव-ल्याव लौ लागी जी।।

२८. बक-ध्यान धरै मद माची, की सिंघकथा नै सांची जी[5]।
पण ओ है पंथ प्रभू रो, वैराग-राग स्यूं पूरो जी।।

१,२. ये दोनों भिवानी के दो बाजार हैं, जो दो मुहल्लों के रूप में परिणत हो गए।

३. उस वर्ष श्रावण मास दो थे, इसलिए चतुर्मास पांच मास का था। पांच मास होने पर भी वह चतुर्मास ही कहलाता है, इस दृष्टि से यहां चार मास का उल्लेख है।

४. लय : सुखपाल सिंहासण

५. देखें प. १ सं. ५७

२९. श्री कालूजी री कहणी, त्यूं करणी है बिन महणी जी।
नहिं बैंगण पोथैवाळा[1], आरोगण हेत निराळा जी।।

३०. [2]शुभ यश-पडह-निनाद, साद प्रसर्‌यो भारी,
गणिवर गुण-संवाद, वदै बहु नर-नारी।
नर-नारी, सद्‌गुरु गुरुता री, महिमा गावै दुविधा टारी,
दसवीं ढाळ विशाल, सुणो सब हितकारी।।

ढाळः ११.

दोहा

१. मोटा-मोटा मानवी, पूज्य-पदाम्बुज भेट।
धन्य-धन्य जीवन गिण्यो, भव-संचित अघ मेट।।
२. महात्मा गांधी तदा, भीवाणी निज काज-
आया, तब निसुणी अठै तेरापथ-अधिराज।।
३. निज इच्छा परगट करी, करणो है संपर्क।
(पर) राजनीति कारण कृते, बिच में रह्यो वितर्क।।

[3]परम-गुरु पुनवानी, पुनवानी जन-मन मानी,
आ तो मुलक-मुलक महकाय, परम गुरु पुनवानी।
आ तो झुक-झुक झोला खाय, परम गुरु पुनवानी।।

४. पावस में थ्यावस मिल्यो, है धर्म-वृष्टि अनपार, परम...।
भीवाणी में लग रही, ल्यो घर-घर अजब बहार, परम...।।
५. प्रथम-प्रथम चौमास ओ, पीढ़्यां स्यूं करत अडीक।
सुरतरु फळग्यो आंगणै, टळि अंतराय री लीक।।
६. सावण सरिता धरम री, नित प्रवही परम-पुनीत।
जैनेतर हो जैन हो, न्हा-न्हा मेटी सब भीत।।
७. भर परवां रो भादवो, मझली रुत रो आसोज।
एकमेक-सो हो रह्यो, धार्मिक जनता रो जोश।।

---

१. देखें प. १ सं. ५८
२. लय : धन-धन भिक्षु स्वाम
३. लय : बगीची निम्बुवां की

८. आयो आखिर आसनो, अब कार्तिक दीक्षा मास।
वैरागी वैरागण्यां, है हाजर मन उल्लास।।
९. शुभ मुहुरत बिद अष्टमी, तिथि नियता दीक्षा हेत।
इक भाई महिला त्रयी, श्री पूज्य दियो संकेत।।
१०. देख कुमारी कन्यका, आकर्षक आकृति ओज।
मिल्यो विरोध्यां नै सहज, ओ अवसर करतां खोज।।
११. आंदोलन द्वारा करां, इण दीक्षा रो अवरोध।
जैनी जनता नै हुसी, प्रतिपक्ष-शक्ति रो बोध।।
१२. बढ़तो रुकसी बाढ़ ज्यूं, पन्थ्यां रो धरम-प्रचार।
देखो हृदय-दरिद्रता, है आदत स्यूं लाचार।।
१३. पर सुख में असहिष्णुता, ओ आमय अप्रतिकार।
महिषी-परिमोषी परे, स्वीकारै आखिर हार[1]।।
१४. सझे समज्या सामठी, प्रव्रज्या रै प्रतिकूल।
भीषणतम भाषण करै, अपणायो उग्र उसूल।।
१५. हाय! भीवाणी शहर में, हो रह्यो बड़ो अन्याय।
देखो दीक्षा-यज्ञ में, है बालक होम्या जाय।।
१६. दूधमुंही आ बालिका, संन्यास खड़ग री धार।
हा! हा! सहन किंयां हुवै? ओ हृदयहीन-व्यवहार।।
१७. आ दीक्षा तो रोकस्यां, ज्यूं-त्यूं ही तन धन झोंक।
अवगुणग्राही आग्रही जन ज्यूं जंगल की जोंक।।
१८. मूढ़ गूढ़-पथ क्यूं लखै, जो अकड़-पकड़ में रूढ़।
हय-हेषा क्यूं सांभळै, नित रासभ-पीठारूढ़।।

लावणी छंद

१९. भारी विरोध लख दास-द्वारका आवै,
मुनि मगन-चरण में अपणो दिल बहलावै।
म्हाराजी! दीक्षा देद्यो अगर ठिकाणै,
तो सकल विरोधी लोक पड़े लचकाणै।।
२०. मुनि मगन–द्वारकादास! अरे! घबराया,
बन्दर-घुड़की स्यूं क्यूं पीछै पग ठाया?

---

१. देखें प. १ सं. ५९

हम तो दीक्षा तुम कहो वहीं दे देंगे,
पावस उतरा कि भिवाणी से चल देंगे।।
२१. पर तुम अपना वर्चस्व न रख पाओगे,
भीवाणी छोड़ बताओ कित जाओगे?
अब सजग द्वारकादास होश में आयो,
मजबूत मनोबल नयो जोश उमड़ायो।।
२२. 'रूपो-चम्पो'[१] सेढू बलदेव[२] उमरिया[३],
'रामू-कनियो'[४] आदी सब हरिया-भरिया।
डंकै की चोट बजार हुवेला दीक्षा,
साचां झूठां री करसी जगत समीक्षा।।

दोहा

२३. भारी जोश समाज में, और विरोधी लोक।
खूब खपै जी-जान स्यूं, करणै दीक्षा-रोक।।

[५]रोको दीक्षा तेरापंथ री जी आज,
इणमें करणो है पुरुषार्थ, इणनै मान चलो परमार्थ।
आखिर रहसी बात यथार्थ, रोको दीक्षा तेरापंथ री जी आज।।

२४. भारी एक सभा जुड़ी रे, मिल्या हजारां लोक।
कलह-कुतूहल-कामिया रे, निशा-समय आलोक।।
२५. भाषण बिभीषिका भर्‌या रे, ईंधन स्यूं ज्यूं आग-
भभकै, जन मन ऊबळै रे, ज्यूं समुद्र में झाग।।
२६. दीक्षा कदे न होणद्यां रे, करी समीक्षा खूब।
सुख स्यूं सुवां न सोणद्यां रे, उभरी मन में ऊब।।
२७. एक कहै जा रोकस्यां रे, घर में घुस मनहूस।
घर में क्यूं बाजार में रे, आसी साथ जलूस।।

---

१. द्वारकादास के बुजुर्ग, जो हालू बाजार में रहते थे।
२. नत्थूराम और जानकीदास के बुजुर्ग, जो ल्होड़ बाजार में रहते थे।
३. सन्तलाल का परिवार।
४. देखें प. १ सं. ६०
५. लय : बोलै बालक बोलड़ा रे

२८. मत छीजो तीजो कहै रे, धीजो लीज्यो देख।
दीक्षा-मण्डप स्यूं उठा रे, ल्यास्यां आ दृढ़ टेक।।
२९. जीवित जब लों शहर में रे, जन छत्तीस हजार।
तब लों दीक्षा-कल्पना रे, गगन-कुसुम अनुहार।।
३०. मन-मोदक आमोद स्यूं रे, आरोगै भर पेट।
धर्म-जोश जाग्यो इतै रे, सारी शक्ति समेट।।

[1]परम गुरु पुनवानी।

३१. धोळो धोळो गगन स्यूं, आकस्मिक गोळो एक।
पड़्यो सभा रै बीच में, है अजब कर्म री रेख।।

[2]आयो रे आयो, गोळो ओ अजब-गजब आकाश स्यूं।
जन मन घबरायो, धोळो ओ धोळो है आभास स्यूं।।

३२. हाय! मारणी गाय, गाय रो बछड़ो छड़ो खड़ो-सो।
ओ कोई बजराक धाक, आभै स्यूं पड़्यो घड़ो-सो रे।।
३३. नहीं नहीं, रोषातुर उतरी अरी ओपरी छाया।
ओ पिशाच या देत-प्रेत री आ अमानवी माया रे।।
३४. चटक-कटक जाणक पत्थर स्यूं, थर-थर धूजत धाया।
भीम-भयाकुल बोलै व्याकुल, खाया रे इण खाया रे।।
३५. एक-एक पर एक धड़ाधड़ कई पड़ै दड़बड़ता।
गोडा फोड़्या भर-अन्धेरै, आखड़ता रड़भड़ता रे।।
३६. भाग-भाग इक लाग-लाग कइ, पाग पानही भूला।
आ अब सभा-मंच अवलोको, मिलै न लंगड़ा-लूला रे।।
३७. दीक्षा-विषय समीक्षा री नहिं, कोई करी प्रतीक्षा।
निज कृत दुष्कृत परम प्रयोगे, मिली सलूणी शिक्षा रे।।

---

१. लय : बगीची निम्बुवां की
२. लय : म्हांरी रस सेलड़ियां

[1]परम गुरु पुनवानी।

३८. दूजै दिन बाजार में, हुइ दीक्षा निष्प्रत्यूह।
भारी जन-समुदाय में, कोइ करी न ऊह-पचूह।।
३९. जय-जय श्री छौगेय रा, है घुर्‌या भिवाणी शहर।
सुजश-नगारा सांतरा, घर-घर में लीला-लहर।
४०. पूज्य वेश की नकल कर, कोइ अपर उदंगल एक।
कियो विरोधी जन खड़्यो, प्रतिशोध-भाव अविवेक।।
४१. तिण में न हुवै सुगुरु रो, जदि उपशम रो उपदेश।
तो कलमथ माचै घणो, पर शान्त सहज संक्लेश।।
४२. हरियाणै री जातरा, भीवाणी चातुर्मास।
दूजे उल्लासे कही, ग्यारहमी ढाळ सुवास।।

ढाळः १२.

दोहा

१. 'बन्द रख्यो व्यापार निज, सारै चातुरमास।
माल धर्‌यो गोदाम में, भक्त द्वारकादास।।
२. सुखे-सुखे पावस करा, पूरी सेवा साध।
आपण खोली आपणी, सुमरत सुगुरु-प्रसाद।।
३. आई तेजी माल में, दुगुणा-तिगुणा दाम।
हाथोहाथ इंयां मिलै, सुगुरु-सेव-परिणाम[2]।।
४. मोच्छब अरु चौमास मैं, ले सारो परिवार।
दरसण करतो 'द्वारका', हर बरसे दो बार।।
५. कठिन-कठिनतर गोचरी, डरता रहता संत।
भक्त द्वारकादास पर, कालू-कृपा अनंत।।
६. थळी देश संपन्न-घर, शकट सैकड़ां साथ।
हरियाणै सेवा करी, रही प्रभावक बात।।
७. भीवाणी स्यूं मुनिपति, मिगसर मास सकाम।
ग्राम-ग्राम विहरत लियो, 'हांसी' पुर विश्राम।।
८. तीन रात विख्यात गुरु, स्थिति कीन्ही हिस्सार।
'कुरड़ी' 'बालसमंद' बलि, नजर 'डाबड़ी' डार।।

---

१. लय : बगीची निम्बुवां की...
२. सेंदू-बलदेव फर्म ने उस चातुर्मास में अपना पूरा व्यापार बन्द रखा था।

९. 'जीतपुरै' जय-जस वरै, 'भाद्रा' भद्रंकार।
चार दिवस उपकार कर, आगै कियो विहार।।
१०. पोष मास निरदोष गुरु, साक्षात शांत सरूप।
'सरसा' पुर पावन कर्‌यो, भैक्षवशासण-भूप।।
११. गळी-गळी में है खड़्या, थळी देश रा लोक।
पौर मनुज गौरव गिण्यो, विभुवर-वदन विलोक।।
१२. जमा हुवै तीनूं समय, श्रोतां रो समुदाय।
पूज्य-भारती टारती, हृदय-पिपासा प्राय।।
१३. आठ रात गणनाथ री, 'सिरसा' में शुभ दृष्टि।
'नोहर' निज पद-रज धरी, करी वचोऽमृत वृष्टि।।

[1]दिदारू डालिम-पटधर दीपै।

१४. साल सितंतर शोभै, मर्यादोत्सव मन लोभै हो। दिदारू...
सरदारशहर शुभ जोगै, सान्निध्य सुगुरु रो भोगै हो।। दिदारू...
१५. है छ्यासठ मुनिवर भेळा, शत अठरोत्तर सति मेळा हो।
तेबीस रात रहि स्वामी, राजाण[2] निगम-अनुगामी हो।।
१६. मुनि कनीराम तिण टाणे, आकस्मिक स्वर्ग प्रयाणे हो।
सुत शक्तमल्ल विरहाणो, आयुर्बल हीन पिछाणो हो।।
१७. रहि एक मास पुर मांही, निशि पांच विराजै बाही हो।
तनु-कारण-योग पराणे, अब आया पुर बीदाणे हो।।
१८. लै दीक्षा एकण साथे, वसु[3] वसु-पट्टाधिप हाथे हो।
है नूतन बात निराळी, सारां री खिली रूंवाळी हो।।
१९. अब छापुर पुर पड़िहारै, वसुगढ़[4] शुभ निजर निहारै हो।
है अठंतरै चोमासो, अभिनव-कमरो[5] सुखवासो हो।।
२०. पच्चीस संत सेवा में, गुणतीस सती स्थिर थामे हो।
इण संवत री पदयात्रा, चउशत माइल री मात्रा हो।।

---

१. लय : प्रीतमजी! हिव तुम वेग पधारो
२. राजलदेसर
३. आठ
४. रतनगढ़
५. महालचन्दजी-मोहनलालजी बैद का नवनिर्मित भवन, जो कमरा कहलाता है।

२१. गत बरसे हरियाणा में, हुइ पीड़ा गुरु-घुटणां में हो।
उपशान्त नहीं हो पाई, उपचार हुयो नहिं स्थाई हो।।
२२. बा व्यथा भिलाव-प्रयोगे, अब मिटी सुकृत संयोगे हो।
तप त्याग विविध प्रवचन स्यूं, पावस पूट्यो धृतिधन स्यूं हो।।
२३. पोह महिना में बीदाणे, तप-नवीनता तिण टाणे हो।
'सतरंगी' नै नवरंगी[1], मुनि अज्जा मांहि सुरंगी हो।।
२४. मर्यादोत्सव री मरजी, की चंदेरी गणिवरजी हो।
सतहत्तर मुनि संख्या री, इक कम द्विशती सतियां री हो।।

[2]मैं देखूं दृग डारी मूरत मनहारी।
हूं बार-बार सोहनी सूरत पर वारी।।

२५. पक्खी फागुण चौमासी, चातुरगढ़ जनता प्यासी।
शासन-शेखर आश्वासी, बरस वच वारी ३।।
२६. इक दिन व्याख्यान-छटा में, गणि गरजै सघन घटा में।
ज्यूं जीवन-शोधन कामे, करम-मल टारी ३।।
२७. वृंदावन मथुरा काशी, जासी तो पाप पलासी।
सुण-सुण मन आवै हांसी, बात दुनिया री ३।।
२८. गंगा गोमती त्रिवेणी, न्हा जीवन-नैया खेणी।
सब खपै पाप की श्रेणी, सहज सुविधा री ३।।
२९. तीरथ मंदिर की फेरी, है सुगम साधना सेरी।
बजवाओ तबला भेरी, हृदय बहला री ३।।
३०. यूं जल झूल्यां मल धोवै, केवल पूजा अघ खोवै।
तो सहु पहिलां शिव होवै, जलज मछियां री ३।।
३१. संयम तप साधन भारी, सत्संगति तीरथ वारी।
ल्यो डुबकी तन-मन डारी, उचित पथ चारी ३।।
३२. है इतर ग्रन्थ पिण साखी, जब पाण्डव शिव-अभिलाखी।
मधुसूदन निज मुख भाखी, असल उपरारी[3] ३।।

---

१. देखें प. १ सं. ६१
२. लय : सीपय्या! तेरी सांवरी सूरत पर वारी
३. देखें प. १ सं. ६२

३३. जो ग्रंथ भागवत बांचो, तो ढळै सांतरो ढांचो।
दो-दो मिल हुवै न पांचो, कहण कवियां री ३।।
३४. तन में जो चेतन बुद्धी, वनितादिक में निज बुद्धी।
मृण्मय में पूज्य-प्रबुद्धी, तीरथ धी वारी[1] ३।।
३५. पर नहिं अभिज्ञ जनता में, बो है गो-खर अभिधाने।
है दृष्टि विपर्ययता में, अधम अविचारी ३।।
३६. सुण गीर्वाणी गुरु वाणी, वैष्णव जन चिंता ठाणी।
आ बात कठै स्यूं आणी, भागवत वारी ३।।
३७. कर परामर्श परिसर में, सहु विज्ञ गजानन[2] घर में।
आ घटना धीमै स्वर में, सुणाई सारी ३।।
३८. बोलै पंडित हां भाई! है श्लोक भागवत मांही।
पण अर्थ हुवै यूं नांही, कहूं निरधारी ३।।
३९. सब मिलजुल गुरु-पद आवै, गुरु अर्थ यथार्थ बतावै।
पंडितजी शीष हिलावै, नहीं स्वीकारी ३।।

सोरठा

४०. पूछै विभु वर रीत, अर्थ करो पंडितप्रवर!
प्रबुध करै विपरीत, मुख ढांकी मूलार्थ रो।।
४१. कुणपादिक में जाण, आत्मादिक मति नहिं बहै।
बो गो-खर पहिचाण, तब गुरुवर प्रतिवच करै।।
४२. आदरियो संन्यास, थांरै मत पिण बहु मनुज।
तज संसार-विलास, ते पिण गो-खर ठहरसी।।
४३. शंकर-रचित सुवास, जो है 'चर्पट मंजरी'[3]।
तिण रो पिण अभ्यास, कियो क नहिं धीमन! कभी।।
४४. पंडितजी पभणंत, जो हि हुवो इण श्लोक रो-
अर्थ भागवत ग्रंथ, मिलै नहीं जो तुम कहो।।

---

१. देखें प. १ सं. ६३
२. पंडित गजानंदजी
३. देखें प. १ सं. ६४

[1]मैं देखूं दृग डारी मूरत मनहारी।

४५. मुद्रित भागवत मंगाई, श्रीधरी वृत्ति सह आई[2]।
निज शिष्य पास पढ़वाई, सकल सुणतां री ३।।

४६. तो मिल्यो अर्थ बो सागी, फरमायो ज्यूं बड़भागी।
सुण चतुरां मति चकरागी, विजय-ध्वनि भारी ३।।

४७. अब पंडितजी बिन बोलै, झट अपणो पंथ टटोलै।
उठ हालै होळै-होळै, सकल सहकारी ३।।

[3]दिदारू डालिम-पटधर दीपै।

४८. बीदासर पथ पधराया, गिरिगढ़ जन गौरव गाया हो।
उलसित दूजे उल्लासे, बारहवीं ढाळ प्रकाशे हो।।

ढाळः १३.

दोहा

१. गंगाशहर-निवासिया, वासी बीकानेर।
जगबंधव त्रिभुवन-विभव, वन्दै देव दिलेर।।

२. बीकायत व्यायतमुखी, खड़ी निहारै बाट।
क्यूंकर गुरुवर! वीसर्‌या, बीदायत रै ठाट।।

३. बीदायत बीकायते, ओ अंतर क्यूं पूज!
अन्तर्यामी! जो हुवै, कही बतावो गूझ।।

४. अवसर रो सविनय विनय, अनुनय देख अनल्प।
दियो ध्यान सम्मान-युत, कियो जाण संकल्प।।

५. तेरापथ बीदायते, त्यूं बीकायत हेत।
उद्यम लम्ब बिलम्ब बिन, सुणिए सभ्य! सचेत।।

---

१. लय : सीपप्या तेरी सांवरी सूरत पर वारी
२. देखें प. १ सं. ६५
३. लय : प्रीतमजी! हिव तुम वेग पधारो

[1]पूज्य पधार्‌या रे परिकर स्यूं,
सज्जन जन विधियुत वन्दे, पूज्य पधार्‌या रे...
मनु न्हावै सुकृत-समन्दे, पूज्य पधार्‌या रे...
उलसावै अति आनन्दे, पूज्य पधार्‌या रे...

६. गिरिगढ़ स्यूं गयवर सम गणिवर, बीकायत री बाटे।
सर्वश्रेष्ठ ज्येष्ठ महिना में, गंगाशहर सुघाटे।।
७. श्रद्धावान सुजान मनुज-घर मंगल-माला छाई।
धन्य दिहाड़ो धन्य घड़ी पुळ, घर में गंगा आई।।
८. पूज्य-पदाब्ज-पराग-पिपासी, भविक-भृंग बहु आवै।
गुण-गुंजार उदार-भाव-युत, झुक-झुक शीष झुकावै।।
९. पूज्य-पदार्पण श्रवण-सुणत ही, बीकायत रा वासी।
इतर मतालंबी कइ दंभी, अवलंबी दिल हांसी।।

देखो आया रे पन्थीड़ा,
अै अपणी पांत बढ़ाणै, देखो आया रे...
जो आता आणै-टाणै, देखो आया रे...
कांई करसी कुण जाणै, देखो आया रे...

१०. पहली तो छब्बीस बरस स्यूं, आया हा धसमसकै।
अबकै अभिनव नव बरसां स्यूं, पक्की कमरां कसकै।।
११. मानो बीकानेर शहर री, सैर करण अनुराग्या।
तज बीदायत बण व्यायतमुख, आवै भाग्या-भाग्या।।
१२. एक कहै आंरो मन उमग्यो, लग्यो 'बिकाणो' प्यारो।
करसी अठै पड़ाव जाव है, बड़ो लगाव विचारो।।
१३. कई कहै पहलां म्है कहता, इणरो बीज उखाड़ो।
वृद्ध हंस ज्यूं हंस-वंश नै, पिण अब बध्यो कबाड़ो[2]।।
१४. एक-एक आंगल नै पकड़ी, पकड़्यो चावै पूंचो।
अब तो लागै नाजुक धागै, बण्यो इरादो ऊंचो।।

---

१. लय : जिण घर जाज्ये हे नींदड़ली
२. देखें ष. १ सं. ६६

१५. भैया! ठहरे गंगाशहरे, जठै न अपणो जोरो।
भीनासर जिण वासर आसी, तब दिखलास्यां तोरो।।

पूज्य पधार्‌या रे परिकर स्यूं,
है सुगुण श्रमण बहु लारें, पूज्य पधार्‌या रे...
है भावुक श्रावक सारे, पूज्य पधार्‌या रे...
है खमा-खमा धुंकारे, पूज्य पधार्‌या रे...

१६. मास आसरे गंगाशहरे, अद्‌भुत आब उपाई।
अब भीनासर भाल विभासुर, विभुवर महर कराई।।
१७. स्थानकवासी तत्र निवासी, श्रावक लै अंगड़ाई।
करणो है शास्त्रार्थ पूज्य सह, साझ सबल सुघड़ाई।।
१८. श्री कालू गुरु सन्मुख, उन्मुख एक पारटी आई।
मानी कानीराम बांठिया, तिण में ख्याती पाई।।
१९. कुछ क्षण शिष्टाचार निभाकर चरचा शीघ्र चलाई।
'असईजणपोसणियाकम्मे' प्रश्न विषय सुखदाई।।
२०. पाठ 'असइजणपोम्मणिया' ओ सप्तम-अंगे[1] आयो।
'असंयति जन पोसणिया' क्यूं भीखणजी बणवायो?
२१. वारू बारह व्रत चउपाई, ढाळ आठमी ढारी।
जिन-प्रवचन रो एक वचन विघट्‌यां अनन्त-संसारी।।

समझो समझो जी गुरु-वाणी,
क्यूं भावुकता भवि प्राणी? समझो...
आ नहिं है बात अजाणी, समझो...
क्यूं है यूं ताणाताणी? समझो...

२२. स्वामी समझावै समभावे, सूत्र पाठ है सागी।
केवल अर्थ यथार्थ समर्थ्यो, भीखण गुरु बड़भागी।।
२३. पायचंद सूरी पिण इणरो करै समर्थन साचो।
असल उपासकदशा-सूत्र रो टब्बो क्यूं नां बांचो।।

---

१. उवासगदसाओ १/३८

गीतक छंद

२४. बांठियाजी तब हि विवदै हेतु ले व्यापार रो,
करै पोषण कर्म रो आदान टब्बा में खरो।
पूज्य भीखणजी अजी व्यापार नाम तजी कहै,
मात्र पोषण असंजम रो कर्म रो आदान है[1]।।

२५. शासनेश्वर ज्यूं जिनेश्वर, मधुर वाणी वागरै,
चउपई बारह व्रतां री, बांच सब भ्रमना हरै[2]।
ग्रही पूरब अंश तज अपरांश क्यूं अनरथ करै,
बांठियाजी सुमत साझी, क्यूं न अब सत्पथ वरै।।

[3]समझो-समझो जी गुरु-वाणी,

२६. परम पूज्य ले पड़त हाथ में, पूरो पाठ पढ़ायो।
बो ही भाव प्रभाव रूप में, सारां सन्मुख आयो।।

२७. सुण प्रत्युत्तर पृच्छकजी, अब दूजी बात सझाई।
यशोविलासे युग उल्लासे, ढाळ तेरमी गाई।।

ढाळः १४

दोहा

१. मानी कानीरामजी, वाणी वदै पिछाण।
जो पोखै व्यवसाय-हित, तो हो कर्मादाण।।

२. पिण बिण व्यवसाये करै, असंयति रो पोष।
तो तिणमें कुण दोष है? ओ मम प्रश्न सजोश।।

३. कर्मादान नहीं सही, तो पिण कर्म निदान।
नहिं निषेध तो वैध है, वदै विवादी वान।।

४. सूत्र भगवती रो सुभग, प्रगट विलोको पाठ[4]।
असंजती नै पोखियां, बधै पाप की बाट।।

१,२. देखें प. १ सं. ६७

३. लयः जिण घर जाज्ये है नींदड़ली

४. भगवई श. ८।२४७

५. वदै बांठियाजी तदा, सूत्र भगवती थाम।
सहसा सूयगडांग रो, काढ़ो पाठ प्रकाम।।
६. श्रीमुख स्यूं शासनमणी, शीघ्र तदा चित शांत।
एकादशमाध्ययन[1] रो, वर्णवियो वृत्तांत।।
७. पेखो प्रतिवादी कहै, सूत्रपाठ प्रत्यक्ष।
एकांतिक प्रतिषेध है, आर्हतमत-प्रतिपक्ष।।
८. समुचित उत्तर स्वाम रो, वर्तमान में तंत।
प्रश्नोत्तर कै रूप में, हां नां कहै न संत।।
९. वित्तिच्छेय करेंति ते, आ किरिया है अत्र।
वर्तमान री बोधिका, आलोचो एकत्र।।

[2]तेरापथ-नायक! दान दया स्थिर थापो।
अजि यूं क्यूं नाहक वीर-वचन उत्थापो।।

१०. तदा विपक्षी निजमत-पक्षी बोलै जोश भराणा।
जी! वर्तमान रो अर्थ मिलै नहिं पेखो सूत्र पुराणा।।
११. प्रगट रूप जिनराज भणै कोइ 'अस्ति नास्ति' मत गावो।
जी! वर्तमान अनुमान बहानै, भोळां नै बहकावो।।
१२. सूत्रकृतांग सूत्र री पड़तां करो सैकड़ां भेळी।
जी! एकण मांही देखण न मिलै उक्त अर्थ री शैली।।
१३. तब गणिराज पायचंद सूरी-कृत टब्बो[3] दिखलायो।
अरु शीलांकाचार्य आर्य-कृत वृत्ति-वृत्त[4] संभलायो।।

भावुक गुणभीना वीर-वचन अनुचालो।
मत-पक्षे पीना झूठी राह न झालो।।

---

१. सूयगडो श्रुतस्कंध १, अ ११, श्लोक १६-२१
२. लय : धीठा में धीठ मैं कहा बिगाड़ा तेरा
३. पायचंद सूरिकृत टब्बो
वर्तमान काले पामिवानो उपाय, तेहनो विघन करै ते अविवेकी।
४. सूत्रकृतांग वृत्ति पत्र २०५

१४. अबै बांठियो जबै जोर स्यूं, टीका मैं नहिं जाणूं।
जी! टब्बो पिण है थांरो लिखियो, क्यूंकर मैं परमाणूं?
१५. जती लिख्योड़ी प्रती पढ़्योड़ी, आ भी तो है थांरी।
जी! किंयां सुझाऊं? जाणबूझ जो मींचै आंख उघारी।।
१६. पूज्य शांत-चित गूंज वदै तब, वाणी अमिय-समाणी।
जी! 'मैं नहिं मानूं' इणरी औषध, जग में है अणजाणी।।
१७. बोलै बीकानेर शहर स्यूं, आछो पंडित ल्यास्यूं।
जी! पाछो आस्यूं भय नहि खास्यूं, टीका-अरथ करास्यूं।।
१८. अब उठ चल्या भले प्रतिशोध-भावना रो भ्रम ढोवै।
जी! गुरुवर प्रौढ़-प्रताप, सत्य रो बाळ न बांको होवै।।

[1]सारा शीघ्र पधारो जी, सारा शीघ्र पधारो जी।
तेरापंथ-संत सह चरचा, लाज बधारो जी।।

१९. दिन दो-च्यार विचार करंतां, ज्येष्ठ-पूर्णिमा आई।
बीकानेर शहर भीनासर, घर-घर खबर कराई।।
२०. बीकायत में लोक हजारां, स्थानक-मंदिर-वारा।
आटा मांही नमक जिता-सा, तेरापंथी सारा।।
२१. जोर तोर स्यूं हिलमिल चालो, चरचा-बात चलावां।
सूत्र कढ़ावां पाठ दिखावां, आत्मशक्ति अजमावां।।
२२. उत्तर और पडुत्तर में तो कानीराम करारो।
बाकी कानीं-कानीं रेस्यां, देस्यां क्यूंहिक स्हारो।।
२३. कवि वरवेश गणेशदत्तजी, संस्कृतज्ञ है साचो।
वृत्ति बंचावण साथे लेस्यां, ढळ्यो सांतरो ढांचो।।
२४. यश का भूखा बरबस मानव, बड़पण पावण धावै।
पण नहिं सोचै, कहिं अणजाणी उलटी आफत आवै।।

[2]देखो भवि-प्राणी! गुरुवर-पुण्य-निशाणी।
यूं हुवै अजाणी नाहक निज-मत हाणी।।

---

१. लय : रूठ्योड़ा शिवशंकर म्हारे घरे पधारो जी
२. लय : धीठा में धीठ मैं कहा बिगाड़ा तेरा

२५. इक्कां री असवारी भारी, कर-कर बीक्का आया।
जी! भीनासरवासी हठभीना, दृढ़ सीना कर धाया।।
२६. लोक सैकड़ां खड़ा-खड़ा यूं पायो पूज्य-ठिकाणो।
जी! राणोराण भराणो मंडप, पभणै तब गणराणो।।
२७. कुण-कुण अै किण कारण आजे सांझे सारा भेळा?
जी! साधु-समाजे नियम-लिहाजे, पड़िलेहण री वेळा।।
२८. अै पंडितजी और जतीजी, अै जैनी पीढ़्यां रा।
जी! चालू अपणी जो है चरचा, सुणणै उत्सुक सारा।।
२९. विनवै विज्ञ गणेशदत्तजी, साग्रह मुझनै आण्यो।
जी! पण म्हांरै हित अब लों जाबक, जैनधर्म अणजाण्यो।।
३०. कर आश्वस्त शांत-चित, गुरु गत-दिन वृत्तांत सुणायो।
जी! वर्तमान में मौन विबुधवर! म्है श्रुत-साखे गायो।।
३१. तूष्णीभाव त्रिकाल बांठियाजी सजोश बतलावै।
जी! संस्कृत-सूत्र-वृत्ति नहिं समझै, तिण स्यूं आग्रह ठावै।।
३२. म्है समझाया पिण पंडितजी! सूत्र-वृत्ति कर लीजे।
जी! कीजे अर्थ यथार्थ, बांठियाजी ज्यूं धीज पतीजे।।

तेरापथ-नायक! दान दया स्थिर थापो।

३३. कानीराम जबानी जबरन, आनाकानी ठाणी।
जी! उण दिन तो आ बात नहीं थी, आज कठै स्यूं आणी?
३४. यूं पहिलां ही निज मनचाही, खींचाताण मचाई।

जी! मच्यो शोरगुल जुळबुळाट-सो, क्षणिक अशांती छाई।।

निज आग्रह-भीना! वचन विचारी बोलो।
मत-पक्षे पीना! मत नां ल्यो यूं ओलो।।

३५. गण-आखण्डल जनमण्डल में, सावण-घन ज्यूं गाजै।
जी! सभा-समक्षे विवित विभाषी, मोटा माणस बाजै।।
३६. झूठो बोलै जो अणतोलै भवसागर में डोलै।
जी! इण भव नीति प्रतीति गमावै, परभव ज्यान झकोलै।
३७. थां म्हां बिच जो चरचा चाली, अब यूं क्यूं टाळीजे।
जी! शंका कीजे प्रतिवच लीजे, नहिं तो स्वीकृत कीजे।।

३८. पूज्य-वचन रै प्रवर प्रभावे, सहज शांति सरसावै।
जी! ढाळ चवदमी विकथा विगमी, सयण! सुणो समभावै।।

ढाळः १५.

दोहा

१. पंडितजी पभणै तदा, वृत्ती बांचण हेत।
मुझनै तुम आण्यो अठै, स्मरण करो संकेत।।
२. सकल सरल-चित सांभलो, शासन-ईश समक्ष।
टीका अर्थ यथार्थ ही, प्रगट हुसी प्रत्यक्ष।।
३. आगम गाथा-षट्क की, टीका पढ़ी तुरंत।
पूज्य पठित परमार्थ ही, सिद्ध हुयो एकंत।।
४. सहु साखे आखे सुधी, जुदी न राखै बात।
साम्प्रत नहिं भाखै श्रमण, अस्ति नास्ति अवदात।।
५. पिण त्रिकाल री मौन तो, कौन विलोकी अत्र?
जो न हुवै दिलखातरी, तो पढ़ देखो पत्र।।
६. क्रुद्ध विरोधी-पक्ष-जन, वचन-युद्ध प्रारब्ध।
दूजी बार विचार फिर, अर्थ करो उपलब्ध।।
७. विज्ञ भणै, अनभिज्ञता जाहिर हुसी निकाम।
किस्यो पिष्ट-पेषण बले, नवो नीकलै नाम?
८. अब तो कानीरामजी! छानी रही न लेश।
स्वीकारो सद्गुरु-कथित, एकमना अकिलेश।।
९. जपै जतनमलजी तदा, कोठारी बीकाण।
इण चरचा नै छोड़ नै, पूछो दूजी छाण।।
१०. स्वामी साहस स्यूं कहै, एक करै स्वीकार।
तब ही दूजै प्रश्न रो, वारू रूप विचार।।
११. कोठारी—इण प्रश्न में, मानो म्हांरी हार।
अपर प्रश्न पूछा करां, अब तो है अधिकार?
१२. वदै बांठियाजी तदा, मैं नहिं मानूं हार।
वर्तमान री मौन पण, मुझनै अस्वीकार।।

[1]छटा छोगां-सुत री छाई।
यशोगाथा गुणिजन गाई।।

१३. विशद वच स्वामी अब भाखे, पडुत्तर म्हांरो सहु साखे,
यदिच्छा मानो मत मानो, मुधा मत पक्षपात तानो।
आगम अर्थ समर्थ-बल, है म्हांरो उपदेश,
जोरीदावै किंयां मनावै, देखो वीर जिनेश।
जमाली वाली जड़ताई[2]।।

१४. ऊठ-उठ सहज शान्त सारा, सिधाऱ्या निज घर परबारा,
सत्य सिद्धान्तां रै स्हारै, चलै बो क्यूं किणरै सारै?
निज पंडित स्यूं निज विजय, आशा अपरंपार,
पर सद्भाव सरलता बिन, निज घातक निज हथियार।
सार है जग में सच्चाई।।

१५. पधारे बलि गंगाशहरे, युगल दीक्षा-झण्डी फहरे,
स्तोक दिन पावस बिच ठहरे, लगी आवन सावन-लहरें।
बीकाणै गंगाण रा, विनवै वासी लोग,
पूज्य प्रकाशो अब चोमासो, बीकानेर विलोग।
सुखद संजोग मिल्यो आई।।

१६. लही निर्देश मगन स्वामी, निहारै आश्रय अनुगामी,
वेग बीकाणै चल आया, निकेतन नेक निजर ठाया।
चौक रांगड़ी रै निकट, ओक विलोकै एक,
'लाल कोटड़ी'[3] खड़ी करै मनु अम्बर सह आरेक।
देख गुरु-चरणां दरसाई।।

१७. विरोधी सला करै छानै, रखै पंथी पावस ठानै,
स्थान अन्वेषण अनुमानै, विमर्शण करणो आपां नै।
अज्ञानी मानी वदै, क्यूं अकल्प्य आभास?
भूलै-चूकै कभी न ढूकै चरण करण चउमास।
खास बीकाण ठाण ठाई।

---

१. लय : निमित नहिं भाखै गुरु ज्ञानी
२. देखें प. १ सं. ६८
३. सुमेरमलजी बोथरा का मकान

१८. कठै है अठै भक्त-टोळी भरै जो झरझरती झोळी,
नहीं जनता भाळी-भोळी, धरै जो रोक रूप्य नोळी।
मनमानी मोजां मिलै, रोजानां जिण देश,
ठावै ठाणो आणो-जाणो है न पसंद हमेश।
रेस आ पन्थ्यां री पाई।।

१९. अठै हां आपां ही आपां, इंयां रो मूल जड़ां कापां,
टिप्पण्यां छाप-छाप छापां, प्रतिष्ठा पहली उत्थापां।
इण भय स्यूं आवै नहीं, ओ निश्चय इकरार,
जो आवै तो एक-एक रा, लाख-लाख कलदार।
धार ल्यो दिल में दृढ़ताई।।

२०. आज आषाढ़ शुक्ल नवमी, पधारै पावस हेत यमी,
शहर में चहल मची भारी, परस्पर प्रश्नोत्तर जारी।
आया आया सब कहै भीखण-गण-भरतार,
कणां कणां! यूं विस्मित पूछत, देख्या हणां-हमार।
नार-नर लार हजारां ईं।।

२१. चळकतो चळक-चळक चेहरो, मलकतो श्रमण-संघ-सेहरो,
विलोकन खलक-मुलक भेरो, अलख छक खमा-खमा केरो।
द्वेषी दिल द्विगुणित हुयो, द्वेष-भाव उद्भाव,
प्राप्त घृताशन जिंयां हुताशन, मानो तिण प्रस्ताव।
घाव पर ठोकर है खाई।।

२२. करी चरचा भीनासर में, जरा भी असर नहीं स्वर में,
अबै आ आय बणी घर में, फबै उद्यम निशि वासर में।
ज्यूं बीकायत में बली, कदै न आवै चाल,
यशोविलासे युग उल्लासे, तुलसी गणी रसाल।
ढाळ आ पन्द्रहवीं गाई।।

ढाळः १६.

दोहा

१. दूजे उल्लासे सही, दीक्षा व्यतिकर देख।
पाठक सुविधा-हित करूं, एकत्रित उल्लेख।।

सोरठा

२. सित्तर[1] फाल्गुन मास, वैगाणी विरगत हृदय।
सपत्नीक[2] सोल्लास, संयम लियो हुलासमल।।
३. तपी तपस्या खास, पक्ष मास दो मास तक।
लघुसिंह[3] विमल विकास, तीन करी परिपाटियां।।
४. आतापन अधिकार, ओढी एक पछेवड़ी।
बरसां लग इकसार, कृपापात्र श्री पूज्य रो।।
५. वैरागी बागोर-वासी वृद्धीचन्द वर।
दीक्षित शक्ति बटोर, इकोत्तरै आसोज में।।
६. सुत-माता अनुकूल, मोती फूलां लाडणं।
भाव-झूलणै झूल, मिगसर में संजम लियो।।
७. चोरड़ियो शिवराज, बड़ू ग्राम रो वासियो।
सपत्नीक[4] शिव-काज, ब्यावर में चारित लियो।।
८. प्यारी प्यारां मात, कानूड़ो रूड़ो मुनि।
पुर दीक्षा गुरु-हाथ, वर्ष बहोत्तर चेत सुद।।
९. रतनां पत्नी साथ, इमरतमल बीदाण रो।
दीक्षा अनुपम आथ, नाथदुवारै जेठ बिद।।

लावणी छंद

१०. अब गोगुन्दै आषाढ़ मास सुख माणी,
गुरु-चरणां च्यारूं दीक्षा हुई सुहाणी।
धनजी बेमाली छोगो बोराणै रो,
भूरांजी निजरकुंवारी कन्या हेरो।
उदियापुर में बलि तीन बहोत्तर मिगसर,
लै भागचन्द अरु शोभाचन्द चरण वर।
सीसाय-निवासी दया दया दिल धारी,
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।

---

१. वि. सं. १९७०
२. हुलासमलजी की पत्नी का नाम मालूजी था।
३. देखें प. १ सं. ४२
४. शिवराजजी की पत्नी का नाम हुलासांजी था।

११. रीछेड़-निवासी भागचन्द पो. सुद में,
पाली में दीक्षा च्यार सहज सुधबुध में।
बीदाण-वास गुरु-चरण गुमान गह्यो है,
नथमल-बागोरी भारी कष्ट सह्यो है[1]।
पन्नां भीखां बीदाणै री मां-बेट्यां,
तनसुख-सुखदेवां[2] लफरा सकल समेट्यां।
वैशाख शुक्ल बालोत्तर ध्रुवपद चारी,
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।
१२. जीवण जसोल, नोरंग फूल जोधाणै,
है तिहोत्तरै तीनूं दीक्षा शुभ टाणै।
पटुगढ़ फागण में रामचन्द्र लिछमांजी,
बंधव-भगिनी दे दी जीवन की बाजी।
बिद चेत बिदाणै संयम सती प्रतापां,
चोमास चिहोत्तर में भव-बंधन कापां।
हीरो शिशु-सोहन लिछमां साथै माता,
नानूजी उदयपुरी है पाई साता।
तार्‌या श्रीकालू करुणा-दृष्टि निहारी,
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।
१३. आसोज महीने भीनासर तिण वर्षे,
पृथ्वी-कर दीक्षित मां-बेट्यां[3] मन हर्षे।
गंगा-सति लुंचित केश महेश-महर में[4],
नोजां मालू लिछमां सरदारशहर में[5]।
पन्नां पत्नी सह हमीर गंगाशहरी,
तिण ही पुर जेठ मास गुरु-करुणा गहरी।
आकस्मिक पुर-पुर प्रसरी प्लेग बिमारी,[6]
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

---

१. देखें प. १ सं. ६६
२. मुनि तनसुखदासजी और सुखदेवांजी संसार-पक्ष में पति-पत्नी थे।
३. साध्वी मूलांजी, साध्वी चांदकंवरजी (भीनासर)।
४. साध्वी मूलांजी और चांदकंवरजी का प्रथम केश-लुंचन साध्वी गंगाजी के द्वारा हुआ।
५. वि. सं. १९७४ कार्तिक मास में
६. वि. सं. १९७४, १९७५

दोहा

१४. वर्षा विपुल चिहोत्तरै, पिचत्तरै की प्लेग।
फैली ग्रामोग्राम में, जन संकट अतिरेग।।
१५. मौत घाट उतर्‌या घणां, आकुल-व्याकुल लोक।
शहर गाम खाली हुया, भगदड़ मची विलोक।।
१६. नोबत आई, लाडणूं को उठसी स्थिरवास।
हिम्मत राखी कइ जणां, नहिं खोयो विश्वास।।
१७. अगवाणी चंडालिया, दृढ़मन दास गणेश।
पच्चीसूं परिवार मिल, साझी सेव हमेश[1]।।
१८. रह्या जिका में एक भी, महामारी री फेट।
नहिं आयो, भाग्या जका कइयक मिटियामेट।।
१९. थिर-थाणे संतियां रह्या, आ अवसर री बात।
रहसी जुग-जुग जीवती, तेरापथ प्रख्यात।।

लावणी छंद

२०. सावण सुद बारस दीक्षा इन्द्रूजी की,
गढबोर निवासी वेरागण अति तीखी।
सुद चवदस माघ पिचत्तर चातुरगढ़ में,
लै दीक्षा करत विभेद चेतना जड़ में।
मुनि तोलाराम युगल इन्द्रू इक सेरां,
अब छिहंतरै बीदासर वास बसेरां।
भाद्रव जगनाथ मनोरांजी ली दीक्षा,
राजां लिछमां आसोज मास गुरु-शिक्षा।
कस्तूरां आशां कार्तिक कर्म विडारी,
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।
२१. सरदारशहर मोच्छब पूसो पुरवासी,
चूरू में सोनां मनोहरां व्रत-प्यासी।
साध्यो संयम ऊदांजी अब टमकोरां,
नृपगढ़ बैशाखे सुन्दर सती सजोरां।

---

१. देखें प.: १ सं. ७०

हरियाणै अब हीसार शहर सुद ग्यारस,
मां-बेट्यां[1] भेट्या श्री सद्गुरु पद-पारस।
संतोकां नोजां हांसी में हुसियारी,
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

दोहा

२२. चंदन मुनि केसर सती, गीगां और मनोर।
भीवाणी चौमास में, च्यारूं चरण सजोर।।

लावणी छंद

२३. सुद माघ चोथ सरदारशहर सतहत्तर,
अमरो दोलां दो दीक्षा श्रीगुरुवर-कर।
रमकूजी मा. सुद चवदस अब बीदाणै,
है एक साथ वसु दीक्षा भाग्य प्रमाणै।
नोहर रो कुंभकरण, मंगत सुत[2] साथे,
मुनि सूरज और सुपारस हाथो-हाथे।
चम्पां संतोकां चूनां चतुर विचारी,
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

दोहा

२४. निजरकुमारी लाडनूं[3], अठंतरै री साल।
दीक्षा पूनम जेठ सुद, धर वैराग्य विशाल।।
२५. हरनावां रो हरस धर, तपसी ऋषि जसराज।
अठंतरै रै भादवै, वसुगढ़ संयम साझ।।
२६. फूलकुंवारी जयपुरी, सुरजां भाद्रा वास।
मिगसर सुद राजाण में, दी दीक्षा सोल्लास।।
२७. भोमराज मुनि चोपड़ा, गंगाशहर निवास।
अठंतरै कार्तिक सुदी, दीक्षा दिव्य प्रकाश।।

---

१. साध्वी संतोकांजी, साध्वी मनोहरांजी
२. मुनि तोलारामजी
३. देखें प. १ सं. ७१

२८. पो. सुद मोतीजी पट्यो, मा. बिद धन्यकुमार[1]
मा. सुद हस्तीमल्लजी, शिव-बंधव[2] सुविचार।।

लावणी छंद

२९. बिद चेत चतुरगढ़ अठंतरै दीक्षा त्रय,
साजनवासी रो दुलीचंद मुनि निर्भय।
सोनांजी पुत्री, मगनां राजाणे री,
श्री कालू चरणां अर्पित, करी न देरी।
धनराज दसाणी फतेचन्द सीसायी,
आषाढ़ मास गंगाणै गुरु-अनुयायी।
'सव्वं सावज्जं जोगं' पचखै भारी,
दूजे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।
३०. सितरै स्यूं अठंतरै तक दीक्षा-लेखो,
एकत्रित वर्णित पाठक दर्शक देखो।
कल्याण-पंथ अनुगामी घणां बण्या है,
शासन रै प्रौढ़ प्रतापे बण्या ठण्या है।
कइ सँहसमल्ल तोलू-सा गण स्यूं छूट्या।
जाणै संच्योड़ा सुकृत समूचा खूट्या।
दूजे उल्लासे ढाळ सोळमी सारी,
श्रोता-जन! निसुणो आगल कथा करारी।

गीतक छंद

३१. जर्मनी विद्वान जेकोबी-समागम-श्रुत-मनन[1],
मेवाड़ मरु-भूमि-भ्रमण[2] रघु-मिलन[3] हरियाणै-गमन[4]।
शास्त्रार्थ भीनासर विजयवर[5] चरण-वरण विलास[6] में,
षट दस सुढाले दुरित टाले, दूसरै उल्लास में।।

---

१. साध्वी धनकंवरजी
२. मुनि शिवराजजी के संसारपक्षीय भ्राता

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

प्रातः पक्ष्यपि यस्य गायति नुतिं ह्यत्युर्जितैः कूजितैः,
नानाकाव्यकलापकैरिह यशो ढक्कामिषं ढौकते।
कीर्तिर्नृत्यति नर्तकीव नितरां जिह्वांगणे सद्धियां,
तद्वृत्ते तुलसीकृते सुललितोल्लासे द्वितीयोऽगमत्।।

प्रातःकाल पक्षी भी अपने उच्च स्वरों (कलरव) से जिनकी स्तुति करते हैं, विविध काव्य-कलापों के माध्यम से जिनका यशं दुन्दुभि बन रहा है, जिनकी कीर्ति सुधी-जनों की रसना पर सदा नर्तन करती रहती है, उन कालूगणी के जीवन-वृत्त में, जो कि आचार्य तुलसी द्वारा रचित है, यह सुललित दूसरा उल्लास सम्पन्नता पर है।

उपसंहृतिः

आचार्य-तुलसी-विरचिते श्री-श्री-कालूयशोविलासे

१. जर्मन-विषय-वास्तव्य-भव्य-हर्मन-जेकोब्यागमन-विविध-सार्वज्ञ-श्रुत-विषय-मन्थन-पूर्वक-मनन...
२. मेदपाट-मरुस्थल-राजधन्यां श्री-शासन-शिरोमणेर्युगल-चतुर्मास-पर्यन्तं सुखपूर्वक-निवसन...
३. आशुकविरत्नायुर्वेदाचार्य-पंडित-रघुनन्दन-मिलन-पूज्यपादाम्बुज- भृंगायमाणेन स्वजीवन-समर्पण...
४. हरियाणा-प्रवेशे भिवानी-चतुर्मासे भीषण-दीक्षा-प्रतिपक्षाविर्भाव-प्रतिकूल-पवन-प्रेरित-विदभ्राभ्रवत् तिरोभवन...
५. बीकायतं धर्मायतं कर्तुं स्व-शिष्य-परिवृत-पादार्पण-भीनासर-शास्त्रार्थ- सहज-विजयश्री-वरण...
६. १९७० वर्षाद् बीदासर-चतुर्मासादारभ्य १९७८ वर्षपर्यन्तं बहुसुकुमार-कुमार-कान्त-कान्ता-भव-भ्रान्ति-वैरक्त्यपूर्वकगुर्वंह्रि-सरोरुह-राजहंसत्व-स्वीकारणेन श्रमण-संघ-विकास-रूपाभिः षड्भिः कलाभिः समर्थितः षोडशगीतिकाभिः सन्दृब्धः समाप्तोऽयं द्वितीयोल्लासः।

तृतीय उल्लास

शिखरिणी-वृत्तम्

सदा यस्यास्याब्जं रविरपि लुलोके सखिधिया,
स्फुटं दृष्ट्वा रात्रिंदिवमहह चन्द्रोऽपि चकितः।
अहो भव्या भृंगा अजलजमपि प्रेक्ष्य मुदिता-
स्तदाख्यानोद्यानेऽहमलिरिव मोदादभिरमे।।

जिनके मुख-चंद्र को सूरज भी सदा मित्र-भाव से देखता, जिनको दिन-रात समान रूप से उदित देखकर चंद्रमा विस्मित रह जाता, जिनका मुख-कमल जलज न होने पर भी भव्य-भ्रमरों को प्रमुदित करने वाला था, उन (कालूगणी) के आख्यान रूप उद्यान में मैं भ्रमर की तरह प्रसन्नता से रमण करता हूं।

मंगल वचन

दोहा

१. नमो वीर-मुख भारती, भविक भा रती हेत।
लहै मूक नर भारती, वाणी रै संकेत।।

मैं भगवान महावीर के मुख से उद्धृत भारती [वाणी] को नमस्कार करता हूं। उसकी आराधना से भव्य जन आभा और आनंद को प्राप्त कर सकता है। उस वाणी से एक संकेत मिल रहा है कि उसके प्रभाव से गूंगा व्यक्ति भी बोलने लगता है।

२. ईभारी छारी अहो! वारि पिये इक घाट।
मंजारी-मूषक मिलै, खिलै प्रेम की बाट।।

३. अश्व-महिष अहि-नकुल किल, हिलमिल करत मिलाप।
जिनवाणी रो ही सकल, अद्भुत प्रौढ़ प्रताप।। (युग्म)

जिन-वाणी का प्रताप अद्भुत और परिपक्व है—अच्छा परिणाम देने वाला है। उससे सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं। बिल्ली और चूहा—दोनों परस्पर मिलते हैं, उनमें प्रेम की वाटिका खिल जाती है। अश्व और महिष, सर्प और नेवला—ये परस्पर प्रेमपूर्वक मिलते हैं, यह सारा जिनवाणी (वीतराग-वाणी) का ही प्रभाव है।

४. मनु संस्कृत वैयाकरण, सुमरत मन जिनतत्व।
कियो द्वन्द्व में उचित ही, नित्य-वैरि-एकत्व।।[1]

---

१. देखें प. १ सं. ७२

मैं जानता हूं कि संस्कृत व्याकरणकारों ने वीतराग की अहिंसा-प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर ही नित्य विरोधी प्राणियों के द्वन्द्व समास में एकत्व का नियम बनाया है।

५. 'अद्धमागही' माग ही, वीतराग मुख-वाग।
सुर-नर-तिरि निज-निज गिरि, समझै सकल सुभाग।[1]

वीतराग-मुख से निकली हुई अर्धमागधी वाणी मार्ग बन गई। देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सब सौभाग्यशाली प्राणी उसे अपनी-अपनी भाषा में समझ रहे थे।

६. प्रमित वरण विवरण अमित, निहित हिताहित भान।
पणती वा गिणती नहीं, करतां गुण-संख्यान।।

तीर्थंकर की वाणी में वर्ण प्रमित (सीमित) हैं और उसका विवरण अमित है [प्रमाण-रहित] है। उसमें हित और अहित का विवेक निहित है। उसके पैंतीस अतिशय बतलाए गए हैं। यह एक सामान्य अवधारणा है। उस वाणी के गुणों की संख्या करें तो उसके अतिशयों की संख्या नहीं की जा सकती।

७. वाग्देवी देवी करी, सेवी सुज्ञ सुजात।
पर बरबस सुणकर बच्यो, रौहिणेय विख्यात[2]।।

सुज्ञ और सुजात व्यक्तियों ने उस वाग्देवी की देवी के रूप में सेवा कर अपना कल्याण किया। और क्या, अनचाहे ही महावीर-वाणी को सुनकर रौहिणेय चोर भारी संकट से बच गया। घटना प्रसिद्ध है।

८. श्रुतविशारदा शारदा, वरदा भवतु सदेव।
अब तीजै उल्लास री, रचना रचूं स्वमेव।।

वह श्रुत विशारदा शारदा (सरस्वती) सदा वरदाई हो। उसका वरद योग पाकर मैं स्वयमेव तीसरे उल्लास की रचना कर रहा हूं।

---

१. देखें प. १ सं. ७३
२. देखें प. १ सं. ७४

ढाळः १.

दोहा

१. बीकानेर प्रवेश पर, विभुवर करै विचार।
विद्वेषी करसी सही, खार-भार-उद्गार।।
२. नित्य उठासी नव-नवा, अजब उदंगल एष।
धर्मयुद्ध रचसी सही, असंदिग्ध अविशेष।।
३. करणो कड़ो मुकाबलो, भरणो शस्त्रागार।
अणजूंझे गूंजे नहीं, विजय-दुन्दुभि द्वार।।
४. क्षमा खड़ग कर धर सुभग, धर्म-ढाल दृढ़ ढाल।
शास्त्र शस्त्र जिन-वच कवच, प्रत्याक्रमण कराल।।
५. मुनिपराज आवाज युत, मुनिगण चमू-समूह।
समुदित कर प्रमुदितमना, विरचै शिक्षा-व्यूह।।

[1]सहु साचै मन सेवो हो, गुरुदेवो देवै सीखड़ी।
नहिं तिण सरिखो मेवो हो, स्वयमेवो साकर सूंखड़ी।।

६. निसुणो श्रमण सयाणा! हो, जिन आणा में आखी अणी,
रहणो बहणो महितल सकल सचेत।।
पग-पग जयणां राखो हो, मत झांको मारग स्यूं परै,
भी-भारी रो स्मरण करो संकेत[2]।।
७. ओ बाजै बीकाणो हो, तुम जाणो या जाणो नहीं,
आपाणो है थाणो महिनां च्यार।
मानव अत्र निवासी हो, अभ्यासी विविध विवाद रा,
धर्माभासी आदत स्यूं अनुदार।।
८. करसी ही मनमानी हो, अज्ञानी असदालोचना,
नहीं अजाणी आ तो बात लिगार।
साहस जेतो सझसी हो, नहिं तजसी केड़ तुमारड़ो,
छेड़छाड़ तो होसी ऊठसवार।।

---

१. लय : महिलां रो मेवासी हो लसकरियो
२. देखें प. १ सं. ७५

९. क्षमा क्षमाधर सरखी हो, मन क्षमता मुनिवर! राखज्यो,
क्षमा-मूल है श्री जिनवर रो माग।
जीभ झरै जब गाळी हो[1], निज आतम काळी बो करै,
समताशाली सदा वरै सौभाग।।
१०. मानव एक अभागो हो, तज लज्जा लागो नाचणै,
तिणरो सागो कहो करै को अन्य।
ओ उपनय दिल धारी हो, परबारी टारो रीसड़ी,
खरी क्षमा स्यूं सहणो वचन-अजन्य।।
११. अस्त्र-शस्त्र बिन अड़णो हो, कांइ लड़णो लाघव लार लै,
भिड़णो भांपण आपणड़ो अणमेल।
बिन जंजीरे जड़णो हो, आभड़णो नहिं दिल वैर नै,
क्षमा-धर्म रो धारो सारो खेल।।
१२. तहत विनययुत वाणी हो, गुणखाणी जाणी स्वीकरी,
दृढ़ता ठाणी सारो श्रमण समाज।
श्रावक-जन-समुदाये हो, गणिराये प्राये प्रेम स्यूं,
पाथो भाथो शान्त-सुधारस प्राज।।

समता रो सुरतरियो हो, मनगमता फल दै सर्वदा।
सेवै जो गुणदरियो हो, दिल भरियो देवी-सम्पदा।।

१३. प्रतिपक्षी प्रारंभ्यो हो, आलंब्यो सहु मिल सांमठो,
पंथ-पथाधिप निंदा रो निर्माण।
पुरवासी कोई जाणै हो, नहिं जाणै ख्याती पूज्य री,
मानो स्वयं प्रतिष्ठा रो सुविहाण।।
१४. भीखण रा भरमाया हो, अै आया तेरापंथिया,
दान दया रा पाया दिया उखार।
भूखो मांगै टूको हो, घर ढूको किण रै बापड़ो,
तिणनै दीधां धरम न पुण्य प्रसार।।
१५. मरता जीव बचावै हो, कोइ ल्यावै करुणा कारुणी,
दिलड़ो भीजै पोखीजै छह काय।

---

१. देखें प. १ सं. ७६

बद बद पाप बतावै हो, बहकावै अणपढ़ आप-सा,
चोड़ै-धाड़ै हा! हा! रे अन्याय।।
१६. वीर विभू तो चूक्या हो, गुरु कूक्या श्री रघुनाथजी,
दया धर्म रो मूल कियो व्यपनाश।
आं तीनां बिन कोरी हो, सीनाजोरी जड़ता भरी,
म्हांरै मन में ओ मोटो उपहास।।
१७. इसड़ा छापा छाप्या हो, अणमाप्या मान मरोड़ में,
हाथो-हाथे आप्या इश्तीहार।
भींतां-भींतां थाप्या हो, नहिं माप्या जावै माप स्यूं,
तो पिण दिल में धाप्या नहीं लिगार।।

केती धूम मचावो हो, मन मोद मनावो नाच नै।
आखिर तो पछतावो हो, जग आंच नहीं कोइ साच नै।।

१८. गळियां-गळियां रळिया हो, आफळिया बळिया बावळा,
भीषण-भीषण भाषण किया अथाग।
बेहद शब्द उचार्‌या हो, अविचार्‌या मानवता तजी,
गेहरिया मनु फिरिया खेलण फाग।।
१९. कइ नर खोली नोळ्यां हो, दिल होळ्यां होळी पाड़णै,
ओळ्यां-दोळ्यां फिर-फिर रातो-रात।
भ्रमना-भस्म विलेपी हो, गुरु-निन्दा गेरू गोठवी,
जाबक बणग्या बाबाजी री जात।।

दोहा

२०. सन्त सत्यां प्रतिदिन सही, गाळ्यां री बौछार।
रूपां जतणी राखती, सतियां री संभार।।
२१. पथ में आवत-जावतां, नाना रंग बिरंग।
सह्या उपद्रव शांतमन, नित-नित नया प्रसंग।।
२२. धैर्यध्वंसिनी धृष्टता, अमानुषिक आचार।
क्षमाशील क्षमता परै, तर्कण-सो तकरार।।

२३. आज रांगड़ी चौक में, भीषण हुसी भिड़ंत।
सहनशीलता री अरी, सीमा होवै अंत।।
२४. सुमेरमलजी बोथरा आदि श्राद्ध-समुदाय।
उद्यत करण मुकाबलो, अणसहता अन्याय।।
२५. सुणी खबर कालूगणी, अणी टाळणै हेत।
उपशम री ताणी तणी, मगन संत संकेत।।
२६. मगन याद करतां तुरत, आया सेठ समेर।
सामायिक पचखाय दी, टळी लड़ाई-टेर।।
२७. सेना रही अडीकती, सेनानी जब कैद।
सारी समझाई स्थिती, सूक्यो सारो स्वेद।।
२८. वार्‌या बालक बोथरा, देखी दूध-उफाण।
श्रीकालू वचनामृते, सिंचित उचित प्रमाण।।
२९. पुरजन-मन रोषाग्नि रो, प्रतिदिन बध्यो प्रकोप।
पूज्यप्रवर रो प्रबलतम, उपशम-भाव अनोप।।
३०. ज्वलन-ज्वालमालाकुला, दुनिया में दुर्लंघ।
जल-जाला जाहिर हुयां, हुवै अनोखो रंग।

सोरठा

३१. इकतरफो आक्रोश, द्वेष-दाव सारै शहर।
ओ आक्रमण सरोष, निसुणी 'गंगासिंह' नृप।।
३२. मुखिया-मुखिया लोक, तीनूं ही समुदाय रा[1]।
तेड़्या नृप निज ओक, उद्यम सामंजस्य-हित।।
३३. लिखवायो इकरार, हस्ताक्षर सबरा हुया।
नहिं भविष्य में वार, कोई किण ऊपर करै[2]।।
३४. क्षणिक कलह उपशांत, मिटी न मन की मूर्छना।
समझौतै उपरांत, बो ही पथ बा ही क्रिया।।

---

१. जैनधर्म के तीन सम्प्रदाय—मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापन्थी।
२. महाराज गंगासिंह के पाटवी कंवर (बीकानेर राज्य के तत्कालीन गृहमंत्री) श्री शार्दूलसिंहजी ने वह इकरारनामा लिखवाया।

३५. निम्नस्तर रा लेख, पेंफलेट अरु पुस्तिका।
द्वेषभाव उद्रेक, सारी सीमा लांघ दी[1]।।
३६. तेरापन्थी लोक, आखिर बो साहित्य ले।
अवसर वर अवलोक, भेंट कियो दरबार-कर।।
३७. बीकानेर नरेश, अरे! बड़ो अन्याय ओ।
लज्जा रो नहिं लेश, निज कर स्यूं लिख मुकरणो।।
३८. कीन्हो नरपति कोप, फिर तीनूं भेळा किया।
एक-एक आरोप, प्रबल जांच पड़ताल की।।
३९. रद्द कियो इकरार, अटल न्याय आखिर कियो।
धूज्या सब सुणणार, सिंघ-गर्जना-सी करी।।
४०. देश-निकाळा दोय, जब्त कियो साहित्य सो।
और मुचलका होय, करी कड़ी चेतावनी।।
४१. रह्या प्रभावित राज, तेरापथ री नीति स्यूं।
शांतिभाव शुभ साझ, कीन्ही धर्मप्रभावना।।
४२. बोलै नृप बीकाण, थे अपणै सत्पथ चल्या।
तिणरो ओ फल जाण, परतख इज्जत पेखल्यो।।
४३. राजवर्ग रा लोक, जो आया इण चक्र में।
पाई पावांधोक, आजीवन नहिं भूलसी।।
४४. आंकीज्यो इतिहास, राजगजट बीकाण रो[2]।
सहज हुसी आभास, कालू पुण्य-प्रभाव रो।।

[3]समता रो सुरतरियो हो, मनगमता फल दै सर्वदा।

४५. भारी संगर माच्यो हो, अणजाच्यो नाच्यो व्यंतरो,
रग-रग राच्यो विद्वेषी दिल व्यंग।
जय जग जीवन प्यारा हो, रखवारा सारै संघ रा,
बिन हथियारां सहज्यां जीत्यो जंग।।

---

१. महाराज गंगासिंहजी के विदेश जाने के बाद प्रतिपक्ष की ओर से निम्नस्तर का साहित्य प्रकाशित कर वितरित किया गया।
२. देखें तेरापंथ का इतिहास (खंड १) पृ. ४३५-४४०
३. लय : महिलां रो मेवासी हो लसकरियो

४६. शांत सरोवर झूलो हो, मत भूलो शिक्षा स्वाम री,
तो उन्मूलो भव-भ्रम-द्रुम रो मूल।
कालूयशोविलासे हो तीजे उल्लासे तोर स्यूं,
पहली ढाळ रसाल चाल अनुकूल।।

ढाळः २.

दोहा

१. जयाचार्य-विरचित विमल, भ्रमविध्वंसन ग्रन्थ[1]।
भिक्षू-हुंडी स्यूं ग्रथित, प्रतिनिधि तेरापन्थ।।
२. अविधि प्रकाशित त्रुटिबहुल, सम्पादित नव रूप।
करवायो उणियासियै, भैक्षवशासण-भूप।।
३. भैंरू ईशर चोपड़ा, कियो प्रकाशित पुण्य।
सन्तां रो श्रम साथ है, रघुनंदन नैपुण्य।।
४. सुद पख भाद्रव मास में, वर्धमान उल्लास।
दीक्षा-मोच्छव री छवी, भवी अनुभवी खास।।
५. भैक्षवशासण में बण्यो, अद्भुत प्रथम प्रयोग।
तेरह दीक्षा एक दिन, देखी विस्मित लोग।।
६. विषम बीज बोया विपख, तिण रा फल तद्रूप-
पाया, पर-हित खाड खिण, निज हित हाजर कूप[2]।।
७. सफल-सफल पावस करी, विजय वरी गणराण।
विचरत राजाणै रच्यो, माघोच्छव-मंडाण।।
८. जयपुरवासी अब जवर, बण्या बेसबर लोग।
खबर नहीं ली गुरुप्रवर! अंतराय रै जोग।।
९. वर्ष बावनै बावनो मलयज माणक स्वाम।
जय-नगरी सुरभित करी, समवसरी धृतिधाम।।
१०. आठ बीस बीत्या बरस, कोहड़ै जावां देव!
चाकर चरणां रा लखी, बगसीजै अब सेव।।
११. खेत्र-फर्शना दर्शना, निपट निजोरी बात।
क्षेत्र न आवै आसनो, आप परसस्यो तात!

---

१. देखें प. १ सं. ७७
२. देखें प. १ सं. ७८

१२. हार्दिक विनय विलोक नै, विनती स्वीकृत खास।
स्वाम करी आरत टरी, विहरी व्यथा प्रवास।।

[1]सुगुण! श्रुति खोलोजी, न इत-उत डोलोजी,
हो जी ओ तो कालूयशोविलास मधुर मनु ओळोजी,
प्रेम-पय घोळोजी।

१३. जेठ मास में गुरु कियो कांइ, जयपुर बाट विहार।
डीडवाणै कूचामणू कांइ, जोबनेर जन तार।।
१४. सात रात पुर बाहिरे कांइ, जयपुर नगर प्रवेश।
बिद सातम आषाढ़ की कांइ, निरखण योग्य निवेश।।
१५. लाला रो आलय खिल्यो कांइ, धरी चरण-रज पूज।
आठ बीस सत बीस ही कांइ, संत सती संयूज।।
१६. पावस आयो साचलो कांइ, छायो मुदिर सजोर।
सदा वृष्टि पीयूष-सी कांइ, घर्म-सृष्टि कमजोर।।
१७. भावुक जन-मन भूतले कांइ, अनुभव-नव-अंकूर।
सहृदय-हृदय-दयार्द्रता कांइ, फलिता प्रवर प्रचूर।।
१८. परम धरम पाकी फसल कांइ, कर्म अकाले कोप।
भरम-भानु भापित बण्यो कांइ, वच-वार्दल आटोप।।
१९. सुमति-शांति-स्रोतस्विनी कांइ, बहै करत कोकाट।
विनय-बगीचो फूलियो कांइ, सुरभित बाट विराट।।
२०. वनराजी राजी हुई कांइ, लाजी लखि लोकेश।
पचरंगा सुमनां सज्यो कांइ, आवृत अंग सवेश।।
२१. देश-देश स्यूं आविया कांइ, मानव मधुकर-रूप।
गुण-गुंजारव गावतां कांइ, प्रमदोत्थित रूं-कूप।।
२२. पूज्य-पदाम्बुज भेटिया कांइ, जयपुर रेजीडेंट[2]।
हृदय-स्थल शीतल हुयो कांइ, सिंचित गुरु-वच सेंट।।
२३. प्राइम मिनिस्टर प्रांत रो कांइ, साहब ग्लेन्सी नाम।
गुरुवर दर्शन पाविया कांइ, सुकृत योग शुभ याम।।

---

१. लय : पायल वाली पदमणी
२. पिटरसन साहब

२४. सातम कृष्णा कार्तिकी कांइ, नव दीक्षा इक साथ।
पूज्य-पुण्य नै मापणो कांइ, गगन झांपणो बाथ।।
२५. आबू-ए. जी. जी.स्वयं कांइ, दरसण किया सचेत[1]।
सफल पूर्ण पावस हुयो कांइ, संघ-समुन्नति-हेत।।
२६. सांभर झाग सिणोदियै कांइ, मिगसर में मकराण।
बोरावड़ दस दिन रह्या कांइ, ठाकुर-विनती माण।।

दोहा

२७. गढ़-सुजान गुरुवर ठव्यो, माघोत्सव-मंडाण।
मुनि इक्काणू साहुणी शत-सित्ताणू जाण।।
२८. हो बीदासर आदि पुर, इक्यासी री साल।
चूरू पावस पांगर्‌यो, करुणा करी कृपाल।।
२९. श्रमण साथ में बीस छव, श्रमणी है बत्तीस।
रायचंदजी रै नयै कमरै बसै अधीश।।

[2]सुणो सुखकारी रे।
कालूयशोविलास भ्रमण-भय-हारी रे।।

३०. प्रथम याम व्याख्यान में रे, सूत्र भगवती सजोड़।
परिपदि श्री वदनाम्बुजे रे, गावै मुनिगण-मोड़।।
३१. मोहनविजये मोहनो रे, रचियो चंद-प्रबंध।
जयकृत सुरभित सोहनो रे, सुधा स्वाद निस्यंद।।
३२. सो स्वामी प्रारंभियो रे, स्वमुख देशना काल।
तिणरो वर्णन जो करै रे, वाचक है वाचाल।।
३३. वीणा-सी झीणां स्वरी रे, मधुरी राग उदात।
मृग-मन लहलीणां हुया रे, भवियां रा तिण स्यात।।
३४. सुधिजन सारंग वीसर्‌या रे, सावन घन ओगाज।
खान-पान स्नानादि रा रे, गौण हुआ सब काज।।

---

१. जी. आर. होलेंड साहब
२. लय : राजा राणी रंग थी रे खेलै अनुपम खेल

४७. रतनगढ़ में आवियो कांइ, प्रोफेसर गुरु पास।
गिल्की साहब गुणग्रही कांइ, मेम श्वसुर सह खास।।
४८. प्रश्न प्रसन्नमना करै कांइ, पंथ प्रणाली प्रेम।
जिनदर्शन री सूक्ष्मता कांइ, सुणतां हियड़ो हेम।।
४९. विभु-विभुता प्रतिदिन बढ़ै कांइ, दिन ज्यूं आतप-काल।
तीजे उल्लासे अखी कांइ, समुचित दूजी ढाळ।।

ढाळः ३
दोहा

१. करण शहर-सरदार पर, मर्यादोत्सव महर।
सोची पण आकस्मिकी, उठी अवर ही लहर।।
२. माजी तन राजी नहीं, देणां पड़सी दर्श।
शीघ्र विहार कियो सुगुरु, बीदासर जन हर्ष।।
३. बणी अरोगां वेग स्यूं, छोगां गुरु-सान्निध्य।
बलि विनवै श्रीचंदजी, विनय-भक्ति वैविध्य।।
४. शीत-शाल असराल अति, है मुनि-वृन्द विशाल।
कष्ट-काल गणपाल! पिण, निरखो विरुद निहाल।।
५. राय उदाई भाव लख, करी कृपा श्री वीर[1]।
त्यूं कीजे सकरुण-हृदय! दीजे वचन सधीर।।
६. स्वीकृत श्रावक-वीनती, सुकृति-संघ-सरदार।
माघ मास सुखवास हित, आया पुर-सरदार।।
७. सह्यो परीषह शीत रो, श्रमण-सती अनपार।
सुणो प्रसंगज शीत ऋतु रो वर्णन-विस्तार।।

८. [2]थर-थर कर कांपै सारो तन, दिन भर नहिं आळसड़ो जावै,
सिरखां सोड़ां में भी सी-सी करतां, नींदड़ली उड़ ज्यावै।
जदि हाथ रहै सिरखां बाहर, मिनटां में बणज्या ठाकर-सो।
'हा! हा! बो के करतो होसी[3]', मुख निकल पड़ै रव साकर-सो।।

---

१. देखें प. १ सं. ८२
२. लय : मर्यादा म्हांरै शासण री
३. देखें प. १ सं. ८३

२४. सातम कृष्णा कार्तिकी कांइ, नव दीक्षा इक साथ।
पूज्य-पुण्य नै मापणो कांइ, गगन झांपणो बाथ।।
२५. आबू-ए. जी. जी.स्वयं कांइ, दरसण किया सचेत[1]।
सफल पूर्ण पावस हुयो कांइ, संघ-समुन्नति-हेत।।
२६. सांभर झाग सिणोदियै कांइ, मिगसर में मकराण।
बोरावड़ दस दिन रह्या कांइ, ठाकुर-विनती माण।।

दोहा

२७. गढ़-सुजान गुरुवर ठव्यो, माघोत्सव-मंडाण।
मुनि इक्काणू साहुणी शत-सित्ताणू जाण।।
२८. हो बीदासर आदि पुर, इक्यासी री साल।
चूरू पावस पांगर्‌यो, करुणा करी कृपाल।।
२९. श्रमण साथ में बीस छव, श्रमणी है बत्तीस।
रायचंदजी रै नयै कमरै बसै अधीश।।

[2]सुणो सुखकारी रे।
कालूयशोविलास भ्रमण-भय-हारी रे।।

३०. प्रथम याम व्याख्यान में रे, सूत्र भगवती सजोड़।
परिपदि श्री वदनाम्बुजे रे, गावै मुनिगण-मोड़।।
३१. मोहनविजये मोहनो रे, रचियो चंद-प्रबंध।
जयकृत सुरभित सोहनो रे, सुधा स्वाद निस्यंद।।
३२. सो स्वामी प्रारंभियो रे, स्वमुख देशना काल।
तिणरो वर्णन जो करै रे, वाचक है वाचाल।।
३३. वीणा-सी झीणां स्वरी रे, मधुरी राग उदात।
मृग-मन लहलीणां हुया रे, भवियां रा तिण स्यात।।
३४. सुधिजन सारंग वीसर्‌या रे, सावन घन ओगाज।
खान-पान स्नानादि रा रे, गौण हुआ सब काज।।

---

१. जी. आर. होलेंड साहब
२. लय : राजा राणी रंग थी रे खेलै अनुपम खेल

९. हाथां पैरां में ब्याऊड़ी फाटै ज्यूं पर्वत-खोगाळां।
कालूंठो चेहरो पड़ ज्यावै, जळ ज्यावै चमड़ी सीयाळां।।
बेळूं-टीलां री बा धरती, पग धरत पराया-सा पड़सी,
झरती आंख्यां झरती नाकां, कर-शाखा करड़ी कंकड़-सी।।
१०. जद शिमला कानीं बरफ पड़ै, थळियां में ठंडी ब्हाळ चलै,
ऊनी कपड़ां स्यूं आवृत तन नै भी बा आरोपार खलै।
ठंडो जल पड़्यो गड़ो-सो है, पीतां काळेजां डीक उठै,
दांतां जाड़ां जदि दर्द हुवै, सहसा मुखड़ै स्यूं चीख उठै।।
११. झीणी-झीणी निशि ओस पड़ै, झांझरकै जम ज्यावै जंगळ,
जंगळ जा हाथ ऊजलातां, जाड़ै स्यूं बर्फ हुवै जम जळ।
धोरां-धोरां में धोळा-सा चांदी का जाणै बरग बिछै,
जम ज्याय जलाशय भी सतीर, कित्ती सुंदर तस्वीर खिंचै।।
१२. है खबर अगर दाहो पड़ज्या, ल्यो पहल आकड़ां री बारी,
जळज्या बिन आग लपट्टां कै, बेचारां री भारी ख्वारी।
सूका लक्कड़ जळ खाक हुवै, लखदाद पड़ै लक्कड़दाहो,
एहड़ै जाड़ै की जोखिम में जाखेड़ा केवल लै लाहो।।
१३. जब मौसम पोवट मावट री, बो बिना बगत रो मेहड़लो,
डटकारां डांफरड़ी बाजै, धूंवरली तजै न नेहड़लो।
सूरज भी तेज तपै कोनी, जाड़ै स्यूं डरतो वेग छुपै,
सिगड़्यां सारी रातां सिळगै, पाणी स्यूं हाथ न पांव धुपै।।
१४. मोटी रातां तड़को मोटो, ले नींद स्तनंधय भी धापै,
सज्झाय सहस्रां गाथां री कर संत समय 'सी' रो कापै।
ऊंडा ओरां भोंहरां भीतर, दे पड़दा मुनि रजनी गाळै।
कोरा कपड़ां स्यूं के होणो, जोरां चमकै 'सी' सीयाळै।।

[1]आज मन हरसै रे, ज्ञानी गुरु घर आया।
सरस रस बरसै रे, मंगल मोद मनाया।।

१५. श्रावक संग उमंगे भीना, सद्गुरु सन्मुख आवै।
चरण-प्रणाम नाम शिर करता, हर्ष-हिलोळा खावै।।

---

१. लय : रूड़ै चंद निहालै रे नवरंग

१६. मूल-नन्द शरदिन्दु विलोकी, शहर-सिन्धु उलसाणो।
जन-कल्लोल बोल-गर्जारव, खमा-खमा मिष माणो।।
१७. गल-आभूषण सबल विराजै, जलधि-रयण प्रकटाणा।
उज्ज्वल फेन वसन-व्यपदेशे, नैन बैन विकसाणा।।
१८. सातम माघ-महोत्सव मेळो मंड्यो अति मंडाणै।
नव दीक्षा निज कर संघाधिप, पचखाई तिण टाणै।।
१९. बिंयासी बीदासर मांही, पावस री छवि छाजै।
छोगां माता पा सुखसाता, सद्गुरु सेवा साझै।।
२०. कार्तिक मासे शिव अभिलाषे, दीक्षा दस शिवगामी।
मिगसर मासे शहर लाडनूं, समवसर्या गणस्वामी।।

[1]म्हांरै गुरुवर रो मुखड़ो है खिलतो फूल गुलाब-सो,
मुखड़ै री छवि मनहार, म्हांरै गुरुवर रो,
मुखड़ो शशांक सौम्याकार, म्हांरै गुरुवर रो।
मुखड़ो अमन्द अविकार, म्हांरै गुरुवर रो...।।

२१. श्रमण-संपदा संगे सोहे, श्रावक-छक हकदार। म्हांरै...
जय-जय-ध्वनि-ध्वनिताम्बर-धरणी, करिणीश्वर-संचार।। म्हांरै...
२२. मंजु मनोहर मोहन-मूर्ति, स्फूर्ती दिव्य दिदार।
पूंजीभूत पुण्य मनु पळकै, भळकै ललित लिलाड़।।
२३. शहर लाडणूं आज सुरंगो, पूज्य-पदाब्ज-प्रसार।
अंबर ज्यूं अंबरमणि उदये, वन मधुमास मझार।।
२४. गुरु-वदनारविंद पर झूमै, मुझ मन-अलि अनुहार।
अनिमिष-नयन निहारै सोत्सुक, सन्मुख बारंबार।।

सोरठा

२५. पूछूं माता पास, मैं अति आमोदित हृदय।
अम्बा बिन आयास, कुण यूं अंगज-हित करै।।
२६. मां! ओ तन सुकुमार, चरण-कमल कोमल अतुल।
पय अलवाण विहार, परम पूज्य क्यूं कर करै?

---

१. लय : बायां गुलाबशाही केवड़ो

२७. जम्पै जननी जात! पूज्य भाग्यशाली प्रवर।
पग-पग पर प्रख्यात, पुण्यवान रै नौ निधि।।
२८. मुझ बचपन रो आज, मो मन में उपहास है।
सुमरत आवै लाज, कहतां दिल काठो हुवै।।
२९. मैं पूछ्यो ए मां! आं पूजी म्हाराज रै।
चेहरै री आभा, पळपळाट पळ-पळ करै।।
३०. बोलै मां बेटा! के बातां आंरी करां।
पुनवानी के ठा, कठै किती संचित करी।।
३१. कुण होसी पाछै, आं पूजी म्हाराज रै?
उत्सुकता आ छै, मनै बता दै मावड़ी!
३२. बोली तड़ाक दे'र, लाल आंख कर मां मनै।
खबरदार है फेर, इसी बात कबही करी।।
३३. तपो दिवाळी कोड़, आपां रा अै पूज्यजी।
मेटो खलता-खोड़, सारां री शासणपती।।
३४. मां! ए मां! म्हाराज, लागै घणां सुहावणां।
देखूं बलि-बलि भाज, तो पिण मन तिरपत नहीं।।
३५. थारो भाग विशाल, हळुकर्मी है लाल! तू।
खिण में हुवै निहाल, जब झांकै सुनिजर सुगुरु।।
३६. भणूं चरण में बैठ, छोटो-सो चेलो बणूं।
करूं स्व जीवन भेंट, मां! मम अंतर-भावना।।
३७. कठै इस्या तकदीर? बोली मां रे बावळा!
बड़भागी बड़वीर, पावै पूज्य-उपासना।।

[1]म्हांरै गुरुवर रो मुखड़ो है खिलतो फूल गुलाब-सो।

३८. सारी बातां सहज बिनोदे, प्रश्न पडुत्तर सार।
पिण कुण जाणी इण महिनां में, बण ज्यासी साकार।।
३९. तिण ही वासर चंपक मुनिवर, पूछै सहज प्रकार।
तुलसी! तूं दीक्षा लेसी के? मुझ मन हर्ष अपार।।

---

१. लय : बायो गुलाबशाही केवड़ो

४०. म्हांरो अंतर-भाव पिछाणी, साझ दियो अनपार।
ठेट सुगुरु स्यूं भेंट कराई, ओ भारी उपकार।।
४१. चरचा पड़िकमणो सीखायो, पायो अमृत प्यार।
लहरायो वैराग्य-रूंखड़ो, फळ्यो भाग्य गुलजार।।
४२. सोनेली-बैदां घर ब्याही, भगिनी लाडकुमार।
पहिलां स्यूं ही रही उमाही, लेवण संजम-भार।।
४३. तिण नामे बड़बंधव मोहन तेड़ाया दे तार।
पिण कुण बात करै मोहन स्यूं? आज्ञा कठिन करार।।
४४. परणीजण परदेश-सिधावण और करण व्यापार।
त्याग किया मैं सुगुरु साख स्यूं, खुल्यो अनुज्ञा-द्वार।।
४५. गुरु-आज्ञा मां-मोहन-आज्ञा, खुश सारो परिवार।
सांसारिक ओच्छब-मोच्छब रो, खूब सझ्यो उपचार।।

[1]बंधव बोलै जी रे।

४६. मेंहदी मांडी कर-चरणां में, माता कोड पुरायो जी रे।
पो. बिद चौथ रात नै मुझनै, कंबल उढ़ा सुलायो रे।।
४७. मोहन भैया मध्य निशा में, बात कहै इक छानी जी रे।
रे तुलसी! तू काल सवारै, संयम री मन ठानी रे।।
४८. कठिन काम है साधपणै रो, देश-प्रदेशां मांही जी रे।
जो नहिं मिलसी अन्न रु पाणी, तो के करसी भाई रे?
४९. सौ रुपियां रो नोट कागजी, एक साथ में लीजे जी रे।
पोथी-पानां सागै रहसी, काम पड़्यां भांगीजे रे।।
५०. भाईजी री अजब बात सुण, हांसी रुकी न म्हांरी जी रे।
नोट परिग्रह ही है बंधव! नहिं कल्पै निरधारी रे।।
५१. भगिनी लाडां पासे सूतीं, पूछै क्यूं आ हांसी जी रे?
तब मोहन साश्चर्य स्व मुख स्यूं, सारी बात प्रकाशी रे।।

[2]म्हांरै गुरुवर रो मुखड़ो है खिलतो फूल गुलाब-सो।

---

१. लय : सयणा थइये जी रे
२. लय : बायो गुलाबशाही केवड़ो

५२. उगणीसै बंयासी पो. बिद पांचम प्रात-सवार।
'इष्ट घटी' प्रगटी 'धन लगने' 'पुख नक्षत्र' निहार।।
५३. मम भाग्योदय सूर्योदय रो अद्‌भुत साम्य उदार।
नहिं कोइ इचरज सिरजनहारो गुरुवर गुण-भंडार।।
५४. महिनां भर में काम बण्यो सब कालू करुणागार।
जिण पर तूठै जिण घर तूठै, अक्षय सुख आसार।।

[1]आज मन हरसै रे, ज्ञानी गुरु घर आया।

५५. तत्क्षण शासणरमण प्रयाणे, मारवाड़ महि लंघी।
गढ़ सुजाण गुरुराण पधारत, ठाट जमायो जंगी।।
५६. श्री श्री कालूयशोविलासे, अति आनंद उपायो।
तीजी ढाळे भाल विशाले, मैं गुरु-शरणो पायो।।

ढाळः ४.

दोहा

१. रामपुरियाजी रै भवन[2], गणिवर पहलो ग्रास।
अति वच्छलता स्यूं दियो, ओज आ'र आश्वास।।
२. अब छेदोपस्थापनी, पचखायो चारित्र[3]।
दोनां नै दिन आठवैं, प्रभुवर परम पवित्र।।
३. त्यूं समुचित समये शमी, धर-धर निज कर शीष।
मधुर ईख-सी सीखड़ी, बार-बार बगसीस।।
४. छापर पड़िहारै हुई, राजलदेसर देव।
माघ मास मुनि-संघ सह, समवसर्‌या स्वयमेव।।
५. सुद सातम मध्याह्न में, छायो छक्क सजोर।
राजाणै जाणै जम्यो, शक्र सुधर्मा-तोर।।

---

१. लय : रूड़ै चन्द निहालै रे नव रंग
२. हजारीमलजी रामपुरिया (सुजानगढ़) का कमरा
३. महाव्रतों का विस्तारपूर्वक प्रत्याख्यान

[1]श्री गुरु-चरणां में।
मैं ध्याऊं निशिदिन ध्यान, श्री गुरु-चरणां में,
म्हांरा अर्पण है दस प्राण, श्री गुरु-चरणां में।
सर्वस्व समर्पण जाण, श्री गुरु-चरणां में।।

६. गंगाशहर निवासिया श्रावक-गण समुदित,
विनवै यूं बेकर जोड़, श्री गुरु चरणां में।
भैरूंदानजी चौपड़ा ऊभा चित प्रमुदित,
सुणज्यो शासन-शिरमोड़, श्री गुरु चरणां में।
७. बीकाणे गुणियासिए कीधो चोमासो,
गुरु भारी संकट झेल।
एक घड़ी नहिं वीसरां बो रांगड़रासो,
पर बढ़ी धरम री बेल।।
८. 'धर्मे जय' आ साच है जनता री वाणी[2],
नहिं इणमें भेळ-सभेल।
तपता भोभर-भाड़ ज्यूं बै शीतल पाणी,
ओ पुन्याई रो खेल।।
९. शीघ्र संभाळो आय नै दाखां री बाड़ी,
आ तो झुक-झुक झोला खाय।
खड़्यो अडीकै चोखळो है आस्था गाढ़ी,
खिण-खिण लाखीणी जाय।।
१०. भैंरू श्रावक भावना अंतर-मन आंकी,
दै सद्गुरु शुभ संकेत।
मोतीड़ां मेह बरसियो आभा मुखड़ां की,
सगळां की खिली सचेत।।
११. विचरत-विचरत ठावियो पावस गंगाणै,
मुनि पृथ्वी पायो पोष।
वयोवृद्ध थाणापती जीवन-धन जाणै,
है सारै पुर सन्तोष।।

---

१. लय : वारू हे साधां री वाणी
२. देखें प. १ सं. ८४

१२. सन्तां री षड्विंशती श्रमणी गुणखाणी,
चौतीस करै गुरु सेव।
पांच पुरां रो झूमको शोभै सुखदाणी[1],
जय-जय जिनशासन-देव।।
१३. उदियापुर स्यूं आविया महताजी ज्यांरे,
अति सद्गुरु प्रति सम्मान।
फतहलालजी भाव स्यूं गुरु-चरण जुहारे,
बीकाण - नृपति - महमान।।
१४. प्रवचन सुण्यो सुहामणो सौभाग्य सहारो,
महताजी भक्ति-विभोर।
करी प्रार्थना पूज्यजी! मेवाड़ पधारो,
कब ही उदियापुर ओर।।
१५. डायमल्ल मृग मास में मुनि हुयो दिवंगत,
शास्त्रां रो विज्ञ विराट।
भीनासर निशि भालियो आलोक सुसंगत,
अद्भुत आभै धर्राट।।
१६. चित्रित सब जनता रही तप तीव्र प्रभावे,
मानो कोइ दिव्य विमाण।
गुणियासी तंयासियै बीकायत-भावे,
है अंतर भू-असमाण।।
१७. माघ महोत्सव लाडणूं शत च्यार श्रमण है,
श्रमणी दो सौ पर तीस।
नव दीक्षा नवली हुई नहिं भव-भ्रमण है,
कालू जिनशासन-ईश।।

दोहा

१८. गिरिगढ़ श्रावक संघ री, सुणी वीनती खास।
पावस रो थ्यावस दियो, चोरासिए सुवास।।
१९. श्रमण सप्तविंशति सुघड़, श्रमणी गुणचालीस।
शासनेश सेवा सझै, बद्धांजलि नतशीष।।

---

१. बीकानेर, गंगाशहर, भीनासर, नाल और उदासर।

[1]देखो द्वंद जगत में क्यूं?
जग लग्यो कषाय-ममत में यूं।
नहिं हृदय-प्रेम सतमत में यूं।।

२०. थळी देश में विकट वेश में, द्वैध मच्यो इक भारी जी[2]।
पुर-पुर गांव-गांव घर-घर में, एक हि पवन प्रचारी जी।।
२१. विनय विवेक नेकता नीति, न्याति-बंध नरमाई जी।
पीढ्यां-दर-पीढ्यां री संचित गरिमा खूब गमाई जी।।
२२. वैमनस्य विद्वेष विलगता, मच्छरता असुहाई जी।
अविनय उच्छृंखलता खलता, जनता खूब कमाई जी।।
२३. मौखिक लेखिक विविध विचेष्टा कीन्ही जण अणजाची जी।
'सुजन सयाने होत बावरे', आठ ठोर चित राची जी[3]।।
२४. सघन-सघन संबंध परस्पर, प्रेम पीढ़ियां तांई जी।
पिण अन्योन्य कलह में कब कुण देखी सुणी भलाई जी।।
२५. भ्रात-भ्रात अरु पिता-पुत्र मां-बेटी श्वसुर-जमाई जी।
इण विग्रह में उतर-उतरकर, निज-निज अकल दिखाई जी।।
२६. तेरापंथ पंथ जिण देशे एकछत्र छवि छावै जी।
अविकल संघ एकता देखी, मानव मन चकरावै जी।।
२७. अष्टम पट्टाधिप शांति-प्रतिमूर्ती कालू स्वामी जी।
सदा सुधा उपदेश सुणावै, तो पिण मिटी न खामी जी।।
२८. कइ अज्ञान-मान-वश अपणो ओछो परिचय दीधो जी।
धर्म-ओट निज गोठ पुरावण, अंवळो मारग लीधो जी।।
२९. स्थानकवासी जो परवासी, तिणमें जा टंटोळो जी।
थळी देश शुभ वेष वसावो, कोइ क टालवों टोळो जी।।
३०. गाम-गाम में धूम-धाम अति, घर-घर मचसी रोळो जी।
पाछै सकल विपक्षी बैठा, अपणां पग पंपोळो जी।।
३१. स्व-पर पक्ष रा दक्ष मनुज जब, सुणी सला आ छानी जी।
समझावण आया सब ठाया, फिर-घिर कानीं-कानीं जी।।

---

१. लय : रच रह्यो ज्ञान ज चरचा स्यूं
२. देखें प. १ सं. ८५
३. देखें. प. १ सं. ८६

[1]मत कीजे,
मत कीजे, बतका अविचारी, नहिं हितकारी।।

३२. पारस्परिक विभेद भेद में, सौ झंझट लै संसारी। मत कीजे,
सामाजिक उलझन-सुलझन में, खूब करै थांरी म्हांरी।। मत कीजे,
३३. सौ सज्जन दो सौ दुसमण है, आ दुविधा है दुनियां री।
पिण तिण बिच में धर्मसंघ नै, त्याणो कुण-सी हुसियारी।।
३४. नहिं हित लेश कलेश हि प्रत्युत, आ प्रवंचना है भारी।
है कटु सत्य नहीं कोई लेवैला इणमें पख थांरी।।
३५. पछतावोला दुख पावोला, आ शिकार है सांपां री।
भैया! सांसारिक रकझक में, करो न धार्मिक धन ख्वारी।।

[2]श्री गुरु-चरणां में।

३६. परामर्श चिंतन भर्‌यो चिंतक जन दीन्हो।
जो शुभ भविष्य आसार।।
मानै क्यूंकर मानवी ताण्यां निज सीनो।
जो मान-मतंग सवार।।

[3]आवो जी आवो थे तो थळी देश में आवो जी,
थळी देश में आवो थे मनमानी मोज मनावो,
म्हांरी अरजी पेश चढ़ावो जी, आवो जी...

३७. बीकानेर शहर तब पहुंच्या, करी ठिकाणो ठावो जी।
लाल जवाहिर माहिर निरखी, उमग्यो हृदय उम्हावो जी।।
३८. बोलै सब विध बात सझाई, पौरुष नयो जगावो जी।
अबकै झबकै-सै होवण द्यो, थळी देश पर धावो जी।।
३९. बीकाणै स्यूं बहुत निकट है, विकट न पंथ पतावो जी।
शीतकाल रो समय सामनै, एक बार पधरावो जी।।

---

१. लय : जय बोलां नेम जिनेश्वर की
२. लय : चालो सहेल्यां आपां भैरूं नै मनास्यां हे
३. लय : वारू हे साधां री वाणी

४०. तेरापन्थ पन्थ रो सोहै, किल्लो चिहुं दिश चावो जी।
आज लगे पिण इणरै ऊपर, किणरो फव्यो न दावो जी।।
४१. शहरां-शहरां धन री नहरां, लहरां ज्यूं लहरावो जी।
घर-घर धीणो पय-घी पीणो, खाणो मक्खण-मावो जी।।
४२. शिक्षा रो नहिं जोर, अंधश्रद्धा रो शोर-शराबो जी।
सारी बागडोर इक कर में, चाहे जिंयां घुमावो जी।।
४३. आज प्रसंगे अखिल संघ में, उदयो द्वेधीभावो जी।
अद्भुत फूट कूटनीती स्यूं, उलटो मिल्यो बढ़ावो जी।।
४४. बणी अश्रद्धा पन्थ-पूज्य पर, घटग्यो आवो-जावो जी।
तिण कारण निरधारण कर, अवसर रो लाभ उठावो जी।।
४५. पुरा पुराणां मुनिवर स्याणां, कीधो स्वर्ग सिधावो जी।
सांप्रत तेरापंथ पंथ में, नान्हपणो अनुमावो जी।।
४६. म्है पिण तिण पथ रा अनुयायी, आया ले प्रस्तावो जी।
अवसर रा उपजाया उपजै मोती फिर पछतावो जी।।
४७. मोटी-मोटी मदद मिलैली, जरा न दिल घबरावो जी।
भूल-चूक महाराज! अनोखो मोको मती चुकावो जी।।
४८. अयि! अयि! चित्र! विचित्र कर्मगति खतरनाक जग खाल्हो जी।
टेढ़ी शूल गडी एडी में, कुचरै मूरख फाबो जी।।
४९. सारी बात विचार जवाहिर चमक्यो चित ललचावो जी।
नीम्बू नामे ज्यूं मुखड़ा में अम्बू रो उद्भावो जी।।

[1]श्री गुरु-चरणां में।

५०. आमंत्रण सहज्यां मिल्यो भावुक जनता रो।
है शायद सफल प्रयास।।
थळी देश सिक्को जमै ज्यूं-त्यूं आपां रो।
तो बणै बड़ो इतिहास।।
५१. निश्चित-सो निर्णय कर्यो चित लालच लाग्यो।
अब थळी देश दिशि जाण।।
कालूयशोविलास में आंतर अनुराग्यो।
ल्यो चौथी ढाळ सुजाण।।

---

१. लय : वारू हे साधां री वाणी

ढाळः ५.

दोहा

१. भीनासर बीकाण रा, श्रावक आगीवाण।
मिलिया मिसलत-हित उचित, निज गुरुराज-ठिकाण।।
२. थळी-देश-वासी घणां, विभव-विलासी लोक।
स्थानकवासी-मत-ग्रहण, है अभिलाषी थोक।।
३. तिण कारण इण अवसरे, जाणो बठै जरूर।
साहस स्यूं कारज सझै, नहीं घणो है दूर।।
४. श्रावक संघ उमंग स्यूं, करसी मदद महान।
थळी देश हस्तांगुली होणो है आसान।।
५. प्रतिपन्थी है आपणो, पग-पग तेरापंथ।
तिणनै पिण पड़सी खबर, जो बणसी विरतंत।।

[1]वेग पधारो अब थळी देश में जी।
होजी कोइ! होसी बहु उपगार।।

६. बोलै श्रावक सब स्थिति सांभळी जी,
आयो अवसर आज उदार।
चोमासो उत्तरतां चालिये जी,
म्है पिण रेस्यां थांरी लार।।

मति रे पधारो गुरु! थळी देश में जी।
गहराई स्यूं सोचो सार।।

७. पभणै तब कइ दाना मानवी जी,
नहिं ओ लागै उचित विचार।
ओसवाळ वासी थळी देश रा जी,
नहिं कोइ धारै थांरी कार।।
८. क्यूं नहिं सुमरो तुम सिरिलालजी जी,
आया थळवट देश चलाय।
पंथ-पूज्य परवासी जाण नै जी,
कुण-सी मिली सफलता प्राय।।

---

१. लय : पीपली

९. अब कुण-सी नव की तेरह हुसी जी,
नहिं कहिं सजग धणी घर धाड़।
बात विमासो हांसो नहिं करै जी,
दुर्जन दुर्मन वदन बिगाड़।।

१०. अणजाणी आ आफत घालणी जी,
हो जी जठै सामाजिक संघर्ष।
बिच में पड़णो लड़णो है मुधा जी,
करणो धरम-नीति-अपकर्ष।।

११. उत्तर तरुण अरुणता में दियो जी,
नहिं भय सोच्यो सब एकंत।
निश्चय लाभ आब बढ़सी सही जी,
थे सब राखो धीरज तंत।।

१२. चाल्या मारग पुर-सरदार रै जी,
तन मन बहता मोद विशाल।
संप्रदाय-संघर्षण री चली जी,
अब स्यूं एक अनोखी चाल।।

१३. पावस पूरो गिरिगढ़ रो करी जी,
श्री गुरु सहज शहर सरदार-
पधराया, मनभाया संघ नै जी,
प्रतिपक्षी[1] पिण लार हि लार।।

सोरठा

१४. थळी देश रा लोक, विविध विचारां में बह्या।
तिण गतिविधि रो थोक, समझो चित्रण सामनै।।

[2]मानव जो अविवेक।

१५. थळी देश रा वासी जी, मानव जो अविवेक,
कलह कुतुक अभिलाषी जी, मानव जो अविवेक।

---

१. स्थानकवासी आचार्यश्री जवाहिरलालजी

२. लय : पिउ पदमण नै पूछै जी

आस्थाहीन उदासी जी, मानव जो अविवेक,
आलोचन-अभ्यासी जी, मानव जो अविवेक।
अविमासी यूं हांसी हांकै भाखै वच बेकार।।

१६. इतला बरसां जाणी जी, मोज करी मनमाणी जी,
ज्यूं-त्यूं बात बखाणी जी, तहत वचन धन वाणी जी।
अब ओड़ी-जोड़ी रा आया करणो हुसी विचार।।

१७. बात-बात में अड़सी जी, चरचा करणी पड़सी जी,
उभय पक्ष जब भिड़सी जी, पड़दा-पोल उघड़सी जी।
कुण साचो कुण काचो जाहिर जाचो जाचणहार।।

१८. एक दुकान विलोकी जी, चोखी अथवा ओखी जी,
रचना विश्व अनोखी जी, पिण सब रही परोखी जी।
अबकै मौको मिलियो लोको! मत रोको मन-वेग।।

१९. मोकै-मोकै जास्यां जी, चरचा-बात चलास्यां जी,
ऊहापोह उठास्यां जी, सुण वाणी सुख पास्यां जी।
घर आयां बहरास्यां बहुलो भाव-भक्ति स्यूं आ'र।।

२०. म्है तो रहस्यां कानी जी, जोस्यां दोनूं बानी जी,
लेस्यां पक्ष सयानी जी, नहीं उठास्यां हानी जी।
रही तटस्थ समस्त विलोकै, बो जग में हुशियार।।

मानव जो सुविवेक।

२१. थळी देश रा वासी जी, शास्त्रां रा अभ्यासी जी,
शासण रा विश्वासी जी, दृढ़ समकित चितवासी जी।
सुण आगमण प्रवासी-पख रो स्पष्ट करै उद्घोष।।

२२. पायो पन्थ अमोलां जी, फिर क्यूं इत-उत डोलां जी,
अपणी कीमत तोलां जी, व्यर्थ न ज्यान झकोलां जी।
धर्मसंघ ओळा-दोळां है अनहद अंतस्तोष।।

२३. कहीं न आस्यां जास्यां जी, घर में गौरव पास्यां जी,
कल्पतरू फल खास्यां जी, नहिं बंबूल उगास्यां जी।
कामधेनु रो धीणो छोड़ी क्यूं बकरी रो वास?

२४. जग में भेख भखंदर जी, मिलै न ऊपर अंदरजी,
बिच्छू काट्यो बंदर जी, पकड़्यो सांप छछुंदर जी।
सुन्दर स्यूं सुंदर मत अपणो तिल भर शंक न कंख।।

२५. रेसां दान-दया री जी, निखरी न्यारी-न्यारी जी,
श्री भीखण-गण-वारी जी, नंदन-वन-अनुहारी जी।
ढूंढ-ढूंढ जग-अंखियां हारी जुड़ै न कोई जोड़।।
२६. अै सामाजिक नाता जी, रेसी आता-जाता जी,
खुल्ला है जग खाता जी, सहस्यां ठंडा-ताता जी।
धर्म अनंत सुखां रो दाता मिलै न कीम्मत कोड़।।
२७. तेरापथ री एकी जी, निर्मल निरुपम नेकी जी,
जग की एकी छेकी जी, अकथनीय उल्लेखी जी।
पीढ़्यां-दर-पीढ़्यां रो म्हांरो केकी घन संबंध।।
२८. जिण गामे नहिं जाणो जी, क्यूं मारग पूछाणो जी?
देखां अपणो भाणो जी, खुश दिल खाणो खाणो जी।
गलत तत्त्व प्रश्रय दे पाणो ओ मोटो अपराध।।
२९. नहीं स्वयं तो भटकां जी, सेण-सगां नै हटकां जी,
साच सुणावां सटकां जी, नहिं कोइ खावै बटकां जी।
क्यूं अब अधर-बीच में लटकां श्री कालू-गुरु साझ।।

दोहा

३०. परतख द्विधा प्रतिक्रिया, देखी है दो टूक।
स्वामी स्वयं समाचरै, शिक्षण-व्यूह अचूक।।

[1]सद्गुरु-शिक्षा सुध मन सांभळो जी।
सुविहित त्रैकालिक हित जाण।।

३१. श्रमण-सभा आमंत्री इक दिने जी,
गुरुवर मधुर सुणावै सीख।
आया इतर-मतालंबी अठै जी,
सज-धज ले उद्देश्य अलीक।।
३२. मत बतळावो मारग में मिल्यां जी,
यदि बतळावै तो भी मून।

---

१. लय : पीपली

कोई प्रत्युत्तर भाखो मती जी,
अनुभवस्यो थे फल अन्यून।।
३३. आवण ल्यावण वाळा बावरी जी,
इण अवसर पर जो बदनीत।
तिण री फल-निष्पत्ती जो हुसी जी,
समये देखीज्यो वर रीत।।
३४. दूरदर्शिता रो परिचय दियो जी,
इण शिक्षा-दीक्षा-मिष स्वाम।
गुरु-मेधा कुण मेधावी लखै जी,
ज्यूं क्षीरोदधि रो आयाम।।
३५. तहत वचन कहि गुरु वंदन करी जी,
सहु मुनि पहुंच्या निज-निज ठाम।
तीजे उल्लासे 'तुलसी' कही जी,
सम्प्रति पंचमि ढाळ सुयाम।।

ढाळः ६.

दोहा

१. आरंभ्यो आवागमन, प्रतिपक्ष्यां रै द्वार।
द्वेष-भाव-दूषित-मना, कइ जन बिना विचार।।
२. केक प्रगट अविवेक युत, कइ छिप-छिप दिल छेक।
कर्णेजप गुपसुप करै, हियड़े हिचकिच-हेक।।
३. कइ मानव नव रूप नै, निरखण धरै उमंग।
अभिनव नाटक देखणे, ज्यूं समुदित जन-संघ।।
४. केक एक संयोग स्यूं, कई कुतूहल काज।
कूप-भेक आरेक कर, निज में कइ निष्काज।।
५. सहु समक्ष प्रतिपक्षपति, प्रतिदिन करै सलक्ष।
परिषदि टीका-टिप्पणी, तेरापंथ-विपक्ष।।

६. [1]ओ श्रावकजी! यूं मुख मधुराहान जो,
विरुवी वाणी बोलै अपणी शान में।

---

१. लय : प्रभुवर आवी वेलां क्यांरे

बड़ै खेद की बात हृदय बेभान जो,
अधरम उतर्‌यो धरम नाम मैदान में।।
७. दया-दान जो जैनधर्म रा मूल जो,
मूलोच्छेद-करण प्रतिचरण उम्हावियो।
हीन-दीन दुःखित प्राणी प्रतिकूल जो,
जग-विपरीत पन्थ क्यूं किंयां चलावियो?
८. ऊंदर ऊपर आवै ओतू स्थूल जो,
गौ-बाड़ां आगी लागी आंख्यां लखी।
संरक्षण नहिं करणो धर्म-उसूल जो,
इसड़ो तत्त्व बतावै तेरापथ-पखी।।
९. साता दीधां पड़ै असाता बन्ध जो,
धरम न श्रावक नै करवाणो पारणो।
अभय अहिंसा रो शाश्वत संबंध जो,
सो पिण सावज मरतो जीव उबारणो।।
१०. पड़िमाधारी पोख्यां पाप प्रतीत जो,
भीखणजी री देखो बड़ी वदान्यता।
मात-पिता नै सेवै पुत्र विनीत जो,
ओ पिण खातो अधरम रो आ मान्यता।।
११. सावज-निरवद अनुकंपा-द्वय धार जो,
त्रिशला-सुत[1] री चूक कहै चोगान में।
मिथ्यात्वी री करणी निपट निसार जो,
निरवद कहै बहै अब लों अज्ञान में।।
१२. छट्ठै गुणठाणै छव लेश्या-धार जो,
देशव्रती में क्रिया अप्रत्याख्यान री।
श्रावक नै नहिं सूत्र-पठन अधिकार जो,
बिल्कुल रुकी शृंखला आगम-ज्ञान री।।
१३. समये-समये परिषदि या एकांत जो,
करै टिप्पणी तेरापथ-मन्तव्य पर।
श्री कालू गुरु समाधान चित-शान्त जो,
कर-कर भ्रान्ति मिटावै निज कर्तव्य सर।।

---

१. भगवान महावीर

[1]आज म्हांरै आंगणियै में मोतीड़ां मेह बरसै रे।
प्रवचन-घन गुरुदेव रो।।

१४. बड़ै खेद की बात, अधरम आ उतर्‌यो मैदान में,
जामो पहर्‌यां धरम रो।
दया-दान रै नांवै चालै शोषण धर्मस्थान में,
मारग मिथ्या भरम रो।।
१५. चींट्यां रै बिल चून, चूसै खून मानवता रो रे,
जड़ता भारी जगत में।
'एरण-चोरी सुई-दान', अड़ीकै स्वर्ग-किनारो रे,
देखो भगती भगत में।।
१६. जैनधर्म रो मूल अहिंसा, संयम-तप-मय साचो रे,
शाश्वत शुद्ध सरूप में।
प्राणिमात्र नै सुख रो जीवन जीणो लागै आछो रे,
भैक्षव-मत अनुरूप में।।
१७. लोकोत्तर लौकिक धरमां नै एक हि रूप पिछाणै रे,
ताणै खींचाताण स्यूं।
'घी तंबाकू मेळ मिलावै[2]' मेली अकल अडाणै रे,
मूरख अपनी बाण स्यूं।।
१८. गो-बाड़ो अरु ओतू-ऊन्दर कौतुक रूप उदारण रे,
प्रतिपल मिश्रण रा बण्या।
आत्म-उधारी दुनियांदारी भिन्न-भिन्न है कारण रे,
धर्मशास्त्र में संथुण्या।।
१९. साता स्यूं साता बंधै ओ चिंतन अतथ अधूरो रे,
जिनदर्शन-संदर्भ में।
श्रावक रो खाणो-पीणो है, तप संजम स्यूं दूरो रे,
भोग असंजम-गर्भ में।।
२०. अभयदान भगवती-अहिंसा रो संबंध सदा रो रे,
आध्यात्मिक आराधना।
पण एकण नै पुचकारै, दै एकण नै दुत्कारो रे,
आ सांसारिक साधना।।

---

१. लय : तेजा
२. देखें प. १ सं. ८७

२१. पड़िमाधारी श्रमणभूत पिण, है आखिर गृहधारी रे,
लौकिक तिणरो पोखणो।
मात-पिता री सेवा लौकिक, लोकोत्तर संचारी रे,
अंतरपथ अवलोकणो।।

[1]सुणज्यो मात-पिता री सेव, श्री गुरुदेव गावै जी।
सज्जन-समझावण स्वयमेव, उपनय हेतु लगावै जी।।

२२. सेवा सेवा में जो द्वैध, सावज-निरवद को है भेद।
एकीभाव न भावै जी, एकीभाव न भावैजी।।
२३. कीन्हो सुत नै शब्द सजोर, होकै हेत तमाखूखोर।
दारक विनय दिखावै जी, दारक विनय दिखावै जी।।
२४. छोड़ी ततखिण सारो काज, सांगोपांग सझाई साझ।
होको हाथ झलावै जी, होको हाथ झलावै जी।।
२५. करी प्रशंसा सुत री तात, पकड़ी नेय हर्ष स्यूं हाथ।
होको गुड़गुड़ावै जी, होको गुड़गुड़ावै जी।।
२६. बरसै झिरमिर-झिरमिर मेह, पवन-झकोळै डोलै देह।
भारी भूख सतावै जी, भारी भूख सतावै जी।।
२७. तेड़ी राजपूत निज पूत, होळै आखी यूं आकूत।
आमिष आज सुहावै जी, आमिष आज सुहावै जी।।
२८. चाल्यो नंदन हो हुशियार, ले निज हाथ सबल हथियार।
मृगया खूब मचावै जी, मृगया खूब मचावै जी।।
२९. ल्यायो जांगळ जुलम जमाय, आयो बाबाजी रै दाय।
तळ-तळ भूंज खुवावै जी, तळ-तळ भूंज खुवावै जी।।
३०. बोल्यो बापू लख करतूत, वाह! वाह! बेटा! बड़ो सपूत।
मुख स्यूं घणो सरावै जी, मुख स्यूं घणो सरावै जी।।
३१. दीन्हो अक्का यूं आदेश, पहिरी देश-देश रा वेश।
पुत्री! पुरुष रिझावै जी, पुत्री! पुरुष रिझावै जी।।
३२. गणिका अम्बा-वच अवधार, चाली सझ सोळह सिणगार।
जननी मन हुलसावै जी, जननी-मन हुलसावै जी।।

---

१. लय : म्हांरा लाडला जंवाई

३३. सुणकर तीनूं ही दृष्टांत, सोचो कर अंतर-मन शांत।
सावज विनय बढ़ावै जी, सावज विनय बढ़ावै जी।।
३४. सेवा साझै जो जगमान्य, बाजै विनयी विज्ञ वदान्य।
लौकिक लाभ कमावै जी, लौकिक लाभ कमावै जी।।
३५. समझो निरवद-विनय विनीत! जनक रु जननी नै वर रीत।
जो कोइ धरम पमावै जी, जो कोइ धरम पमावै जी।।
३६. जोवो तीजो अंग[1] सुजाण, न्याय पतीजो कर पहचाण।
ऊऋणता अजमावै जी, उऋणता अजमावै जी।।

[2]आज म्हांरै आंगणियै में मोतीड़ां मेह बरसै रे।
प्रवचन-घन गुरुदेव रो।।

३७. मोहमयी अनुकम्पा सावज, निरवद है निरमोही रे,
सहज सिद्ध ल्यो द्वैधता।
उदाहरण ल्यो जिनरिख[3] मेघ[4] धर्मरुचि[5] आत्मविशोही रे,
भेदद्वय री वैधता।।
३८. छद्मस्थां री चूक, बात आ है कोई अणहोणी रे?
गोतम रो ल्यो दाखलो[6]।
अनुकंपा-व्यामोह वशे, क्यूं करणी आंख-मिचोणी रे?
समतामृत-रस चाखलो।।
३९. श्री जिन-आज्ञा बारै जाबक मिथ्यात्वी री करणी रे,
(तो) कुण क्यूं समदिष्टी बणै?
कथा असोच्चा-केवली री सूत्र भगवती-सरणी रे[7],
पहुंचै शिवपुर प्रांगणे।।
४०. मनपर्यवज्ञानी में भावै कृष्णा लेश्या पावै रे,
छट्ठै गुणठाणै गुणो।
मूलोत्तर गुण में मुनि गलत प्रभावे दोष लगावै रे,
आगम-भाषा में सुणो।।

---

१. ठाणं ३।८७
२. लय : तेजा
३. देखें प. १ सं. ८८
४. देखें प. १ सं. ८९
५. देखें प. १ सं. ९०
६. देखें प. १ सं. ९१
७. भगवई श. ९।३२

४१. देशव्रती श्रावक में जो नहिं किरिया अपचखाणी रे,
(तो) मिट्यो देश सर्व आंतरो।
प्रथम शतक में तीन क्रिया[1], आ क्यूं है खींचाताणी रे,
समझो रहस्य सिद्धांत रो।।
४२. आगम रा अधिकृत अध्येता श्रमणी-श्रमण सदा स्यूं रे,
आगम-श्रुति-आधार में।
मुद्रणबहुल समय में अब कुण करसी रोक कठा स्यूं रे?
प्रवहमान युगधार में।।

४३. [2]ज्यूं-ज्यूं तर्क-वितर्कां रो उत्थान जो,
समाधान सिद्धांत-युक्ति-पथ स्यूं दियो।
छापाबाजी रो विवाद वीरान जो,
नहीं भटकणो नीति-निपुण जुग-जुग जियो।।
४४. सक्षम समता-भावे श्रुतपारीण जो,
सिद्ध करी तेरापथ री शालीनता।
छट्ठी ढाळे सदा रही अक्षीण जो,
जिनशासन में वैचारिक स्वाधीनता।।

ढाळः ७.

दोहा

१. पूज्य शहर सरदार में, कीन्हो अथग प्रयास।
आयो श्रावक संघ में, एक नयो उछ्वास।।
२. चूरू री पूरी करण, माघ-महोत्सव-आश।
समवसर्या पुरजन तर्या, अधिको ज्ञान उजास।
३. कतिपय दिन रै आंतरै, स्थानकवासी पूज।
चूरू आया हूंस धर, नई निकाली सूझ।।
४. बारहविध संभोग[3] री, छेदसूत्र री छाण।
जन-जन मुख चरचा करै, भोळां नै भरमाण।।
५. देणो-लेणो नितप्रती, उपधि भक्त अरु पाण।
साधु साधवी नै नहीं कळपै, श्री जिन-आण।।

---

१. भगवई स. १/९७
२. लयः प्रभुवर आवी वेलां क्यांरे
३. साधु-साध्वियों के पारस्परिक व्यवहार

६. करी वर्जना सूत्र में, तो पिण पंथी संत।
प्रगट रूप अवहेलना करै हंत! हा हंत!
७. बेठ्यो ही बोल्यो तदा, श्रावक गोरूलाल।
तेरापंथी तो कहै नहिं उत्सूत्र सवाल।।
८. पूज्य जवाहिरलालजी, जम्पै आणी जोश।
जो देखावै पाठ में, तो पन्थी निर्दोष।।
९. प्रस्तुत हैं हम देखने, कहो चलें किस बार?
संतां रा गोरू कहै, खुला हमेशा द्वार।।

[1]सुणो-सुणो रे सुजाण! चूरू री चरचा।
जिणमें पाई गणराण, अनोखी अरचा।।

१०. सायंकाले पांगर्‌या रे, पंचमि समिति पूज।
बाहुड़तां बिच में खड़्या रे, दो मुनि[2] मग अवरूझ।।
११. कुण है कालूरामजी रे, तेरापन्थ-अधीश?
कहै शिष्य छानूं रह्यो रे? भानू भळकै शीष।
१२. करणी म्हांरै बातड़ी रे, पथ में कुण-सो काम?
कालू श्रमण-शिरोमणी रे, समवसर्‌या निज धाम।।
१३. कहै सन्त[3]—सन्तां! कहो रे, के करणी है बात?
नहीं नहीं थांस्यूं नहीं रे, आया जिण दिश जात।।
१४. दूजै दिन व्याख्यान में रे, ज्यांरे तखत विराज।
प्रारंभी गुरु देशना रे, त्रिगड़े ज्यूं जिनराज।।
१५. शोभै साधू-साधवी रे, त्यूं श्रावक-समुदाय।
अदृश देवी-देवता रे, ह्वै तो इचरज नांय।।
१६. लगभग प्रवचन-प्रांत में रे, ले प्रतिवादी-ख्यात।
नाम गणेशीलालजी रे, साधु-मंडली साथ।।
१७. आया बीकानेर का रे, श्रावक साथीवाल।
रोम-रोम जोमे भर्‌या रे, गोरूलाल दलाल।।

---

१. लय : तूं तो आज्या है नींद
२. स्थानकवासी मुनि
३. मुनि हेमराजजी आदि

१८. विप्र एक है साथ में रे, नाम दास-भगवान।
चरचा बिच में मानसी रे, निज मध्यस्थ महान।।
१९. बोलावै मुनि मगनजी रे, पा सद्गुरु-संकेत।
खड़्या गणेशीलालजी रे, बोलै स्वयं सचेत।।
२०. आप लोग बिन कारणे रे, आर्यां आण्यो आ'र।
ग्रहो नित्य आनन्द स्यूं रे, तिण रो के आधार?
२१. ल्याया गोरूलालजी रे, देखावण नै पाठ।
म्है पिण चावां देखणो रे, नहीं और ओचाट।।

[1]तड़ाकै भाखै रे वाणी।
भाखै गणसिणगार, सभासद सुणै सुधारस जाणी।।

२२. गुरु पूछै संभोग-वर्जणा, किस्यै सूत्र में भाली?
सभा सभासद विशद सुणै ज्यूं बांचो पाठ निकाली।।

[2]सुणो-सुणो रे सुजाण! चूरू री चरचा।

२३. लवै गणेशीलालजी रे, आया देखण पाठ।
बिना प्रयोजन क्यूं बहां रे, देखावण री बाट।।

[3]तड़ाकै भाखै रे वाणी।

२४. परम पूज्य फरमावै, जिण रो मंडन नहिं वर रीते।
तिण रो खंडन करणो, धरणो मूसल ऊंखल रीते।।

[4]सुणो-सुणो रे सुजाण! चूरू री चरचा।

---

१. लय : झड़ाकै छोड़ी हो बाला
२. लय : तूं तो आज्या ए नींद
३. लय : झड़ाकै छोड़ी हो बाला
४. लय : तूं तो आज्या ए नींद

२५. बोल्यो विभु-वच सांभळी रे, भगवानो भूदेव।
सत्य गणेशीलालजी रे, स्वामी वदै स्वमेव।।
२६. पहिलां मंडन कीजिए रे, खंडन करसी आप।
श्रोता सुणसी सांतरो रे, आपस रो आलाप।।
२७. यूं बहुली झकझोड़ स्यूं रे, नीठ निकाळ्यो पाठ।
छेद सूत्र-व्यवहार[1] रो रे, संभळायो शुभ घाट।
२८. सांभोगिक मुनि साधवी रे, तिणनै कळपै नांय।
आपस में कारण बिना रे, व्यावच करणी प्राय।।
२९. देण-लेण भत-पाण रो रे, व्यावच वच रो अर्थ।
साक्षी भ्रमविध्वंस की रे, एतदर्थ अभ्यर्थ।।
३०. हट्ठे कट्ठे होय के रे, एकट्ठे बहु साध।
आर्या-याचित भोगणो रे, श्री जिनवचन विराध।।

[2]सुजना! सांभळो।
है चरचा रो संबंध, सुजना! सांभळो,
अति अनुभवस्यो आनंद, सुजना! सांभळो,
श्री सद्गुरु सुखद समंद, सुजना! सांभळो,
पावै जो भाग्य अमंद, सुजना! सांभळो,

३१. पूछै स्वामी प्रेम स्यूं, जो द्वादशविध संभोग। सुजना!
सांभोगिक श्रमणी-मुनी, कहिवाये करत प्रयोग।। सुजना!
३२. नाम कहो गणना करी, तब वदै गणेशी व्यस्त।
एक-एक इण अवसरे, नहिं वरते सहु कण्ठस्थ।।
३३. भैक्षवसंघ-शिरोमणी संभलावै सकल सुरंग।
पाठ दिखावै प्रवर ही, सहसा ग्रहि समवायंग[3]।।
३४. इतरेतर मुनिवर सती, जो बारहविध संभोग।
कुण-सा कुण-सा कर सकै? आखो समुचित उपयोग।।
३५. थांरै उत्तर स्यूं सही, हो ज्यासी प्रश्न खलाश।
अनपवाद अपवाद री नहिं करणी पड़ै तलाश।।

---

१. व्यवहार सूत्र उद्देशक ५ सूत्र २०
२. लय : खोटो लालचियो
३. देखें प. १ सं. ६२

[1]सुणो सुणो रे सुजाण! चूरू री चरचा।

३६. *उत्कंधर तब उच्चरै रे, प्रतिपक्षी आवाज।*
प्रकटी लोचन-लालिमा रे, अंग अरुणिमा साझ।।
३७. उत्तर लेना है हमें रे, देने का क्या काम?
बीत चला है बात में रे, व्यर्थ हि समय प्रकाम।।
३८. जो अपनी इच्छा कहो रे, हां नां में इक बात।
गुरु का हुक्म नहीं हमें रे, हो विलम्ब व्याघात।।

लावणी छंद

चुरू री चरचा चतुर! सुणो चित ल्याई।
अष्टम पट्टाधिप री पेखो पुन्याई।।

३९. सुण बोलै तब भगवानदास द्विज जाती,
लख प्रतिपख-आंख्यां खून-बून बरसाती।
ऐ लाल गणेशी! लाल आंख क्यों करते?
तुम भी बोलो क्यों उत्तेजित हो डरते?
सुणतां ही मानो शीतलताई छाई।।
४०. लम्बोदरजी अब लवै जु लहुता ठाणी,
म्है पाठ दिखायो पहल प्रेरणा जाणी।
अब सदा बिना कारण लै अन्न रु पाणी,
बै करै प्रमाणित क्यूं है ताणाताणी?
केवल ओ कहणो और नहीं अरुणाई।।

[2]सुणो सुणो रे सुजाण! चूरू री चरचा।

४१. विनवै देख विनम्रता रे, क्षिप्र विप्र भगवान।
पूज्य पाठ फरमाविये रे, करुणा करी महान।।
४२. तीजे उल्लासे कही रे, सरल सातवीं ढाळ।
सिद्ध करै संभोग नै अब, कालू पूज्य कृपाल।।

१, २. लय : तूं तो आज्या ए नींद

ढाळः ८.

दोहा

१. हस्तलिखित व्यवहार रो, शुभ छट्ठो उद्देश।
कर-कमलां में थामियो, श्रीकालू करुणेश।।
२. सभा सभ्य-जन-संभृता, यथा चित्र-आलेख।
सकल श्रोतृगण श्रवण-हित, उत्कंठित अतिरेक।।
३. सुधा झरे मुख-निझरि, भवि-चकोर अनिमेष।
वासर में हिमकर रमै, या कालू गुरु एष।।
४. निरख विपक्षी-नयन में, प्रमिला रो परवेश।
वासर में हिमकर रमै, या कालू गुरु एष।।
५. असहन-जन-मन-चक्र की वक्रगती अविशेष।
वासर में हिमकर रमै, या कालू गुरु एष।।
६. ऊंचै स्वर गणिवर यदा, पाठ पढ्यो मुख जोर[1]।
भविक-मोर प्रमुदित हुया, लख सावन-घनघोर।।
७. कुमति-कुरंग विरंग-चित, मन-कल्पित सिंहनाद।
त्यूं विपच्छ-मछ-कच्छ-दिल सागर रो सम्वाद।।

लावणी छंद

८. दूजै गण स्यूं कोई निर्ग्रन्थी आई,
आचार-शिथिल संयम में दोष लगाई।
जब तक न करै आलोयण, दण्ड न लेवै,
तब तक तिणनै निर्ग्रंथ न गण में लेवै।।
९. तिण रै साथै संभोग असण-पाणी रो,
नहिं करै श्रमण संयम-तप-धर्म-सधीरो।
यदि निर्ग्रंथी अपणा दूषण आलोवै,
कर प्रतिक्रमण प्रायश्चित स्यूं अघ धोवै।।
१०. तिण नै गण में ले साथे भोजन-पाणी-
निर्ग्रंथ करै, तिण में मत दूषण जाणी।
व्यवहार सूत्र रो प्रगट पाठ ओ देखो,
ल्यो पछै मिलावो अगलो पिछलो लेखो।।

---

१. व्यवहार सूत्र उद्देशक ६ सूत्र १०, ११

[1]छोड़ो टेक कुपंथ री, मत ओढ़ो रे मनकल्पित सोड़ क।
रोढ़ो मनमातंग नै, है प्रोढ़ो रे कलियुग रो झोड़ क।।

११. अविचल वाणी वागरै, है सम्मुख संसद ज्यूं चित्राम क।
आगम-भाषा सिद्ध है, दोन्यां रो हो संबंध सुयाम क।।
१२. आई दूजै संघ स्यूं, निर्ग्रंथी हो तिण भेळो साध क।
करै संभोग आहार रो, निज गण री हो कियो कुण अपराध क?
१३. वैयावच री वर्जणा, बिन कारण हो की त्रिभुवनभाण क।
स्पर्श रूप संभाविए, नर समझै हो जो चतुर सुजाण क।।
१४. व्यावच भेदां में गिण्यो, असणादिक रो आदाण-प्रदाण क।
इण पाठे पढ़णो नहीं, बारह-विध हो संभोग प्रमाण क।।
१५. भात-पाणी रो तीसरो, व्यावच रो हो नवमो संभोग क।
दोन्यां नै इक लेखव्यां, क्यूं करता हो यूं पृथक प्रयोग क।।
१६. तिण कारण मुनि-साधवी बिन कारण हो भेळो आहार क।
करै न दूषण रंच ही, ल्यो देखो ओ आगम-आधार क।।
१७. अबै विनायकजी वदै, इण पाठे हो नहिं किंचित ताण क।
पिण कारण-अवलम्बका, है सारा हो कर देखो छाण क।।
१८. सुणो दास भगवानजी! म्हांरै तो हो थे ही मध्यस्थ क।
निर्ग्रंथी एकाकिनी, क्यूं आवै हो यदि होवै स्वस्थ क?
१९. कारण में देणो कह्यो, असणादिक हो म्हांनै मंजूर क।
पूछै जब भगवानजी, तब जम्पै हो गुरुदेव अदूर क।।
२०. है कारण उदर-व्यथा? ज्वर-पीड़ा? हो या मस्तक-शूल क?
प्रदर? भगन्दर? वातकी? बतलाओ हो आगम-अनुकूल क।।
२१. संयम री स्वच्छंदता, इक व्याधी हो नहिं दूजो रोग क।
ते पिण मेटण कारणे, धुर कीजे हो भैषज्य-प्रयोग क।।
२२. प्रायश्चित्त-विशुद्धता, अब बाकी हो नहिं कारण लेश क।
भात-पाण तिण संग में, भोगवणो हो कह्यो वीर जिनेश क।।

[2]चूरू-चरचा मांही जी क, चूरू-चरचा मांही जी।
तेरापन्थ-भदंत सुजश झंडी फहराई जी।।

---

१. लय : नींदड़ली हो वैरण होय रही
२. लय : रूठोड़ा शिव शंकर म्हांरै घरै पधारोजी

२३. बोलै तब भगवानदास जी, सुणी सुगुरु फरमाणी।
म्है पहचाणी अक्षर-अक्षर, सत्य पूज्य री वाणी।।
२४. बिन कारण जगतारण कालू, सिद्ध कियो संभोग।
वदो विनायक वायक दूजी, लायक जोग विलोग।।
२५. थी जिज्ञासा जिणरी खासा, उत्तर तिण रो आयो।
आशातीत खुलासा सुण-सुण, म्हांरो दिल उलसायो।।
२६. वदै वदनमल अबै बांठियो, बीकाणै रो वासी।
जैनतत्व नै थों क्या जाणो? गहन बात आ खासी।।
२७. भणै भास भगवानदास यूं, हम सच्चों के साझी।
नहिं अन्यायी के अनुयायी, राजी हो बेराजी?
२८. तेरापंथ-महंत पूज्य री, विजय-दुंदुभि बाजी।
हम तो ऐसी बात कहेंगे, राजी हो बेराजी।।
२९. सभा-सभासद स्व-पर-दर्शणी, चित्रित-चित आलोचै।
चरचा-चरचा सदा चरचता, मौन खड़्या कांइ सोचै?

[1]छोड़ो टेक कुपंथ री

३०. पोणी दो घंटां सुधी, प्रतिवादी हो ऊभा गुरु पास क।
मौन धार मारग लियो, नहिं कीन्हो हो प्रत्युत्तर खास क।।
३१. माघमहोत्सव मास री, चूरू पर हो की महर महान क।
ढाळ आठवीं ठाट स्यूं, सुणो बांचो हो चर्चा आख्यान क।।

ढाळः ९.

दोहा

१. रतनदुरग शासणसुभग, पादार्पण शुभ याम।
तीरथहित चरचा तदा, चाली अति आयाम।।
२. दूगड़[2] पुर सरदार रा, प्रतिपख-प्रेरक भाल।
पूछै तीरथ वीर रो, चलसी कितैक काल?

---

१. लय : नींदड़ली हो वैरण
२. पूसराजजी दूगड़

३. स्वामी समझावै सहज, तीरथ प्रवचन खास।
वर्ष एकविंशति सहस, चलै भगवती भास।।
४. संघ-चतुष्टय रूप जो, तीरथ कहिये प्राय।
तिणरो तो लेखो नहीं, देखो न्याय मिलाय।।
५. इत्यादिक उत्तर दिया, आगम-युक्ति-सुयुक्त।
पिण आभ्यन्तर रोग जो, मिटै न तन्त्र-प्रयुक्त।।
६. सप्तबीस दिवसां लगे, जम्यो सजोरो झण्ड।
राजलदेसर में रज्यो, पूज्य-प्रताप प्रचण्ड।।
७. श्री गुरु-चरणांगुष्ठ में, व्रण-वेदन-उद्भाव।
मासाधिक तिण कारणे, रहणो हुयो स्वभाव।।

[1]मुनि महिमागारा।

मौलिक गुण स्यूं इकसारा रे, मुनि महिमागारा।
उत्तर गुण न्यारा-न्यारा रे, मुनि महिमागारा।
स्याद्वाद सिद्ध करणारा रे, मुनि महिमागारा।
भैक्षव-गण रा रखवारा रे, मुनि महिमागारा।
कालू गुरु-कर निज शिर धारी, भारी हिम्मतवारा रे।।

८. अवसर वर गुरुदेव विचारी, श्रमण-सती सिंघाड़ा रे। मुनि महिमागारा।
ग्राम-ग्राम आयाम सफर पर, विचराया परबारा रे।। मुनि महिमागारा।
९. विद्याध्ययन शयन तज कर-कर, भर-भर ज्ञानपिटारा रे।
समय-सार कंठस्थ धार, गुरु-सेव करी इकधारा रे।।
१०. संस्कृत भाषा दूध-पतासा ज्यूं की एकाकारा रे।
प्राकृत-पाठी शठता नाठी, लाठी स्यूं फणिदारा रे।।
११. चर्चावादी सुण प्रतिवादी, आधी रात जगारा रे।
कर शास्त्रार्थ यथार्थ घुरावै, घम-घम जीत-नगारा रे।।
१२. व्याख्यानामृत वर्षण स्यूं, आकर्षण लोक हजारां रे।
विध-विध विषय-विशारद-रंजन भंजन भ्रम भवियां रा रे।।
१३. रम्याकार मार-मद मोच्यो, लोच्यो शिर बहु वारां रे।
रग-रग रोच्यो गुरु शिक्षा-रस, जग जस री मनुहारां रे।।

---

१. लय : दुलजी छोटो-सो

१४. पांच सात दस कोस विहारे, हाजर ऊठसवारा रे।
पोल खोल पाखंड खंड री, चमकै गगन-सितारा रे।।

दोहा

१५. श्री गुरुवर दै सामयिक, सबनै शिक्षा तीन।
बहिर्विहारी मुनि सती, ग्रहण करै संगीन।।
१६. प्रथम, स्थान नहिं दूसरै जाणो चरचा हेत।
अरु मध्यस्थ न मानणो, रहणो सदा सचेत।।
१७. स्थान ठिकाणो आपणो, है आगम मध्यस्थ।
जिज्ञासू पृच्छा करै, आ ही चरचा स्वस्थ।।
१८. सुखकर शिक्षा दूसरी, रहणो क्षमा-प्रधान।
क्षमी शमी शास्त्रार्थ में, राखै शासण-शान।।
१९. उत्तेजित हो आपरो, आपो भूलै आप।
बहुश्रुती वादी व्रती, प्रथम पराजय प्राप।।
२०. तीजी है, शास्त्रार्थ में देणो एक प्रमाण।
फिर आवश्यकता लखी, दै अवसर रा जाण।।
२१. एक साथ हो आखतो, दै अनेक संदर्भ।
स्वयं अवज्ञा मोल लै, गहन पराजय-गर्भ।।
२२. तीनूं शिक्षा सांतरी, सुण राखै जो ध्यान।
बो निश्चय शास्त्रार्थ में, पावै विजय महान।।

[1]जय-जय अद्भुत कालु कलानिधि गण-गगनांगण छायो,
ठाम-ठाम निज धाम पठाकर भ्रम-भूच्छाय भगायो।
नव आलोक जगायो।।

२३. दया-दान रो मान महामुनि, पुर-पुर में समझायो।
जैनधर्म रो मर्म नर्म दिल, शर्म हेत सिखलायो।।
२४. मोल धर्म अथवा अनमोलो? बोलो मत सकुचायो।
बलप्रयोग आवेश धर्म है, वा उपदेश सुहायो?

---

१. लय : देखो रे भई कलजुग आयो

२५. हिंसाऽहिंसा-मध्य प्रश्न हो, व्रताव्रते बतलायो।
किं वा धर्म आप्त-आज्ञा में, वा विपरीत बतायो?
२६. पात्र दान कल्याण-निदानं, वा अपात्र कहिवायो?
पात्रापात्र विवेचन-रेचन, ले भ्रम-मेल मिटायो।।
२७. दया सत्य संतोष ब्रह्मव्रत, चौर्य त्याग चित चायो।
पूर्ण पात्र रा लक्षण लख-लख, इतर विलक्षण गायो।।
२८. नीति नीति है धर्म धर्म है, खातो जुदो खतायो।
भेळ सभेळ न करो हरो भ्रम, खरो धर्म रो पायो।।
२९. निरख खजानो छानो-मानो, प्रतिपख जी घबरायो।
प्रेरक सीनो जो हठभीनो, थर-थर थर कम्पायो।।
३०. तेरापंथ-कंथ रो किल्लो, टिल्लो मूल न खायो।
निराकरण सिद्धांत-शरण स्यूं, निज मत को करवायो।।

[1]मुनि महिमागारा।

३१. लोक-लोक मुनि-थोक अलौकिक, विस्मित-चित है सारा रे।
भाटे-भाटे प्रकट देवता, 'गोरख गुदरीवारा'[2] रे।।
३२. जाण्या टाबर, टाबर पर अै गाबड़ भांजणहारा रे।
नवमी ढाळे भाल विशाले, कालू जय-जयकारा रे।।

ढाळः १०.

दोहा

१. औषध-योगे पूज्य रो, अरुज हुयो अंगुष्ठ।
समवसरे बीदासरे, माजी मन संतुष्ट।।
२. श्री सद्गुरु-अनुमति बिना, साधु जोरजी नाम।
जावजीव अनशन कियो, गढ़ सुजान अतिधाम[3]।।

---

१. लय : दुलजी छोटो-सो
२. देखें प. १ सं. ९३
३. देखें प. १ सं. ९४

३. गुरु-इंगित-आदेश बिन, क्रिया बणै अभिशाप।
मिलै न सचमुच सफलता, तेरापथ री छाप।।
४. बुढ़ापो जर्जर तनू, पंगू है बिदरंग।
विषम कर्मगति योग स्यूं, बण्यो भ्रष्ट व्रत-भंग।।
५. छापुर पुरवासी तदा, अभिलाषी अतिमात्र।
चउमासी गुरुदेव री, बांछै पुलकित गात्र।।
६. कालूराम दूधोड़ियो, हरख भंसाली[1] भाल।
गोविंद[2] तिलोक[3] नाहटा, बहु जन साथीवाल।।
७. जूना-जूना जन घणां, है सिर वदन सफेत।
अजब अनोखो घड़ मिल्यो, म्है देख्यो निज नेत।।
८. जमघट बीदाणै जम्यो, मध्य हाजरी मान।
जननी जूनी जोगणी, इत जनुभूमी जान।।
९. मैं जननी, जननी प्रथम, जन्मभूमि पश्चात।
तिण कारण चौमास री, आश रखूं साख्यात।।
१०. प्रबल प्रतीक्षा उभय री, परख कियो फरमाण।
छापुर या बीदासरे, अग्रिम पावस जाण।।
११. जन्मभूमि जाग्रत करी, जागरूक जगदीश।
गुरुवर सह मुनिवर सती, षड्विंशति चउतीस।।

[4]शासन-अधिनेता कालूयशोविलास सुधारस झरतो रेसी रे।
जय आत्म-विजेता सदा अनघ संघीय भावना भरतो रेसी रे।।

१२. उगणीसै पिच्यासी पावस-काल में रे,
छापुर पुर नै सुरपुर-सो सरसायो रे, शासन-अधिनेता...।
चहल-पहल-सी चिहूं ओर लागी रही रे,
वासर निशि भर धर्म-रंग बरसायो रे, शासन अधिनेता...।।
१३. चाड़वास इक पास बिदासर भलकतो रे,
गढ़ सुजान पाड़ोसी है पड़िहारो रे।

---

१. हरखचन्दजी भंसाली
२. गोविन्दरामजी नाहटा
३. तिलोकचंदजी नाहटा
४. लय : डालगणी रै पाट विराज्या भान ज्यूं

बिच में छापर पांच पुरां रो झूमको रे,
बाहिर ताल विशाल पेखतां प्यारो रे।।
१४. है शय्यातर रेंवतमलजी-नाहटा[1] रे,
बो विशाल पंडाल हवेली पासे रे।
प्रथम उपद्रव चल्यो 'जवां' रो जोर स्यूं रे[2],
कुट्टिम प्रांगण फिर सारे चोमासे रे।।
१५. प्रातः प्रवचन स्वामी स्वमुख समाचरै रे,
रामचरित्र रात में रस-सो बरसै रे।
सारै पुर री करी गोचरी पूज्यजी रे,
परिवारिक परिचय स्यूं जन-मन हरसै रे।।
१६. नयो खेत्र अभिनव पावस री फर्सणा रे,
नव-नव यात्री आया हुलस हजारां रे।
सामाजिक है सफल व्यवस्था सांतरी रे,
नित नवली-सी बणी बहार बजारां रे।।
१७. प्रारंभी 'सिद्धांतचंद्रिका' चाव स्यूं रे,
म्है साथी मुनि पढ़ां परम उल्लासे रे।
बै दिन आवै याद साद गहगो हुवै रे,
बो चेहरो बै आंख्यां दिव्य प्रकाशे रे।।
१८. पर्यूषण पट्टोत्सव चरमोत्सव-छटा रे,
त्याग-तपस्या यशोगान गरणावै रे।
पावस पूरयां सुजानगढ़ पावन कर्‌यो रे,
पोष मास समुदित मुनि सती सुहावै रे।।
१९. हो हतभाग हमीरो हीरो हारियो रे-
संयम, विषय-वासना रो वशवर्ती रे।
गण-अवगुण सीमातिक्रम कर बोलियो रे,
अपणी भूल छुपाणै रो बण अर्थी रे।।
२०. प्रतिपक्ष्यां में मिल्यो परम उन्माद स्यूं रे,
दे-दे खूब मुबारकबाद बधायो रे।

---

१. श्री हुलासमलजी नाहटा के दत्तक पुत्र
२. देखें प. १ सं. ६५

पखवाड़ो भी पूरो रह्यो न भेख में रे,
चूरू में अधराते आखिर धायो रे।।

२१. एक जन्म में धार्‌या भेख अनेकधा रे,
निन्दक निगुरो नारकीय दुख भोगे रे।
अपणा पाप भुगतणा पड़सी आपनै रे,
व्याधि-आधि संतत संजोग-विजोगे रे।।

२२. पिच्यासी मर्याद-महोत्सव लाडणूं रे,
ओ मेळो मंडै प्रतिवर्ष सवायो रे।
दूजै दिन स्यूं कुण जाणै किण जोग स्यूं रे,
गुरुवर सह सित्तर संतां ज्वर आयो रे।।

२३. अभयराजजी स्वामी रो कारज सझ्यो रे,
अनशनयुत आराधक मरण समाधी रे।
दर्शन दीन्हा देव च्यार शरणा दिया रे,
सम्यग सरध्या आ असली आजादी रे।।

२४. कर विहार छापर पड़िहारे छाजता रे,
भैरूं-हरख[1] भ्रात री विनती मानी रे।
दिन इक्कीस विराज्या पहली बार ही रे,
मां-बेट्‌यां[2] नै दी दीक्षा वरदानी रे।।

२५. वसुगढ़ गणवासव स्यूं की अभ्यर्थना रे,
शहर लाडणूंवासी पावस सारू रे।
बाकी क्षेत्र फरसणै री विनती करै रे,
दी सबनै मंजूरी देव दिदारू रे।।

२६. भर गरमी रो काल, झाळ ज्यूं लू चलै रे,
आतप अति विकराळ तपोबलधारी रे।
सत्पुरुषां री सरणी दसमी ढाळ में रे,
करो-करो अनुसरण सरण सुखकारी रे।।

---

१. भैरूंदानजी, हरखचन्दजी सुराणा (पड़िहारा)
२. फूलांजी और राजकंवरजी (गोगुंदा)।

ढाळः ११.

दोहा

१. उत्तम अवसर सफर-हित, स्वामी लख साक्षात।
फतेह फतेहपुर में वरण, प्रथम पधार्‌या नाथ।।
२. दर्शनार्थ आवागमंन, समन हुओ गुरु-पास।
प्रश्नोत्तर रो क्रम चल्यो, प्रतिदिन मिल्यो प्रकाश।।
३. प्रतिपख बहकावट बले, जो गहरो गतिरोध।
नाथ-पदाम्बुज रै निकट, सिमट्‌यो पा अवबोध।।
४. च्यार दिवस कृपया स्ववश, कियो निवास सुवास।
स्वाम रामगढ़ संचर्‌या, विद्वानां रै वास।।

५. [1]च्यार दिवस आवास कियो गुणराश,
श्रावक-गण-प्यास बुझाणनै जी, म्हांरा राज।
पंडित ब्राह्मण आया गुरुवर पास,
मन-संशय सकल मिटाणनै जी, म्हांरा राज।।
६. दान दयामय! देतां रोको आप,
यूं जन-वचने म्है सांभळी जी, म्हांरा राज।
विप्र जिमायां जाबक जाणो पाप,
तो धर्म-हेत कुण-सी गळी जी? म्हांरा राज।।

चौपई छंद

७. समझो जैनधर्म री धारा,
तेरापंथ मान्यता द्वारा।
दान दान सब एक नहीं है,
लोक शास्त्र री प्रथा रही है।।
८. अभय - ज्ञान - संयम - संधाता[2],
उभय भवां पावै सुखसाता।
लौकिक दान लोक अनुमोदै,
और बिठावै ऊंचै ओधै।।
९. दानां रो पार्थक्य बताणो,
तेरापथ-मंतव्य पिछाणो।

---

१. लय : बधज्यो रे चेजारा थारी बेल
२. अभयदान, ज्ञानदान और संयमदान

देतां-लेतां रोक लगाणी,
आ है करम-बंध री क्हाणी।।
१०. ब्रह्मभोज री अब ल्यो व्याख्या,
जिन-आगम री अविचल आख्या।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हो,
जातिवाद रो भ्रम विमुद्र हो।।
११. जाति-विप्र भोजन व्यवहारी,
गुण-द्विजाति है आत्मोद्धारी।
महाभारत[1] अरु उत्तरज्झयणं[2],
ब्राह्मण-लक्षण समुचित वयणं।।
१२. संयम-सहित विप्र रो खाणो,
संयम-पोषक धर्म सुहाणो।
स्वयं असंयम में जो खावै,
बो जैनागम पाप बतावै।।
१३. है कटु सत्य प्रतिवचन म्हांरो,
मानस-संशय रो हरणारो।
निरख-निरख मुख करणो टीको,
धर्मनीति में लगै न नीको।।

१४. [3]पंडित निसुणी सद्गुण-मंडित पूज,
तेजस्वी तीर्थ-शिरोमणी जी, म्हांरा राज।
अटल अखंडित समयोचित है सूझ,
लख तन-मन हर्ष बधामणी जी, म्हांरा राज।।
१५. अब थैलासर चूरू शुभ चरणांह,
करुणानिधि पूज्य पधारिया जी, म्हांरा राज।
श्राद्ध-समाज समागत जो शरणांह,
मन-वांछित काज समारिया जी, म्हांरा राज।।
१६. उभय समय जिन-वाङ्मय सरस बखाण,
भैक्षव-वच रचना वागरी जी, म्हांरा राज।।

---

१. शांतिपर्व, अध्याय २४५, श्लोक ११-१४, २२-२४ गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा मुद्रित
२. उत्तरज्झयणं अ. २५/२२-२६
३. लय : बधज्यो रे चेजारा

दान दया री रेस दिखाई छाण,
हुलसाई जनता नागरी जी, म्हांरा राज।।

१७. कोठारीजी[1] आया चरचा काज,
जो प्रेरक है प्रतिपक्ष रा जी, म्हांरा राज।
प्रश्न चलावै प्रभु चूकां रो प्राज,
प्रत्युत्तर अक्षर-अक्षरां जी, म्हांरा राज।।

[2]मुनिप री मीठी वाणी।
हां, मुनिप री मीठी वाणी, वरण-वरण में अमिय झराणी।
धन्य भाग्य निज मान, पान कीन्ही भवि-प्राणी रे।।

१८. आत्म-पर-उभय अनुकम्पा की चोभंगी ठाणंगे[3] आखी।
धुर भंगे छद्मस्थ जिनेश्वर री स्थिति ठाणी रे।।
१९. पर अनुकंपा कीन्ही स्वामी, गोशालक-रक्षा रा कामी।
वेश्यायण री तेजोलब्धी, बीच हणाणी रे।।
२०. सात-आठ पग पाछा सिरकै, नहिं कोइ नियम जिनागम निरखै।
बलिचंचा पर बिलख तामली तापस ताणी रे[4]।।
२१. लंघ्यो कल्प स्वल्प तिण वारी, चूक हुवै यूं छद्मस्थां री।
भावे भगवन भूल करै नहिं केवलनाणी रे।।
२२. तीजै दिन पुनरपि ते आया, तीजे भांगे प्रभु ठहराया।
प्रथम भंग जिनकल्प हुवै, यूं बात तणाणी रे।।
२३. जिन जिनकल्पे अंतर जाणो, द्वादशविध उपकरण प्रमाणो।
राखै मुनि जिनकल्प भाष्य[5] में स्पष्ट बखाणी रे।।
२४. रचियो चवदै सौ बरसां रो, क्यूं नहिं मानण योग्य विचारो।
पूज्य कहै नहिं मान्य समय ज्यूं ग्रन्थ-कहाणी रे।।
२५. आगम स्यूं प्रतिकूल पड़ै है, भाष्य-चूर्णि कहिं बीच अड़ै है।
बांचण और सुणण में भी कहिं-कहिं असुहाणी रे।।

---

१. चम्पालालजी कोठारी, चूरू
२. लय : राम रटलै रे प्राणी
३. ठाणं ४।५५८
४. देखें प. १ सं. ६६
५. बृहत्कल्प भाष्य, उ. ३

२६. भाष्य बिचै तो आ ही आछी, अभयदेव री टीका[1] बांची।
है जिणमें छद्मस्थ जिनेश्वर चर्या छाणी रे।।
२७. आ पिण टीका मान्य सही क्यूं? भाष्य-चूरणी राह नहीं क्यूं?
श्री गुरु–आचारंग-अंग स्यूं मिलती माणी रे।।
२८. कोई पूछै तो पिण स्वामी, बोलै नहीं मौन अनुगामी।
बाध्य करै कोई, स्थानान्तर-गमन पिछाणी रे।।
२९. भीषण भीम परीषह स्हेवै, कष्ट उदीर उदीरी लेवै।
इत्यादिक छद्मस्थ जिनेश्वर रीत रचाणी रे।।
३०. धुर श्रुतखंधे नवमज्झयणे प्रथमोद्देशे सुधरम-वयणे।
मूल पाठ अनुकूल वृत्ति री बात बणाणी रे।।
३१. जो छद्मस्थ जिनेश रिवाजे, बर्ते ते जिनकल्पी बाजे।
पर दोनूं ही प्रथम भंग फरसै खरसाणी रे।
३२. च्यार हजार शिष्य री टोळी, भव-सागर में आत्म झकोळी[2]।
तदपि न खोली मौन, ऋषभ री सुणी कहाणी रे।।
३३. प्रथम ऋषभ अंतिम श्री वीरा, एक पन्थ रा पथिक सधीरा।
पर अनुकम्पा-हेत वीर की आंत तपाणी रे।।
३४. पाछै लब्धि फोड़णी बरजी, सा छद्मस्थपणै प्रभु सरजी।
आ ही केवल चूक, कहत काया कंपाणी रे।।
३५. जैनागम री साख सुंहाळी, सुण हरखी सबरी रूंवाळी।
स्वमति-अन्यमति-मध्य मुनिप-महिमा महकाणी रे।।

३६. [3]इण पर कीन्हो गुरुवर प्रवर प्रयास,
सव्यास कहो क्यूंकर भणूं जी, म्हांरा राज।।
द्वादश दिवसां चूरू नगर निवास,
अब पुर सरदार पधारणूं जी, म्हांरा राज।।
३७. षोडश दीक्षा तिण पुर एकण साथ,
की नाथ नवेली बातड़ी जी, म्हांरा राज।
तीन सजोड़े गुरु-गोडे शिर नात,
दस वनिता बलि गुणरातड़ी जी, म्हांरा राज।।
३८. एकज सरखी परखी लंबी लेण,
जन-मानस विस्मय स्यूं भर्‌यो जी, म्हांरा राज।

---

१. स्थानांग टीका पत्र २७४
२. देखें प. १ सं. ९७
३. लय : बधज्यो रे चेजारा

ओ गुरुवर है श्री जिनवर री देण,
या आरो चौथो ओसर्‌यो जी, म्हांरा राज।।
३९. जोयो जग में पग-पग पंचम काल,
तिण लगभग बीजो बोलियो जी, म्हांरा राज।
रे भाई! भिक्षूशासण रो भाल,
नित क्षेत्र विदेहे तोलियो जी, म्हांरा राज।।
४०. अपणै गण में शाश्वत चौथो आर,
इण में सन्देह न आणिये जी, म्हांरा राज।
यूं जन-जन-मुख मुखरित हृदयोद्‌गार,
सब पूज्य-प्रभाव पिछाणिये जी, म्हांरा राज।।
४१. भारी कीन्हो गणधारी उपकार,
सरदारशहर जनता तरी जी, म्हांरा राज।
तीजे उल्लासे ग्यारहवीं ढ़ार,
नव भाव-भंगिमा स्यूं भरी जी, म्हांरा राज।।

ढाळः १२.

दोहा

१. एक सफर में सुगुरुवर, कियो अनोखो काम।
एक वृष्टि उत्कृष्टि ज्यूं, निखिल निवारै घाम।।
२. बिलबिलता संतप्त दिल, किंकर्तव्यविमूढ़।
ग्राम-ग्राम जन स्वाम री, करै प्रतीक्षा गूढ़।।
३. डगमग डोलत जो मनुज, दृग-दौलत लखि पूज।
दिल अडोल तिणरो हुयो, मन री मिटी अमूज।।
४. संशय सब शयनालये, गया शयन-हित शांत।
भर्मी दृढ़धर्मी हुया, हळुकर्मी अभ्रान्त।।
५. दान दया री अनुभवी, भवी धारणा नव्य।
भव्य भाव स्यूं सभ्यजन, समझ्या निज कर्तव्य।।
६. वेषधरा दर्वीकरा, समकित जीवन-हेत।
श्वेत-चेत जाण्यो सही, शासनेश-संकेत।।
७. गुण-गोरो दोरो हुयो, जोरो-तोरो खास।
कोरो यदि वर्णन करूं, ग्रन्थ भरूं सव्यास।।

[1]म्हांरा पूज्य परम गुरु! प्यारा लागो जी,
सूरज चांदै-सी आभा आवै याद। म्हांरा...
हो जी हो छोगांजी रा छावा! आछा लागोजी।।

८. साल छियासी चंदेरी में पावस ठव्यो, म्हांरा पूज्य...,
सोळह बरसां स्यूं हुई फलवती आश, हो म्हांरा पूज्य...।
श्रमण सताई सत्तावन श्रमणी शोभती, म्हांरा पूज्य...,
दुःषम आरै में सतजुग रो आभास, हो म्हांरा पूज्य...।।

९. दोन्यूं हेल्यां बैदां री लागै दीपती,
प्रवचन-मंडप में नित मधुरो व्याख्यान।।
सावण-भादो में सामूहिक तप शोभतो,
खूब बढ़ायो मम मातृभूमि रो मान।।

१०. उण चोमासै सिद्धांतचन्द्रिका म्है पढ़ी,
राते घंटां भर चांद चानणै बैठ।
प्रातः गुरु-मुख स्यूं नयो पाठ बंचावता,
रटता ऊंचै स्वर चित-चंचलता मेट।।

११. पश्चिम रात्रे प्रत्यावर्तन गुरु पास में,
बे दिन आवै है अब लों याद हमेश।
सान्वय दसवेयालिय सिंदूरप्रकर कर्‌यो,
भीमजि-स्वामी रो ओ आभार विशेष[2]।।

१२. तिण चउमासे इक भीषणतम घटना घटी।
सोहन-चूरू पर घिरी अंधेरी रात।।
पाछो संभव्यो तो उदाहरण मुश्किल मिलै।
भैक्षवगण में इतिवृत्त बण्यो विख्यात[3]।।

दोहा

१३. पावस पूर्‌यां चतुरगढ़, बीदासर दे दर्श।
राजलदेसर में कर्‌यो, पावन पदरज स्पर्श।।

---

१. लय : चंदन चोक्यां में सरस बखाण
२. देखें प. १ सं. ९८
३. देखें प. १ सं. ९९

१४. राजाणे गंगाण स्यूं, आई स्पेशल ट्रेन।
भैरूंदानजी चौपड़ा, की आ सारी देन[1]।।
१५. करै खड़्या सब प्रार्थना, सित्यासिय चउमास।
गंगाशहर करो गुरु! फळै हमारी आश[2]।।

[3]म्हांरा पूज्य परम गुरु! प्यारा लागो जी।

१६. राजलदेसर स्यूं मजलो-मजले विचरता,
मर्यादोत्सव छंय्यासी रो सोल्लास।
मंड्यो मोटै मंडाणै दुर्ग सुजाण में,
सारै संवत्सर रो ओ अवसर खास।।

सोरठा

१७. अगवाणी रिखिराम, अपथापी अक्खड़पणै।
बह ज्यातो कहिं वाम, अहंवृत्ति आखिर बुरी।।

गीतक छंद

१८. लाडणूं व्याख्यान में इक बार दुस्साहस कियो,
स्पष्ट संघ-परम्परा-प्रतिकूल संभाषण दियो[4]।
तुरत श्रावक-तर्कणा, अभिमान-वश मानी नहीं,
सुगुरु पे पहुंची शिकायत, संघ-मर्यादा सही।।
१९. डायमलजी नाहटा गुरु-चरण में आ वीनवै,
गढ़ सुजान सुजान-शेखर सुगुरु स्खलना अनुभवै।
दूसरै दिन आवतां ही पूछियो रिखिराम नै,
कड़ो ओळम्भो रु प्राश्चित दियो सब रै सामनै।।
२०. संघपति री अनुज्ञा करणी पड़ी स्वीकार है,
भिक्षुशासन-पद्धती अविकार है सुविचार है।

---

१. देखें प. १ सं. १००
२. देखें प. १ सं. १०१
३. चंदन चोक्यां में सरस बखाण
४. संघीय-परंपरा के विरुद्ध मूर्ति-पूजा संबंधी बात कही गई।

दण्ड-माफी की हुई अभ्यर्थना कइ बार है,
सुगुरु अस्वीकृत करी, अनुशासना-अधिकार है।।

[1]म्हांरा पूज्य परम गुरु! प्यारा लागो जी।

२१. स्थानकवासी भी खासी संख्या में मिली,
तिण पुर आया है ले अभिनव विश्वास।
बुझतो दीयो ज्यूं टिम-टिम कर ज्यादा जळै,
त्यूं प्रतिपक्ष्यां रो ओ अंतिम उछ्वास।।

[2]सत्य सदा सुखदाई हो, है सार सत्य संसार में।
धीरज राखो भाई हो, अनुभवस्यो साक्षात्कार में।।

२२. घूम-घूम दो बरसां हो, की धूम-धाम हर ग्राम में,
थळी प्रान्त रो पूरो कर्‌यो प्रवास।
कसर न राखी राई हो, अंगड़ाई ले आगै बढ्‌या,
खूब दिखायो अंतर रो आभास।।
२३. लौकिक लोकोत्तर रो हो, कर मिश्रण लोक लुभावणो,
अल्प पाप अतिनिर्जर रो अधिकार।
पुण्य धर्म री करणी हो, दो भिन्न-भिन्न दर्शावतां,
आज्ञा बाहिर पुण्य-बंध स्वीकार।।
२४. दया धर्म री भारी हो, ठेकेदारी की ठाट स्यूं,
किया प्रकाशित रच-रच नूतन ग्रन्थ।
'भ्रमविध्वंसन' ऊपर हो, 'सद्धर्ममंडनं' साझियो;
'अनुकंपा-विचार' 'अनुकंपा-पंथ'।।
२५. अथक-अथक श्रम कीन्हो हो, पेंफलेट पत्रिका पुस्तिका,
तेरापंथ मान्यता नै झुठलाण।
चर्चा-वार्ता भाषण हो, संभाषण आकर्षण भर्‌या,
पर सारा बेकार बण्या बंधाण।।

---

१. लय : चंदन चोक्यां में सरस बखाण
२. लय : चंडाली चोकड़ियां हो

[1]म्हांरा पूज्य परम गुरु! प्यारा लागोजी।

२६. हाथे लागी निराशा च्यारूं ओर स्यूं,
दो बरसां रो उद्योग सारो मोघ।
अजमाणो अब बाकी अस्त्र आखिरी,
करणो सम्यग शास्त्रार्थ रो प्रयोग।।
२७. अजहू भूल्या चूरू-चरचा री चासणी,
शायद चेष्टा है उणरी खटक मिटाण।
चर्चा-चर्चा रो हो-हल्लो माच्यो घणो,
वाहण बंध्या है अपणै-अपणै ठाण।।

दोहा

२८. कृत-निर्णय गणपति तदा, निश्चय नीति-प्रमाण।
प्रश्न-पडुत्तर रो सुपथ, जैनागम रै पाण।।
२९. पर स्थानांतर जायकर, थाप इतर मध्यस्थ।
चर्चा करणै में हुवै, समय शक्ति अस्वस्थ।।
३०. व्यर्थ वितण्डावाद स्यूं, है न प्रयोजन लेश।
देणो निज मन्तव्य को, शान्त रूप सन्देश।।
३१. मानो मत मानो मनुज, क्यूं हो हर्ष विषाद।
करणो है निर्भयपणै, वीर-वचन सिंहनाद।।

[2]म्हांरा पूज्य परम गुरु! प्यारा लागो जी।

३२. पर नहिं साहस दिखायो शुभ शास्त्रार्थ रो,
हुयो सुख स्यूं मर्यादोत्सव सम्पन्न।
छायो आनन्द भक्त छगन[3] धनजी[4] घरे,
शय्यातर रो है परम लाभ प्रतिपन्न।।

---

१. लय : चंदन चोक्यां में सरस बखाण
२. लय : चंदन चोक्यां में सरस बखाण
३. छगनमलजी बैद (सुजानगढ़)
४. धनराजजी बैद (सुजानगढ़)

सोरठा

३३. पूज्य दियो संकेत, आखिर श्रावक संघ नै।
चर्चा करो सचेत, प्रश्न-पडुत्तर रूप में।।
३४. नेमनाथजी सिद्ध, श्रावक पुर-सरदार रा।
चार्चिक प्रवर प्रसिद्ध, पूज्य जवाहिर पे गया।।
३५. पूछ्यो प्रश्न उदार, मिथ्याती री सतक्रिया।
श्री जिन-आज्ञा बा'र, अथवा आज्ञा में कहो?
३६. बंध बढावणहार, या है बंध-विमोचणी?
भवभ्रमण की धार, वा भवभ्रमण-निवारणी?
३७. अधरम है या धर्म? परिषद में प्रतिवच करो।
जैनधर्म रो मर्म, सारी जनता ज्यूं सुणै।।
३८. बड़ी मुसीबत-सी क, टोळाधिप रै सामनै।
उत्तर अधिकृत ठीक, मुश्किल मिलणो नेमजी!
३९. यदि उत्तर अनुकूल, (तो) निज मत हेत तिलांजलि।
पड़ै लोक-प्रतिकूल, पारंपरिक जवाब स्यूं।।
४०. सन्मुख पृच्छाकार, परिचित है आछीतरै।
उलट-पलट आसार, चलै न 'सिद्धां' सामनै[1]।।
४१. चर्चा चली न बात, रट समाप्त शास्त्रार्थ री।
तेरापथ री ख्यात, बढ़ी दोगुणी-चोगुणी।।

[2]म्हांरा पूज्य परम गुरु! प्यारा लागो जी।

४२. श्रमण सत्यां नै विचराया देश-प्रदेश में,
प्रतिपख-विवरण रो सम्पूरण अध्याय।
ढाळ बारमी आ तीजे उल्लासे कही,
'तुलसी' भिक्षूशासण री बढ़ती दाय।।

---

१. देखें प. १ सं. १०२
२. लय : चंदन चोक्यां में सरस बखाण

ढाळः १३.

दोहा

१. बीदासर गुरु भेंटिया, पुनरपि भैरूं भक्त।
समवसर्‌या डूंगरगढ़े, बीकायत पथ व्यक्त।।
२. भर स्पेशल गाडी बड़ी, साथ सैकड़ां लोक।
भैरूं ईशर चौपड़ा, करी प्रार्थना थोक।।
३. गिरिगढ़ मास निवास कर, गंगाशहर विहार।
स्वाम रामसर में दियो, पावस रो उपहार।।
४. सूरपुरे राशीसरे, देशनोक सप्ताह।
भीनासर गंगासरे, समवसर्‌या वाह-वाह!
५. वासी बीकानेर रा, आया गुरुपद पास।
कइ चर्चा अर्चा करण, कइ जन वरण सुवास।।

[1]पूज्य पथ साचो रे।
श्री कालूयशोविलास सुणो अथ बांचो रे।।

६. इक दिन जन मिल शहर रा रे, प्रतिमापूजक खास।
साथ जती जयचंद नै रे, ले आया गुरु-पास।।
७. जैनागम-संबंध में रे, प्रश्न करै इण भांत।
मान्य किता आगम? कहो रे, गुरु-प्रतिवचन प्रशांत।।
८. द्वादश अंग अभंग जो रे, मान्य हुवै हर बार।
द्वादशांग अनुगत जिता रे, ते पिण बिण तकरार।।
९. बत्तीसी री मान्यता रे, तिणमें पिण हो हेत।
चौरासी पैंताल में रे, एक शर्तसंकेत।।
१०. पुनरपि प्रतिवादी वदै रे, नन्दी सूत्रे नाम।
ते आगम इण अवसरे रे, क्यूं नहिं मान्य प्रकाम?
११. फरमावै गरिमानिधि रे, संप्रति कइ अप्राप्य।
समय-प्रभावे कइक में रे, है मिश्रण अभिलाप्य।।

---

१. लय : राजा राणी रंग थी रे

१२. महानिशीथ निभालिए रे, तइयज्झयण निकाल।
तिण में कुलिखित दोष रो रे, अवगत कीजे हाल[1]।।
१३. द्वादशांगि गणधर ग्रथी रे, गणिपिटका पर नाम।
तिर्‌या तिरै तिरसी घणां रे, ओ आश्रय अभिराम।।
१४. समाधान समुचित हुयो रे, पृच्छक मन संतोष।
ऊदासर वासर कई रे, रह्या लह्या भवि पोष।।
१५. मासखमण रो पारणो रे, कीन्हो ऋषि रणजीत।
भीनासर भवि-भाग्य स्यूं रे, आया पूज्य पुनीत।।
१६. श्रावक रै अव्रतक्रिया रे, चरचा करण सजोश।
स्थानकवासी जूझिया रे, तीन दिवस खामोश।।
१७. सित्यासी शुभ साल को रे, पावस गंगाशहर।
बत्ती पैंती व्रती सती रे, आराधै गुरु-महर।।
१८. भावुक भैरूंदानजी रे, भक्तां रा शिरमोड़।
कालधर्म पायो प्रवर रे, रही न मन में खोड़।।
१९. सुख केवल सोहन मुनी रे, तपी तपस्या घोर।
पिच्यावन इकचाल ही रे, दिन गुणतीस सजोर।।
२०. श्री मान्धातासिंहजी रे, भैरूंसिंह[2] महाराज।
दर्शन कर श्री पूज्य रा रे, करै सुजश ओगाज।।
२१. अभिनव आस्था आश्रयी रे, खानदेश रो संघ।
आयो सद्‌गुरु-चरण में रे, खिल्यो अनोखो रंग।।
२२. घासी मुनि नै भेजिया रे, प्रथम-प्रथम खानदेश।
लोक सैकड़ां समझिया रे, ओ उपकार अशेष।।
२३. पावस पूरे पूज्यजी रे, बलि भीनासर फर्श।
छव दिवसां छाई छटा रे, अमित सुजन-मन हर्ष।।

सोरठा

२४. देवचन्द श्रीपूज, पायचंदिया गच्छ रा।
भीनासर शुभ सूझ, श्री चरणां विनती करी।।

---

१. देखें प. १ सं. १०३
२. *महाराजा गंगासिंहजी के बड़े भाई*

२५. कालू पूज्य कृपाल, समिति पंचमी जावतां।
निकट उपाश्रय भाल, पावन पद-पंकज ठव्या।।

[1]पूज्य पथ साचो रे।

२६. मारग वर बीकाण रो रे, बही रूणियावास।
कालू सर[2] छव पांच दिन रे, कीन्हो सुगुरु निवास।।
२७. डूंगरगढ़ बड़भागियो रे, पूज्य पदार्पण यत्र।
श्रमण-सती है सैकड़ां रे, दर्शन-हित एकत्र।।
२८. श्रावक-समुदय सामठो रे, मोच्छब-विनय-निमित्त।
राणाजी पिण बाव रा रे, आया हुलसित चित्त।।

[3]राणाजी आया बाव स्यूं चलाई,
है साथ में दलाल चूनी भाई।
मकरंद में ज्यूं मधुप लुभाई।।

२९. एक ओर गुरु मध्य बजारे, जोर जुलूस सझाई। राणाजी...
एक ओर राणा सजधज के, सन्मुख प्रणमै आई।। राणाजी...
३०. चूनो सहज झुकै गुरु-चरणां, कहै राण मुसकाई।
बणिया! हट अमनै करवादै, तूं तो करै सदाई।।
३१. भाव-विभोर वंदणा साझै, धरणी लग सिर नाई।
घणां दिनां री दिल री आशा, आज सफलता पाई।।
३२. समवसरण में सावण-घन ज्यूं, प्रवचन-झड़ बरसाई।
सुण राणो अतिशय उलसाणो, विनय करै विरुदाई।।
३३. धन्य-धन्य है देश थळी नै, सतयुग-सी छवि छाई।
सारो गुर्जर देश बिचारो, तरसै दरसण तांई।।
३४. पूज्य! पधारो म्हांरो पुर भी, मांगै गुरु-वच साई।
सन्त-सत्यां रो तो चोमासो, फरमाओ हमणांई।।
३५. राणाजी री इं अरजी स्यूं, मंजूरी फरमाई।
पोष मास में पावस बकस्यो, सती हुलास बुलाई।।

---

१. लय : राजा राणी रंग थी रे
२. लूणकरणसर
३. लय : मुनिवर नै आपो झूंपड़ी आपां री

३६. तभी गधैया गणेशदासजी, मोच्छब मांग दिखाई।
हुकम दियो तब हृदय-कमल री, कळी-कळी विकसाई।।
३७. परम प्रसन्नमना राणाजी, साझी सेव सवाई।
विदा समय पुनरपि कर वन्दन, गुरु-गरिमा गरणाई।।

[1]पूज्य पथ साचो रे।

३८. गिरिगढ़ में जाझो जम्यो रे, धर्मसंघ रो रंग।
अब माघोत्सव कारणै रे, सरदारशहर सुरंग।।
३९. हो मोमासर पूज्य रो रे, पुर में पुण्य प्रवेश।
तीजे उल्लासे कही रे, ढाळ तेरमी एष।।

ढाळः १४.

दोहा

१. सुद सातम मोच्छब छवी, रवी भ्रमण-मिष ठाण।
नवी सरसता अनुभवी, प्रतिदिन करै बखाण।।
२. दसमी नव दीक्षा नवी, कविजन वचन-अगम्य।
धन्य भाग्य मानै भवी, गुरु-चरणाब्ज प्रणम्य।।
३. चूरू पुर पथ रामगढ़, फरस बीचला गाम।
बीदासर भासरविभू, समवसर्या अभिराम।।
४. माजी-मन संतोष दे, दे पावस रो पोष।
राजाणै जाणै रज्या, त्रिशलानन्द अदोष।।

५. [2]वसुगढ आया हो वसु-गणराया, म्हारा राज!
भाग्य सवाया हो जन-मन भाया, म्हारा राज!
हो पड़िहारै हो छापर तारै, म्हारा राज!
मास अषारै[3] हो, पुर बीदां[4] रै।। म्हारा राज!

---

१. लय : राजा राणी रंग थी रे
२. लय : केसर-वरणो हो काढ़ कुसुम्भो म्हारा राज!
३. आषाढ़
४. बीदासर

६. छोगा माई हो अति हुलसाई, म्हारा राज!
बांटे धाई हो हर्ष-बधाई। म्हारा राज!
आज न माई हो तन फूलाई, म्हारा राज!
वय बूढ़ाई हो सब भूलाई।। म्हारा राज!

७. मुनिवर इकती हो सती इकावन, म्हारा राज!
गुरु-पद सेवै हो तन-मन पावन। म्हारा राज!
तीव्र तपस्या हो आत्म-तपावन म्हारा राज!
मुनि सुख कीधा हो वासर बावन।। म्हारा राज!

८. कुंदन रणजी हो मास पकायो, म्हारा राज!
अणचां चांदां हो त्यूं तप ठायो। म्हारा राज!
सति खूमां रो हो कुरब बढ़ायो, म्हारा राज!
बोझ रु कारज हो सहु बगसायो।। म्हारा राज!

९. चोथमल्ल मुनि हो जावदवासी, म्हारा राज!
पाई गुरु री हो करुणा-राशी[1] म्हारा राज!
कार्तिक मासे हो द्वादश दीक्षा, म्हारा राज!
एकण साथे हो ली गुरुशिक्षा।। म्हारा राज!

१०. माघ-महोत्सव हो है छापुर में, म्हारा राज!
छोटो खेतर हो सोची उर में। म्हारा राज!
गुरु विहराया हो बहु सिंघाड़ा, म्हारा राज!
शहर लाडणूं स्यूं हो परबारा।। म्हारा राज!

सोरठा

११. मुझ नै राख्यो लार, तनु-कारण हित लाडणूं।
गुरुवर करै विहार, छापर माघोत्सव कृते।।

१२. विरहव्यथाकुल चेत, न हुवै न्यारां में रहत।
सद्गुरु दयानिकेत, करुणामृत सिंचन दियो।।

१३. भाई चंपालाल, रहसी ही थारै निकट।
और बता खुशहाल! किण-किण नै तूं राखसी।।

१४. जिण पर थारी चाह, तिण नै ही तूं राखलै।
वाह! गुरुवर! वाह-वाह! वत्सलता वरणूं किती?

१५. और-और एकान्त, जो आंतर पोषण दियो।
सुमरत ही चित शांत, अंकित बा स्थिति हृदय में।।

---

१. मुनि चोथमलजी को एक पुस्तक, बारी (सामूहिक परिष्ठापन-कार्य) और पट्ट-कार्य की बख्शीश की गई।

१६. [1]सातम टाणो हो नहिं मंडाणो, म्हारा राज!
तिण में कारण हो सहज पिछाणो। म्हारा राज!
बीका-नृप रो हो पुत्र पियारो, म्हारा राज!
परभव पहुंतो हो 'विजय' विचारो।। म्हारा राज!

चौपई छंद

१७. मुनिवर बिरधी वर-अगवाणी,
गुरु-शिक्षा री कहूं कहाणी।
स्खलना कीन्ही ठोकर खाई,
चोट चरूड़ी चोक्कस आई।।
१८. कड़ो उलाहनो सबकै स्हामै,
धरती धूजी कुण नभ थामै?
अनुगामी[2] रै साथ पठाया,
देखणहारा थरहर्राया।।
१९. सौ-सौ साधुवाद बिरधी नै,
गुरु री डांट सही दृढ़-सीनै।
अपणी ही दुर्बलता देखी,
तो इतिहास बण्यो उल्लेखी[3]।।

सोरठा

२०. मैं पिण स्वस्थ शरीर, चल्यो लाडनूं स्यूं त्वरित।
भेट्या गुरुपद धीर, रतनदुरग मझ हाजरी।।
२१. सिर पर कोमल हाथ, अमृत-वर्षा आंख री।
आ ही अनुपम आथ, पाई मैं प्रमुदितमना।।

२२. [4]रतनदुरग स्यूं हो सहज विहारे, म्हारा राज!
चूरू वारे हो भाग्य उघारे। म्हारा राज!
यम दिन ठाए हो पुर टमकोरे, म्हारा राज!
नृपगढ़ आए हो जोरे-तोरे।। म्हारा राज!

---

१. लय : केसर वरणो हो
२. मुनि जयचंदलालजी, सुजानगढ़
३. देखें. प. १ सं. १०४
४. लय : केसर-वरणो हो

२३. ज्येष्ठ महीनो हो ऋतु गरमी नो, म्हारा राज!
मध्यम सीनो हो अब हठभीनो। म्हारा राज!
लू री झाळां हो अति विकराळां, म्हारा राज!
वह्नि-ज्वालां हो ज्यूं चोफाळां।। म्हारा राज!
२४. भू ज्यूं भट्टी हो तरणी तापै, म्हारा राज!
रेणू कट्ठी हो तनु संतापै। म्हारा राज!
अजिन रु अट्ठी हो मट्टी व्यापै, म्हारा राज!
अति दुरघट्टी हो घट्टी मापै।। म्हारा राज!
२५. स्वेद-निझरणां हो रूं-रूं झारै, म्हारा राज!
चीवर चरणां हो लुह-लुह हारै। म्हारा राज!
अंगे उघड़ै हो फुणसी-फोड़ा, म्हारा राज!
भूं पे उधड़ै हो ज्यूं भूंफोड़ा।। म्हारा राज!
२६. जैन मुनी रो हो मारग झीणो, म्हारा राज!
फासू पाणी हो धोवण पीणो। म्हारा राज!
न्हावण-धावण हो अंश न करणो, म्हारा राज!
आत्म-तपावण हो दिल संवरणो।। म्हारा राज!
२७. मलिन दुकूला हो कड़-कड़ बोलै, म्हारा राज!
जंघा चूला हो छड़-छड़ छोलै। म्हारा राज!
अति प्रतिकूला हो पवन झकोलै, म्हारा राज!
ज्यूं कोइ शूलां हो अंग खबोलै।। म्हारा राज!
२८. कोमल काया हो पासे माया, म्हारा राज!
जननी जाया हो बा'र न आया। म्हारा राज!
भोंहर घर के हो पौढ़े खाटां, म्हारा राज!
जल स्यूं छरकै हो खस-खस-टाटां।। म्हारा राज!
२९. मंदिर मूंदी हो खोलै पंखा, म्हारा राज!
कर धर तूंदी हो सोत निशंका। म्हारा राज!
विद्युत-योगे हो शीतल-भावै, म्हारा राज!
स्नानालय में हो मल-मल न्हावै।। म्हारा राज!
३०. हृदय उम्हावै हो बरफ जमावै, म्हारा राज!
खुश हो खावै हो दिल बहलावै। म्हारा राज!
जी घबरावै हो सेंट छंटावै, म्हारा राज!
ज्यादा चावै हो शिमलै जावै।। म्हारा राज!

३१. इणविध घामे हो गुरु तिण ठामे, म्हारा राज!
श्रमण-सभा में हो ज्यूं आरामे। म्हारा राज!
जल बरसावै हो वाङ्मय भावै, म्हारा राज!
नहिं तरसावे हो सुजन-स्वभावै।। म्हारा राज!
३२. है चोमासो हो गढ़ सरदारे, म्हारा राज!
अन्तर खासो हो बीच निहारे। म्हारा राज!
दिन-दिन बढ़ती हो जावै गरमी, म्हारा राज!
ढाळ चवदमी हो 'तुलसी' निरमी।। म्हारा राज!

ढाळः १५.

दोहा

१. पुर-सार्दुल शार्दूल सम, वासर तीन निवास।
ददरेवै दो दिन रही, रीणी पूज्य प्रकाश।।
२. नव निशीथिनी नाथजी, निवसै यथावकाश।
तथापि ग्रीष्म-वरूथिनी, करै न निज बल ह्रास।।
३. मुनिप मनोबल है सबल, पिण तनु औदारीक।
अस्थि-मज्ज-रज-रेत रो, पंजर बण्यो अलीक।।
४. लू लागी नागी घणी, सागी आगी रूप।
बड़भागी त्यागी गुरु, जागी विदन विरूप[1]।।
५. विषम व्यवस्था पंथ री, वरणत चलै न वाच।
लिखतां चलै न लेखणी, आंख्यां देखी साच।।
६. मुश्किल मारग काटता, पग-पग रुक-रुक चाल।
पधरावत ही पोढ़ता, निश्चित होय निढाल।।
७. आसण संत बिछावता, एक मिनट री देर-
सह्य न होती आपनै, खड़्या न रहता पैर।।
८. बेचैनी सारै दिवस, रहती रात विशेष।
प्रबल मनोबल पूज्यवर, साहस रख्यो अशेष।।
९. एक दिवस आकस्मिकी वर्षा-सिंचित गात।
थोड़ी शीतलता हुई, पहुंच्या पुर-उपपात।।
१०. उगणीसै नव्यासिए, पावस-काल निवास।
पंचतीस वाचंयमा, श्रमणी गुणपच्चास।।

---

१. देखें प. १ सं. १०५

[1]वन्दूं वन्दूं वन्दूं निशदिन वन्दूं शासन-देवता।
मघवा-शिष्य सुहाया जी हो।।
माणक रै मन भाया जी हो।
डालिम-पाट दिपाया जी हो।।

११. बीत अषाढ़ आयो सावणियो, शहर सरदार चोमासे जी हो।
अल्प वृष्टि अति अंधड़ बाजै, रेतीला टीलां रै रासे जी हो।।
१२. दिन में गोठीजी रै गेह विराजै, निशि गधियाजी रो नोहरो जी हो।
प्रातः प्रवचन भी फरमावै, ज्यूं-त्यूं सोहरो दोहरो जी हो।।
१३. धूप चढ़ै ज्यूं-ज्यूं दिन चढ़तै, गुरुजी रो जी घबरावै जी हो।
आंख्यां देख्यां ही अणखाणो, तावड़ियो खावण आवै जी हो।।
१४. जलती झाळां ज्यूं बै लूवां, ऊमस होश गमावै जी हो।
रूं-रूं भेद न स्वेद नीकलै, भूख न नींद सुहावै जी हो।।
१५. एक हि औषध तावड़ियै री, मेहड़लो जद बरसै जी हो।
चमकै बीज रु गाज गगन में, शीत समीरण सरसै जी हो।।
१६. आखिर धाराधर धरणी पर, जाणक आण उतरियो जी हो।
ठंडक व्यापी सुगुरु-शरीरे, शासण हरियो-भरियो जी हो।।
१७. तूठा श्रमण और सब श्रमण्यां, श्रावक-समुदय तूठो जी हो।
गणनायक रो अंग अनामय, शांत सुधारस बूठो जी हो।।
१८. तप संयम रो वाहळो बहग्यो, रहग्यो तपसी रणजी[2] जी हो।
साठ दिवस संलेखण सहग्यो, जपत नाम भीखणजी जी हो।।
१९. स्थानकवासी संत केसरी, धरणो दियो मसाणै जी हो।
अमुक-अमुक मुझ आण दिराई, धर दी ज्यान अड़ाणै जी हो[3]।।
२०. होम-मिनिस्टर शार्दुलसिंहजी, बीकाणै स्यूं आया जी हो।
सामंजस्य बिठा शासण-बल, पुर-दिशि बलि बहुड़ाया जी हो।।
२१. शहर फतेहपुर री इक बाई, रतनी नाम कमायो जी हो।[4]
भव-विरागिणी संयम-रागिणि, मनड़ो अधिक उम्हायो जी हो।।

---

१. लय : खम्मा खम्मा हो अजमालजी रा
२. देखें प. १ सं. १०६
३. देखें प. १ सं. १०७
४. देखें प. १ सं. १०८

२२. कड़ो अभिग्रह कर्‌यो श्राविका, दृढ़धर्मिणी कहाई जी हो।
जब लग अनुमति मिलै न घर री, भोजन री भरपाई जी हो।।
२३. बीत्यो मास दूसरो बीत्यो, साम्य भावना भावै जी हो।
आखिरकार बहोत्तरवें दिन, सहज्यां स्वर्ग सिधावै जी हो।।
२४. तीनूं तरफ रह्यो प्रण पक्को, रतनी री कुर्बाणी जी हो।
पति[1] रो पत्थर दिल न पसीज्यो, क्रूर वृत्ति सहनाणी जी हो।।
२५. बिन अनुमति नहिं दीक्षा दीन्ही, दृढ़प्रतिज्ञ श्री कालू जी हो।
मर्यादा रो मान बढ़ायो, यद्यपि देव दयालू जी हो।।
२६. कर विहार सरदारशहर स्यूं, रतनदुरग बहु ठाणै जी हो।
नव्यासी मिगसर सुद बारस, राज्या गुरु राजाणै जी हो।।
२७. वर्धमान मोच्छब री रचना, पोष मास में लागै जी हो।
रीझ खीज गणिवर री समुचित, खमै श्रमण बड़भागै जी हो।।

दोहा

२८. सफल सारणा-वारणा, शासनेश कर्तव्य।
श्रोता! स्थिर-चित स्यूं सुणो, एक संस्मरण श्रव्य।।

लावणी छंद

२९. रिखिराम-पिता लच्छी री सुणी शिकायत,
ततखिण तेड़ी गुरु करड़ी करी हिदायत।
फूं-फूं करतो अक-बक-सो बोलण लाग्यो,
भीतर कषाय रो भूत भयंकर जाग्यो।।
३०. गलती रो प्रायश्चित्त नहीं स्वीकार्‌यो,
उलटो मुकाबलो-सो मूरख कर डार्‌यो।
देखो यूं तस्कर कोतवाल नै डांटै,
कोड़ी हारै काणी कोडी रै साटै।।
३१. तत्काल करै गण बा'र विधान-विधायक,
अनुशासन भंग न सहै संघ रा नायक।
सुण आयो सुत रिखिराम बाप ज्यूं बोलै,
प्रायश्चित में पखपात-घात विष घोलै।।

---

१. लिछमणदासजी दूगड़

३२. ज्ञानाभिज्ञान में बहस सूत्र री छेड़ी,
क्यूं खांच गळै में आफत लै अणतेड़ी।
अविनय देखी गुरुदेव कड़ो रुख कीनो,
म्हां सारां रो गौरव स्यूं फूल्यो सीनो।।

३३. तूं जोम जचावै किसै भरोसै भूल्यो,
बदनाम तात-पखपात-पालणै झूल्यो।
इण स्यूं आगै बोलीजे बोल विचारी,
की तीन-पांच तो बा ही गति है थारी।।

३४. नहिं गळी दाळ अब शांत सुगुरु-चरणां में,
वन्दन-अभिनंदन आवै शुभ शरणां में
बाबलियै नै एकांत शांत समझायो,
गलती मंजूर करी, आवेश मिटायो।।

३५. लिख लिखत सुगुरु नै बारंबार खमावै,
सिर दंड ओढ़ पाछो शासण में आवै[1]।
आ घटना नव्यासी, राजलदेसर री।
आतप-छाया-सी आकृति श्री गुरुवर री।।

[2]वन्दू वन्दू वन्दू निशदिन वन्दू शासन-देवता।

३६. राजाणै स्यूं बीदाणै हो, माघ-महोत्सव टाणै जी हो।
श्री डूंगरगढ़ स्वयं समवसृत, गुरुवर निज नानाणै जी हो।।

३७. चौरासी संवत चोमासो, मोच्छब ओ नव्यासी जी हो।
बींजराजजी भक्त पुगलिया, सिज्यातर मृदुभाषी जी हो[3]।।

३८. आशाराम अटल-बल तपसी, चरम संलेखन साझी जी हो।
इण ही बरसे चाड़वास में, जीती जीवन-बाजी जी हो।।

३९. दिवस तिहोत्तर में सुर-सरणी, करणी पार उतरणी जी हो।
स्हाज दियो सुख घोर तपस्वी, सेवा जाय न वरणी जी हो।।

---

१. देखें प. १ सं. १०९
२. लय : खम्मा खम्मा खम्मा हो अजमालजी
३. श्रीडूंगरगढ़ के श्रद्धालु श्रावकों में अग्रगण्य

४०. चवदह दिन रो अंतिम अनशन, साठ दिवस संलेखी जी हो।
दृढ़ शरीर पी तेल कोयला, घटना है उल्लेखी जी हो[1]।।
४१. श्री कालू-करुणा रो प्रतिफल, सारो संघ सलूणो जी हो।
ढाळ पनरमी जिनशासन रो, बढ़ै तेज दिन दूणो जी हो।।

ढालः १६.

दोहा

१. तीजे उल्लासे सही, दीक्षा व्यतिकर देख।
पाठक-सुविधा-हित करूं, एकत्रित उल्लेख।।
२. बीकाणै उणियासिए, सुद पख भाद्रव मास।
तेरह दीक्षा रो बण्यो, एक नयो इतिहास।।

लावणी छंद

३. मोती मुनि वास-निवास रामसुख जाणी,
हस्ती मत्तू[2] सुत-युत गणेश मालाणी।
मुनि आशकरण, जयचंद-जंपती[3] रावत,
जंवरी पांचूं सुजानगढ़वासी साबत।
तनसुखां जतन बालूजी राजगढ़ी है,
तेरह संख्या श्री सद्गुरु-चरण चढ़ी है।
मेवाड़ी केसूलाल नत्थ मुनि द्वारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।
४. बीदासर में बिद चेत चांचियो बागी,
जेठी पूनम सुजानगढ़ पांच सुभागी।
आणँद रावत रो तात मूल वैरागी,
धन चंदन भाई भगिनी दीपां जागी।
अस्सी शुभ संवत जयपुर कार्तिक मासे,
नव दीक्षा छोग पांदरा[4] रो हुल्लासे।

---

१. देखें प. १ सं. ११०
२. मुनि मुलतानमलजी
३. मुनि जयचन्दलालजी और साध्वी मनोहरांजी
४. पांदरा पचपदरा का अपभ्रंश रूप है।

सुत केसरि दुलियो चंपक[1] नाम उचारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

५. सिरसा रो केवलचंद, हरख-बोरावड़,
हार्दिक विराग जग छोड्यो ऊबड़-खाबड़।
मुनि पांचीराम[2] मनसुखां पत्नी साथे,
मां-बेट्यां मानां-रायकंवर गुरु हाथे।
लिछमां चूरू भाद्रव संवत इक्यासी,
बिद पख में बुध, चंपक चंदेरी वासी[3]।
सेवाभावी विख्यात ख्यात जग सारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

दोहा

६. धन चंदन बंधव-युगल, छव मासे गुरु-दीख।
पिता-पक्ष धुर राखणै, आ जिनमत री लीक[4]।।

कलश छंद

७. मास कार्तिक सात दीक्षा सुता-मां[5] मोमासरी,
जड़ावां मालू मनोरां और संतोकां खरी।
सती कमलू सहज संभलू मनोबल उण जंग में,
प्रगट दिखलायो रु पायो सुजश सारे संघ में[6]।।

लावणी छंद

८. हरकंवर सुहागण फतेपुरी मिगसर में,
माह सुद चवदस सरदारशहर नव विरमे।

---

१. मुनि चंपालालजी (मीठिया) मुनि दुलीचन्दजी को दुलियो कहकर पुकारते थे।
२. देखें प. १ सं. १११
३. आचार्यश्री तुलसी के ज्येष्ठ बंधु सेवाभावी मुनि चंपालालजी
४. देखें प. १ सं. ११२
५. साध्वी सिरेकंवरजी, साध्वी चांदकंवरजी
६. देखें प. १ सं. ११३

तिण पुर रो लिखमीचंद सुगन भाद्रा रो,
दोनूं जोड़ै स्यूं[1], मालचंद मुनि प्यारो।
सुंदर मोमासर और जड़ाव जसूजी,
गंगाणै री कस्तूरां शिव-मग जूझी।
तपसण सुरगति पच्चास दिवस संथारे[2],
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

९. दो दीक्षा चाड़वास सुद चेत महीनै[3],
नाथां रु गणेशां भगिनी चिन्मय चीनै।
चातुरगढ़ जेठ कृष्ण इग्यारस दो ही,
हीरां संतोकां कीन्ही आत्म-विशोही।
दसमी आषाढ़ लाडनूं संवळी सूझी,
केशर लिछमांजी सिरेकंवर टमकूजी।
जीवन-जागृति-हित कालू-चरण जुहारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

दोहा

१०. बंयासिय बीदासरे, सुद पख कार्तिक मास।
दस दीक्षा दी दीपती, कालू कृपा विलास।।

मुक्त छंद

११. हरियाणा रो लाल चिरंजी, खूबो हिम्मत खाटी।
लघुवय में लघुसिंह-निक्रीड़ित की चौथी परिपाटी।।

१२. जमनां पानकंवर मां-बेटी पचपदरै री जाणो।
झमकू पीहर जात सुराणा श्वसुरालय राजाणो।।

१३. सती सोहनां चाड़वास री, मोमासर री माणो।
नाम जुहारां गोत पटावरि, पीहर है बीदाणो।।

१४. हुलस हुलासां संयम साध्यो, सिरेकंवर श्रीकारी।
जीवराज मालू री पुत्री झमकू तिण पुर-वारी।।

---

१. मुनि लिखमीचंदजी और साध्वी जड़वांजी, मुनि सुगनचंदजी और साध्वी सिरेकंवरजी।
२. देखें प. १ सं. ११४
३. वि. सं. १९८२

१५. बंयासी पो. बिद पांचम नै, मुझ नै गणिवर तार्‌यो।
भगिनी सहित लाडणूं फणधर-शकुन सहज सचकार्‌यो[1]।।

लावणी छंद

१६. आषाढ़-कृष्ण दसमी बीकाणे स्वामी,
पांचां नै भव-जल तार किया शिवगामी[2]।
पटुगढ़ रो शोभो पूनां केसर क्वांरी,
रूपां छाजेड़ गुलाब सती भाद्रा री।
तैंयासिय पावस गंगाशहर करायो,
स्थिरवासी पृथ्वी-मुनि जीवन सरसायो।
चंपक[3] सोहन जंवरी गुण जीवण तारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

दोहा

१७. साल तंयासी लाडणूं, मर्यादोत्सव सत्त्व।
नव दीक्षा नवनीत ज्यूं, नाथ निचोड़्यो तत्त्व।।
१८. पूसराज पटावरी पत्नी[4] पुत्र[5] सहीत।
गहरी आगम धारणा, साधां रा सुविनीत।।
१९. भर जोबन जोड़ै सहित, सोहन दुर्ग सुजान[6]।
गणेश गंगा[7] चोपड़ो, पिस्तांजी पुनवान।।
२०. कमला जयपुरवासिणी, तज पूरो परिवार।
राजदुर्ग री मोहिनी, संजम ग्रह्यो सुप्यार।।

---

१. देखें प. १ सं. ११५
२. वि. सं. १९८३
३. देखें प. १ सं. ११६
४. साध्वी सुगनांजी
५. मुनि मांगीलालजी
६. साध्वी मनोहरांजी के साथ
७. गंगाशहर

लावणी छंद

२१. चंदेरी रो चंपक[1] दीक्षा बीदाणे,
जसकरण जसस्वी छापर में शुभ टाणे।
तिण ही दिन सो. चा.[2] चाड़वास-चंगाणे,
अति विनय विवेक हस्तकौशल सुख माणे।।
चोरासिय दीक्षा डूंगरगढ़ सावण में,
मालू केशर सोनां तीनूं दृढ़ प्रण में।
कार्तिक बिद दौलतगढ़ रो लाल हगामी,
सजनांजी पन्नांजी तपसण शिवगामी।
अमृतां सुंदर चूनां तीनूं सुकुमारी,
छव साध्यो संयम अब सुद पख संस्कारी।
शिशुवय में सोहन गुरु-पदरज शिर धारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

२२. आषाढ़ शुक्ल पांचम पटुगढ़ दो भाई,
दृढ़ नेम नेमजी और समेर सिसाई[3]।
पिच्यासिय पावस छापर छापरवासी,
कार्तिक में झूमर सपत्नीक[4] सोल्लासी।
बिद सातम गंगाशहरी सति लाधूजी,
राजाणै री किस्तूरांजी इन्द्रूजी।
दोनूं बहनां बलि सुवटां चंदेरी री,
ली दीक्षा श्री कालू करुणा-दृग हेरी।।
फूलां मां राजकंवर पुत्री पड़िहारे,
सोलह दीक्षा सुद जेठ शहर सरदारे।
श्री कालू प्रौढ़ प्रताप चकित सुणणारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

२३. डूंगर-लाधू मन्नो-भत्तू जोड़ायत,
जयचन-विरधांजी तीन सजोड़ै स्वायत।

---

१. बेगवाणी
२. मुनि सोहनलालजी चाड़वास
३. वि. सं. १९८५
४. साध्वी चोथांजी

नानू झमकू केसरजी दो सुंदरजी,
मनहर लिछमां छगनांजी पानकंवरजी।
सोहनां सोलमी एक साथ सब तारी,
सारी जनता श्री कालू री बलिहारी।
अब छियासी री दीक्षा सुणो सुप्यारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

२४. श्रावण सुद सातम रायकंवर चंदेरी,
कार्तिक बोरड़ जयचंद ग्रही शिव-सेरी।
मा. सुद सुजानगढ़ कंचन राजनगर री,
चम्पा रु गणेशां जेठ[1] दया गुरुवर री।
सित्यासिय पावस गंगाणे परतापो,
सरदारशहर नव जण जीत्यो निज आपो।
बो संत खेतसी चोथू जन्म सुधारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

२५. नत्थू टमकोरी माता[2] साथ सुहायो,
भैक्षवशासण में भारी नाम कमायो।
आशां लिछमां नोहर छगनां पिस्तांजी,
सरदारशहर री मनोहरां मन राजी।
श्री डूंगरगढ़ रो कोडो कोड पुराया,
अरु छत्र सुराणो चूरू गुरुपद पाया।
राजलदेसर में दंपति नै उद्धारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

दोहा

२६. बींजराजजी बैद रो, नंदन नाम अमोल।
सिरेकंवर पत्नी सहित, संजम लै दृढ़कोल।।

२७. उगणीसै इट्ठासिए, बीदासर चउमास।
बारह दीक्षा दीपती, दीन्ही कार्तिक मास।।

---

१. वि. सं. १९८७ जेठ मास बीकानेर में
२. साध्वी बालूजी

लावणी छंद

२८. मुनि दुलीचंद बुधमल मामा-भाणेजा,
शुभकरण रामजी तारानगर सहेजा।
बुध-मां जड़ाव, लिछमां मक्खू सुंदरजी,
चोथां नोजां संतोकां रतनकंवरजी।
मा. कृष्ण गणेशां रतनकंवर चन्देरी,
सुद पख भगवानो पूनम गंगासेरी।
बा सती मोहनां तीनूं भ्रमण विदारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

२९. सुवटां तिण पुर री फागुण बिद बीदाणे,
अरु जेठ मास नृपगढ़ निम्नोक्त प्रमाणे।
भत्तूजी पानकंवरजी रायकंवरजी,
अब नव्यासिय पावस सरदारशहर जी।
तेरह जण संयम जीवराज धुर जाणो,
संपत केशर तस सुत दुहिता पहचाणो।
तारो सोहन सर[1] गज्जू हरस बधारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

३०. पारवतां मां किस्तूरां लघु-वय बेटी,
सुगनांजी अरु नाथां भव-भ्रमना मेटी।
लिछमां रामूजी मोमासरी मनोरां,
कार्तिक सुद तेरस बलि त्रिण तर्‌या सतोरां।
हनुमान और जयचन्द शहर-सरदारी,
मूलां गज्जू री मां कृपया गुरु तारी।
अब श्री डूंगरगढ़ गुरुवर रै ननिहारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।।

३१. मा. सुद पख नेमू मनहर, फूलकुमारी,
पूनम पृथ्वी झूमर फागुण व्रतधारी।
कइ प्रौढ़ तरुण सुकुमार सुहागण नारी,
संयम धर विकसित की शासन-फुलवारी।
हतभाग हमीर जोरजी जिस्या भटकग्या,
कर्मोदय भव-सागर अधबीच अटकग्या।
तीजे उल्लासे ढाळ सोलमी गा रे,
है वर्धमान मुनिगण कालू-बरतारे।।

---

१. लूणकरणसर

कलश छंद

३२. बीकाण[1] जयपुर कर सफर[2] मम चरण-रयण-समर्पणम्[3],
प्रतिपक्ष-आगम[4] चूरु-चर्चा कीर्तिमानं थर्पणम्[5]।
अति विकट आतप राजगढ़ सरदारशहर-पदार्पणम्[6],
उल्लास तीजै री कहाणी स्यूं सुजन-मन-तर्पणम्।।

उपजाति-वृत्तम्

१. न यस्य साम्यं लभते शशांको,
यस्यच्छटां छादितवान्न सूर्यः।
न केवलं व्योमनि संचरिष्णु-
र्दोषाकरत्वं च न वीक्ष्यतेऽत्र।।
२. कला - कलापै - रभिवर्धमानः;
समन्ततो भासितदिग्प्रदेशः।
विनाशिताऽज्ञानतमाः सकोऽपि,
विभात्यसौ कालुयशःसुधांशुः।।

शशाङ्क जिसकी तुलना में नहीं आ पाता, सूरज जिसकी छवि को आवृत नहीं कर सकता, जो केवल आकाश में ही नहीं, धरती पर भी संचरणशील है, जो दोषा—रात्रि नहीं होने देता, जो अपनी कलाओं से सदा वर्धमान रहता है, जो अपने आलोक से सब दिशाओं को भर देता है और अज्ञान तिमिर का नाश कर देता है, वह कोई कालूगणी के यश का सुधांशु—चंद्रमा चमक रहा है।

उपसंहृतिः

आचार्य-तुलसी-विरचिते श्री-श्री-कालूयशोविलासे

१. विवत-विपक्षि-विक्षेप-प्रकरे बीकानेर-नगरे चातुर्मासिक्यां स्थितौ पौरकृत-कायिक-वाचिक-विकटोपद्रव-सहनेन स्वसर्वसहत्वाविर्भावन...
२. जयपुर-चूरू-बीदासर-चतुर्मास-व्यास-विवर्णन...
३. वैक्रमीय युग-वसु-रस-शशांकाब्दे पौष-कृष्ण-पंचम्यां मम संयम-प्राण-समर्पण...
४. प्रादुर्भूत-पारस्परिक-जन-प्रद्वेषे थली-प्रदेशे ढुंढकागमन-तत्कृत-नवनवोहापोह-प्रसरण-पूज्य-महोदयैस्तत्परिशमन...
५. साधु-साध्वी-संभोग-सम्बन्धि-चूरू-चर्चायां श्रीशासनशिरोमणे-र्विजय-दुन्दुभि-ध्वान-संसरण...
६. अतिविकटातपकाले राजगढ़ादिपुरः संस्पृश्य निधि-वसु-निधि-चन्द्रवैक्रमीयाब्दे सरदारशहरे चातुर्मास-स्थितिकरणरूपाभिः षड्भिः कलाभिः समर्थितः षोडशगीतिकाभिः संदृब्धः समाप्तोऽयं तृतीयोल्लासः।

परिशिष्ट

१. सांकेतिक घटनाएं
२. नामानुक्रम
३. ग्रन्थ में प्रयुक्त मूल रागिनियां
४. विशेष शब्दकोष

१. सांकेतिक घटनाएं

१. जम्बूद्वीपे
२. दक्षिण भरत
३. आर्यक्षेत्र-अधिकारू
४. गुरु भिक्खण को सिक्को धारी
५. सन्त-सती-सिंघाड़ा
६. मुनिवर आणंदराम
७. श्रेष्ठी शोभाचंद
८. भूषण-भूषित
९. वनितावां की आंकी बांकी
१०. चार मास स्यूं गुरुदीक्षा
११. तीन बरस तक रहिया समचै
१२. गण अंतरंग-संभाल...
१३. मुनि कनिया रो प्रस्ताव...
१४. धन्नां-सुत स्यूं टकरायो...
१५. जयचनजी नै जोशीलो...
१६. जेठांजी मुक्खांजी नै...
१७. बाबै स्यूं पिण करता डाई
१८. पूरा प्रेरक रायशशि...
१९. फसै नहिं फांकड़ी रे लोय
२०. अयन हयन युग सर्पिणी रे...
२१. प्रत्यक्ष काम अरु राम...
२२. शार्दूलविक्रीडित श्लोक अर्थ...
२३. अन्तर-विनोद रो जब-जब...
२४. श्री डालिम रो लिखित खत
२५. अष्ट कर्म

२६. अष्टम गुणठाण
२७. अष्ट इलातल
२८. अष्ट महागुण-ठाण
२९. अष्ट मातृपद
३०. अष्ट मद
३१. अष्ट सिद्धि
३२. अष्ट आप्त-प्रतिहार्य
३३. अष्ट रुचक
३४. अष्टम पद अनुशासना
३५. गुण जितरा आचार्य रा
३६. गादी रो परभाव
३७. मगन करी अभ्यर्थना
३८. सात तीन सिंघाड़ा
३९. पूनमचन्द जसोल रो
४०. कस्तूर नाम पृथ्वी-मुनि दीक्षित
४१. ली दीक्षा घासीराम
४२. लघुसिंह परिपाटी
४३. चूरू रो चावो सोहनलाल-सुराणो
४४. मीठै चंपक रो छोटो भाई चूनो
४५. छोटांजी की कर्मां पर चोट करारी
४६. भारतीय धर्म-स्थिति
४७. बारह महिनां कात्यो-पीन्यो
४८. सभा समक्षे सकल सुलक्षे
४९. जळै गोहिरै रै पातक स्यूं पीपळी
५०. हां रे तब प्रमुख-प्रमुख मिल
५१. 'राजाण' रह्या जेठांजी
५२. थे चूक्या वीर बतावो
५३. सायां-खेड़ै शुभ नजर
५४. उशरट
५५. तुम्बक-तुम्बक-तुम्बा
५६. उपनय पय-धोवण रो
५७. की सिंघकथा नै साची जी

५८. नहिं बैंगण पोथैवाला
५९. महिषी-परिमोषी परे
६०. रामू-कनियो आदी अब
६१. सतरंगी नै नवरंगी
६२. है इतर ग्रन्थ पिण साखी
६३. तन में जो चेतन बुद्धी
६४. शंकर-रचित सुवास...
६५. मुद्रित भागवत मंगाई
६६. वृद्ध हंस ज्यूं हंस-वंश नै
६७. पूज्य भीखणजी अजी
६८. जमालीवाली जड़ताई
६९. नथमल बागोरी भारी कष्ट सह्यो है
७०. अगवाणी चंडालिया...
७१. निजरकुमारी लाडनूं
७२. मनु संस्कृत वैयाकरण...
७३. 'अद्धमागही' माग ही...
७४. वाग्देवी देवी करी...
७५. भी-भारी रो स्मरण करो संकेत
७६. जीभ झरै जब गाळी हो
७७. जयाचार्य-विरचित...
७८. पर हित खाड खिण...
७९. अमीचंद मुनि गुणनिलो रे
८०. देवगढ़ छगनां सती रे
८१. फोकट समय बितावणो
८२. राय उदाई भाव लख
८३. हा! हा! बो के करतो होसी
८४. 'धर्मे जय' आ साच है
८५. थळी देश में विकट वेश में
८६. सुजन सयाने होत बावरे...
८७. घी तंबाकू मेळ मिलावै
८८. जिनरिख
८९. मेघ

९०. धर्मरुचि
९१. गोतम रो ल्यो दाखलो
९२. भैक्षवसंघ-शिरोमणी...
९३. गोरख गुदरीवारा
९४. श्री सद्गुरु-अनुमति बिना
९५. प्रथम उपद्रव चल्यो 'जवां' रो
९६. सात-आठ पग पाछा सिरकै
९७. च्यार हजार शिष्य री टोळी
९८. भीमजि स्वामी रो ओ आभार विशेष
९९. तिण चउमासे इक भीषणतम घटना घटी
१००. भैंरूदानजी चौपड़ा
१०१. करै खड़्या सब प्रार्थना
१०२. उलट-पलट आसार...
१०३. महानिशीथ निभालिये रे...
१०४. सौ-सौ साधुवाद बिरधी नै...
१०५. लू लागी नागी घणी...
१०६. रह्ग्यो तपसी रणजी जी हो
१०७. स्थानकवासी सन्त केसरी...
१०८. शहर फतेहपुर री इक बाई...
१०९. लिख लिखत सुगुरु नै...
११०. दृढ़ शरीर पी तेल कोयला...
१११. मुनि पांचीराम
११२. धन चंदन बंधव-युगल...
११३. सती कमलू सहज संभलू...
११४. तपसण सुरगति पच्चास...
११५. फणधर-शकुन सहज सचकार्यो
११६. चंपक

१. सांकेतिक घटनाएं

१. जैन दर्शन के अनुसार तिरछे लोक में असंख्य द्वीप और समुद्र हैं। जम्बूद्वीप इन सबमें मध्यवर्ती है। इसका व्यास एक लाख योजन है।

२. जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों में एक भरत क्षेत्र है। इसके दो विभाग हैं—दक्षिण भरत और उत्तर भरत। उत्तर भरत म्लेच्छ खण्ड के रूप में और दक्षिण भरत आर्य खण्ड के रूप में प्रसिद्ध है।

३. दक्षिण भरत आर्य क्षेत्र कहलाता है। किंतु इसमें भी समग्रता से आर्यों का निवास नहीं है। दक्षिण भरत के जिन क्षेत्रों में तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि जन्म लेते हैं, वे क्षेत्र आर्य क्षेत्र के रूप में सम्मत हैं। प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार दक्षिणार्ध भरत के मध्य खण्ड में मगध, अंग, बंग आदि साढ़ा पचीस देश आर्य हैं।

उक्त क्षेत्रीय वर्गीकरण में मरुस्थल का समावेश नहीं है। किंतु इन शताब्दियों में धार्मिक प्रवृत्तियों का मुख्य केन्द्र रहने के कारण रेगिस्तान के रूप में विश्रुत मरुस्थल क्षेत्र भी आर्य क्षेत्र कहलाने का अधिकारी हो गया है।

४. सिक्का धारना, यह एक मुहावरा है। इसका अर्थ है—अपनी जीवनयात्रा में धार्मिक पक्ष को प्रबल बनाने के लिए लक्ष्य, पथ और पथदर्शक का आलम्बन स्वीकार करना। दूसरे शब्दों में धर्मदेव, धर्म और धर्मगुरु में अपनी आस्था को केन्द्रित करना। बोलचाल की भाषा में इसे गुरुमन्त्र लेना और सिद्धान्त की भाषा में सम्यक्त्व दीक्षा स्वीकार करना कहा जाता है।

५. मुनिश्री आनन्दरामजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित पद्य—

१. फक्कड़ दावै में फव्यो, सदा संत आणंद।
संघ-संघपति चरणरज, रहतो नित निर्द्वन्द।।

२. अवगुण मेटण और रा, तीखा घणां प्रहार।
करड़ी औषध ज्यूं हुवै, जीर्णज्वर उपचार।।

३. निज जीवन में झांकिया, किता उतार-चढ़ाव।
(पर) शासण-रंग मजीठ ज्यूं, रम्यो सन्त सद्भाव।।

६. बीदासर-निवासी सेठ शोभाचन्दजी बैंगानी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठे–

१. सौभागी शिरमोड़, श्रावक शोभाचन्दजी।
कयवन्ना री जोड़, बैंगाणी बीदाण रो।।
२. कदे न खाटी बेठ, देशावर कमज्या करण।
(पर) पळ्यो घणां रो पेट, शोभा रै सौभाग्य स्यूं।।
३. एक पगरखी लार, खुलती बीसां पगरख्यां।
बड़ो निगर्व विचार, पर-दुख निज-दुख समझतो।।
४. पात्र दान अरु शील, सेवा रो लाहो लियो।
लिछमी सदा सलील, सेठ हाथ हेठै रही।।
५. अतिथी आयो गेह, कदे न भूखो जावतो।
साधर्मी प्रति स्नेह, उदाहरण मिलणो कठिन।।
६. आचार्जां री सार, सेवा सझतो ठाव स्यूं।
तनु-छाया ज्यूं लार, रहतो ठाकर तेजजी।।
७. शासण रो हर काम, प्राणाधिक समझ्यो सुगुण।
गुरुवां री हर याम, उत्कृष्टी मरजी रही।।

७. संसार से विरक्त बालक कालू के वैराग्य को पोषण देने हेतु मघवागणी सदा प्रत्यनशील रहे। आपने बार-बार वहां साधु-साध्वियों को भेजा। मुनि पृथ्वीराजजी को प्रदत्त निम्नलिखित पत्र इस तथ्य को प्रमाणित करता है–

शिष्य पृथ्वीराजजी प्रमुख स्यूं सुखसाता बंचै। थांरै चोमासो देशनोक तथा बीकानेर में जागां रो बेंत हुवै जठै कीज्यो। देशनोक में बोथरां रै बारली जागां है, इम छोटा जेठांजी कह्यो। सो उठै सन्त-सत्यां रेवै जिसी जायग्यां हुवै तो देशनोक बीकानेर कानी जाइज्यो। जो जागां रो बेंत न लखावै तो फतेपुर कीज्यो। तथा कालू नै कालू री मां छापर हुवै तो छापर कीज्यो। तथा और ही क्षेत्र में तिहां प्रसंग देखो, उपकार विशेष देखो, जठै कीज्यो। सं. १९४१ चैत सुदी १०...

८. कालूगणी का विवेक बचपन में ही जाग्रत था। यह जाग्रत विवेक ही उन्हें जीवन की इतनी ऊंचाई तक ले गया। बाल्यकाल में उनके विवेक का निदर्शन निम्नांकित घटना में उपलब्ध है–

दीक्षा की अनुमति पाने के बाद वैरागी कालू की शोभायात्रा निकाली गई। उस समय कई व्यक्तियों ने उनको अपने आभूषण पहनाने का आग्रह किया।

बालक कालू ने यह कहकर इनकार कर दिया कि मैं आपका एक भी आभूषण पहन लूंगा तो मेरे अपने आभूषण गौण हो जाएंगे। लोग समझेंगे कि सब आभूषण दूसरों के पहने हुए हैं। वैरागी कालू के इस विवेकपूर्ण उत्तर ने बड़े-बड़े लोगों को विस्मित कर दिया।

९. पिछली कई शताब्दियों से राजस्थान की महिलाओं में घूंघट निकालने की परम्परा चली आ रही है। कालूगणी की दीक्षा के समय उक्त परम्परा बहुत पुष्ट थी। पूरे मुंह पर अवगुण्ठन होने से दर्शनीय वस्तु और आंखों के बीच में एक दीवार-सी आ जाती। इस दीवार को तोड़ने में वे झिझकती थीं और दर्शनीय दृश्य देखने का लोभ-संवरण भी नहीं कर सकतीं।

इस स्थिति में महिलाएं घूंघट में हाथ डालकर एक आंख को दो अंगुलियों के बीच में अवगुण्ठन से मुक्त कर लेतीं। उनके इस प्रकार एक आंख से देखने की प्रक्रिया 'काणी आंख से देखना' कहलाती है। वैरागी बालक कालू को महिलाओं ने उक्त पद्धति से देखकर प्रसन्नता का अनुभव किया।

१०. दीक्षा का एक सप्ताह हो जाने पर नवदीक्षित को छेदोपस्थाप्य चारित्र (बड़ी दीक्षा) दिया जाता है। उस अवधि में यदि प्रतिक्रमण कंठस्थ नहीं हो पाता है तो चार महीने पश्चात छेदोपस्थाप्य दिया जाता है। मुनि कालू को वह चार महीने से दिया गया।

११. जब तक आहार की पांती नहीं होती है, तब तक नवदीक्षित समुच्चय में रहते हैं। समुच्चय में रहने वाले को विभाग होने से पहले आहार-पानी मिल जाता है।

१२. आचार्य-पद का दायित्व संभालने के बाद डालगणी बोले—'अंतरिम काल में गुरुकुलवासी संतों ने सारा काम सुव्यवस्थित ढंग से संभाला, इसलिए कोई अव्यवस्था नहीं हुई।'

१३. वयोवृद्ध मुनि कन्हैयालालजी ने अत्यंत आग्रहपूर्वक मंत्री मुनि से कहा—'आप गुरुकुलवासी चौदह मुनि एकमत होकर आचार्य-पद के लिए मुनि कालूरामजी का नाम घोषित कर दें।' विस्तृत विवरण पढ़ें, डालिम-चरित्र, पृ. ४८-५०।

१४. आचार्य-पद हेतु कालूगणी का नाम प्रस्तावित होने पर मंत्री मुनि ने उनकी जन्मकुंडली आदि दिखाई। कालूगणी को इस बात का पता चला तो उन्होंने उपालंभ की भाषा में मंत्री मुनि से कुछ बातें कहीं और इस दायित्वपूर्ण पद के लिए सर्वथा इनकार कर दिया। विस्तृत विवरण पढ़ें, डालिम-चरित्र, पृ. ५०, ५१।

१५. माणकगणी और डालगणी के अंतरिम काल में मुनि जयचंदजी कालूगणी के पास आकर बोले—आपकी धारणा क्या है? कालूगणी ने सीधा उत्तर दिया—'तू और मैं, दो तो आचार्य बनने वाले हैं नहीं, फिर अपन क्यों चिन्ता करें?' यह उत्तर सुनकर आगंतुक मुनि अवाक रह गए। विस्तृत विवरण पढ़ें, डालिम-चरित्र पृ. ५७, ५८।

१६. पक्खी के दूसरे दिन जेठांजी, मुक्खांजी आदि साध्वियां-खमतखामणा हेतु सन्तों के स्थान पर आईं। उस समय वहां उपस्थित दीक्षा-ज्येष्ठ मुनि भीमजी ने सन्तों को एकत्रित होने का निर्देश दिया। मुनि अभयरामजी ने शब्द किया और कई संत वहां उपस्थित हो गए। किन्तु मुनि कालूरामजी (कालूगणी) ने इस प्रसंग का प्रतिरोध करते हुए कहा—'आचार्यों के सान्निध्य में होने वाली विधि का व्यवहार आचार्यों की उपस्थिति में ही होना चाहिए।' पूरा विवरण पढ़ें, डालिम-चरित्र, पृ. २१८ प. १ सं. ४६।

१७. 'बाबै स्यूं पिण डाई' यह एक मुहावरा है। इसका कथ्य है—अपने प्रिय और वरिष्ठ व्यक्ति के प्रति भी प्रतिकूल व्यवहार। इससे संबंधित घटना इस प्रकार है—

श्रेष्ठी की इकलौती पुत्री लाड़-दुलार में पलकर उच्छृंखल हो गई। किसी का नियंत्रण उसे सही मार्ग पर नहीं ला सका। उसके दुष्ट स्वभाव की सूचना दूर-दूर तक फैल गई। लड़की शादी के योग्य हुई, पर कोई उसके साथ संबंध करने के लिए तैयार नहीं हुआ।

एक विधुर व्यक्ति शादी करना चाहता था। उसने सुना—लड़की वयस्क है, पढ़ी-लिखी है, रूपवती है और संपन्न पिता की पुत्री है, किंतु प्रकृति अच्छी नहीं है। वह उसके साथ शादी करने के लिए तैयार हो गया। मित्रों ने समझाया—'जान-बूझकर कर्कशा स्त्री के साथ क्यों बंध रहे हो?' वह बोला—'मैं इसे ठीक कर लूंगा।'

शुभ मुहूर्त में विवाह-संस्कार संपन्न हुआ। विदा होने से पूर्व जामाता ने अपने ससुर से कहा—'मिट्टी के बर्तनों से भरी एक गाड़ी हमारे रथ से आगे-आगे चलेगी।' ससुरजी को आश्चर्य हुआ, पर नए जामाता के निर्देश की क्रियान्विति आवश्यक समझकर उन्होंने वैसी ही व्यवस्था कर दी।

वर-वधू रथ में बैठे हैं और आगे मिट्टी के बर्तन खड़खड़ा रहे हैं। वर ने गाड़ीवान को संबोधित कर कहा—'अपने इन बर्तनों को समझा दो, यह खड़बड़ाहट मुझे अच्छी नहीं लगती।' गाड़ीवान ने बर्तनों को व्यवस्थित रखकर बांध दिया।

थोड़ी दूर गाड़ी चली और बर्तनों में फिर खड़बड़ शुरू हो गई। वर बोला—'गाड़ीवान! तुम बर्तनों को मौन करवा दो अन्यथा मुझ जैसा बुरा कोई नहीं होगा।' गाड़ीवान ने विनम्रता से कहा—'जंवाई बाबू! इनको कैसे समझाऊं?'

जामाता हाथ में डंडा लेकर उठा और बोला—'देखता हूं साले मानते हैं या नहीं? मेरे सामने कोई आदमी भी खड़बड़ करे तो मैं उसका सिर फोड़ देता हूं। इनकी क्या मजाल, जो अपनी खड़बड़ाहट नहीं छोड़ते।' इन शब्दों को दोहराता हुआ वह गाड़ी पर चढ़ा और डंडे के प्रहार से सब बर्तनों को तोड़कर ढेर कर दिया।

लड़की ने यह सब देखा और उसकी अक्ल ठिकाने आ गई। घर पहुंचकर उसके पति ने कहा—'देखो, यह घर तुम्हारा है। सुख से रहो और घर को संभालो। तुम्हें कोई रोकने-टोकने वाला नहीं है। पर एक बात का ध्यान रखना। मेरी प्रकृति बहुत बुरी है। यदि तुमने ऐसा-वैसा कुछ कर दिया तो फिर खैरियत नहीं है। अन्य सब बातों के साथ उसने यह भी कहा—'अपने घर में कोई अतिथि आए तो उसको पूरा आतिथ्य दो, पर उसको घी या तेल मुझे पूछकर परोसना।' वधू बोली—'अतिथि के सामने मैं आपसे कैसे पूछूंगी?' पति ने परामर्श दिया—'यदि मैं बायीं आंख से संकेत करूं तो तेल परोसना और दायीं से करूं तो घी।' पत्नी ने अपने पति के हर संकेत और निर्देश को सही रूप में समझा और क्रियान्वित किया। उनका घर एक प्रकार से स्वर्ग बन गया।

कुछ समय बाद लड़की का पिता अपनी पुत्री के हालात जानने के लिए आया। पति ने सोचा—आज पिताजी को दिखाना है कि उनकी पुत्री को कैसे पढ़ा लिया है। लड़की ने अपने पिता के लिए खिचड़ी तैयार की। भोजन परोसने से पहले उसने पति की ओर देखा। पति ने बायीं (डाई) आंख का संकेत किया। लड़की का कलेजा बैठ गया। पिताजी को तेल परोसे, यह उसे उचित नहीं लगा। पति की इच्छा के विरुद्ध घी परोस दे तो मिट्टी के बर्तनों जैसी हालत उसकी हो जाए।

आज्ञा का अतिक्रमण करने से तो पूछ लेना अच्छा है, यह सोच वह धीरे से बोली—'बाबै स्यूं पिण डाई?' पिता पास में बैठा था। उसने अपने जामाता की ओर देखा। दोनों रहस्य समझ गए। जामाता ने दायीं आंख से संकेत कर अपने ससुरजी को घी-खिचड़ी का भोजन करवाया। श्रेष्ठी अपने जामाता के बुद्धि-कौशल से बहुत प्रभावित हुआ।

१८. चूरू-निवासी रायचन्दजी सुराणा के साथ पं. घनश्यामजी का अच्छा संबंध था। उनकी प्रेरणा से पंडितजी के मन में सन्तों को अध्ययन कराने की

भावना जाग्रत हुई, जो उत्तरोत्तर विकसित होती रही।

१९. 'फसै नहिं फांकड़ी' का अर्थ है कोई उपाय नहीं होना। जहां कोई उपाय कार्यकर नहीं होता है, वहां भी वणिक लोग अपने चातुर्य से सफल हो जाते हैं। इस संबंध में एक पौराणिक कहानी है—

एक वणिक बहुत लोभी था। वह जीवनभर मोह-माया के चक्कर में रहा। उसने न कभी सत्संग किया और न धर्माचरण। जैसे-तैसे अर्थार्जन और उसकी सुरक्षा में उसने अपना जीवन पूरा कर दिया। आयुष्य की पूर्णता पर यमराज ने उसको धर्मराज के सामने उपस्थित किया। धर्मराज ने उसके पिछले जीवन से संबंधित बही-खाते देखे। वहां धर्म के कोष्ठकों में शून्य अंकित थे। धर्मराज ने उसको लोभ, मोह, धोखाधड़ी आदि दुष्प्रवृत्तियों का फल भोगने के लिए यातनापूर्ण स्थान (नरक) में ले जाने का आदेश दिया। यह आदेश सुनते ही वणिक कांप उठा। अब वह नारकीय यातना से बचने का उपाय सोचने लगा।

उसने देखा—उसके नाम का खाता पास में ही पड़ा है। उसमें जीवन के समग्र लेखे-जोखे के बाद लिखा हुआ है—'आयुः गतम्'। यह पढ़ते ही उसकी आंखों में चमक आ गई। उसने सोचा—'गतम्' में एक फांकड़ी फंसाकर मैं अपना काम बना सकता हूं। इस चिन्तन के साथ ही उसने धर्मराज की आंख बचाकर डोट पेन जैसे किसी साधन से गकार के नीचे एक छोटी-सी रेखा खींच दी। 'गतम्' 'शतम्' में बदल गया।

अब वह धर्मराज को सम्बोधित कर बोला—'आप तो न्यायप्रिय हैं, आपके सामने भी इतनी पोल? क्या आपके कर्मकर अनपढ़ हैं? कृपा कर आप मेरे खाते की जांच कीजिए। मैं इतने समय तक अपने परिवार की व्यवस्था में व्यस्त रहा। अब मुझे निश्चिंत होकर धर्माराधना में प्रवृत्त होना था। धर्म-कर्म करने का समय आया तो मुझे वहां से उठा लिया गया। क्या मेरा आयुष्य पूरा हो गया है?'

कहा जाता है—धर्मराज ने खाता देखा। 'आयुः शतम्' देखकर उसने यमराज को उपालम्भ दिया और उस वणिक को पुनः धरती पर जाने के लिए मुक्त कर दिया। धर्मराज के राज्य में एक फांकड़ी फंसाकर वणिक एक बार नारकीय यातना से मुक्त हो गया, पर कर्मों की संसद में ऐसा कुछ भी घटित नहीं हो सकता।

२०. श्रावण कृष्णा एकम का दिन अयन—वर्षार्ध (उत्तरायन और दक्षिणायन), वर्ष, युग, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी और कालचक्र का प्रथम दिन है। डालगणी ने कालूगणी के लिए युवाचार्य का नियुक्तिपत्र इसी दिन लिखा। इस दृष्टि से इस दिन का महत्त्व और बढ़ गया।

२१. महारानी ने अपने पति को धार्मिक बनाने के लिए साधु-सन्तों से मार्गदर्शन पाया, देवों की मनौतियां कीं, जप किया, संकल्प किया, पर राजा धार्मिक उपासना में दो क्षण का समय लगाने के लिए भी सहमत नहीं हुआ। राजकीय व्यस्तता से निवृत्त होकर वह महलों में पहुंचता। वहां रानी उसके स्वागत में पलकें बिछाए बैठी रहती। परस्पर मधुर संबंधों के बावजूद रानी के मन में एक कड़वाहट भरी रहती। जब-तब अवकाश पाकर रानी कहती—'राजन! आप मेरे लिए एक बार भगवान का नाम ले लीजिए।' पर राजा के मन पर रानी के प्रयत्नों से कोई प्रभाव नहीं हुआ।

दिन-पर-दिन निकलते गए। वर्षों का समय पूरा हो गया। एक दिन रात को अर्ध-निद्रावस्था में राजा के मुंह से निकल पड़ा—'हे भगवान!' रानी के कानों में ये शब्द पड़े और वह पुलकन से भर गई। राजा के उठने से पहले ही उसने शहर में उत्सव मनाने की घोषणा करवा दी। राजसभा में पहुंचने पर राजा ने उत्सव की चर्चा सुनी। राजा ने जानना चाहा कि आज यह आकस्मिक उत्सव क्यों मनाया जा रहा है? किसी को कुछ पता नहीं था। कोई कहे भी तो क्या? आखिर बात महारानी के आदेश पर जाकर टिकी।

महाराज ने महारानी से उत्सव का कारण पूछा। महारानी बोली—'आज का दिन बड़ा शुभ दिन है। लंबी प्रतीक्षा के बाद मेरा स्वप्न फला है। आज रात आपने भगवान का नाम लिया था।' राजा यह बात सुनकर उदास हो गया। उसने दुःखी मन से कहा—'आज मेरा एक चिरपोषित संकल्प टूट गया।' महारानी बोली—'मुश्किल से तो भगवान का नाम लिया और उस पर यह दुःख! ऐसा कौन-सा संकल्प था आपका?'

राजा ने अपने संकल्प के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए कहा—'मैं भगवान के नाम-स्मरण की अपेक्षा उनके आदर्शों पर चलना पसन्द करता हूं। जो व्यक्ति दिन-रात भगवान का नाम लेते हैं, पर बुराई से मुक्त नहीं होते, उनका क्या भला हो सकता है? तुम मुझे बार-बार भगवान का नाम लेने की प्रेरणा देती हो। क्या तुमने मेरे जीवन को निकटता से नहीं देखा? शासक होने पर भी मैं आक्रोश, अन्याय, संग्रह और शोषण से बचता रहा हूं। मेरे जीवन का एक क्षण भी ऐसा नहीं जाता होगा, जब मुझे भगवान की स्मृति न हो। हां, ऊपर से नाम न लेने का संकल्प मैंने जान-बूझकर लिया है। इस संकल्प के द्वारा मैं भगवान को भीतर रखना चाहता हूं और प्रत्यक्ष रूप में काम करता हुआ अपना कर्तव्य निभा रहा हूं।'

महारानी अपने पति की सहज धार्मिकता से इतनी प्रभावित हुई कि अब उसने अपने मन की समस्त कड़वाहट धोकर राजा के प्रति अपनी शिकायत को सदा-सदा के लिए समाप्त कर दिया।

२२. बीदासर के ठाकुर हुकमसिंहजी ने वि. सं. १९६० में बीदासर में निम्नलिखित संस्कृत श्लोक डालगणी के सामने प्रस्तुत किया। डालगणी ने उसके अर्थ-बोध हेतु कालूगणी को निर्देश दिया। इस श्लोक से कालूगणी को संस्कृत भाषा के गंभीर अध्ययन की प्रेरणा मिली। हमारे धर्मसंघ में संस्कृत-विकास में यह श्लोक बहुतं बड़ा निमित्त है। इसमें इक्कीस क्रियाएं गुप्त हैं–

दोषांस्त्वमरुणोदये रतिमितस्तन्वीरयातः शिवं,
यामैर्माम तथाः फलान् यदशुभं त्वय्यादृतेगे चकाः।
नारामं तम जाप योध रहितं मारस्यरंगा हृदः,
सो भाधी गृहमेधिनाऽपि कुविशामीशोऽसि नन्दाधिभूः।।

(इति एकविंशतिक्रियागुप्तम् काव्यम्)

२३. डालगणी कभी-कभी ऐसा प्रशस्त विनोद करते थे कि औरों को चौंका देते। एक बार शीतकाल में बहिर्विहारी संतों की उपस्थिति में आपने मुनि पृथ्वीराजजी, फोजमलजी, रामलालजी, छबीलजी आदि अनेक अग्रगण्य मुनियों को खड़ा कर प्रश्न किया–'आपके साथ कितने संत हैं और इनमें उपदेश कौन-कौन देते हैं?

डालगणी के निर्देशानुसार एक-एक मुनि ने खड़े होकर अपने दल में उपदेशक मुनि का विवरण प्रस्तुत कर दिया।

सबकी बात सुन डालगणी बोले–'तुम लोग तीन-तीन संत हों, फिर भी सबके पास उपदेश देने वाले संत हैं। हमारे पास इतने साधु हैं, पर कोई उपदेश देनेवाला नहीं है। इसलिए चातुर्मास में मैंने ही उपदेश दिया और मैंने ही रामचरित्र का व्याख्यान दिया।'

मधुर विनोद की यह बात सुनते ही संतों में हंसी और विस्मय की धाराएं एक साथ बहने लगीं।

घटना वि. सं. १९६४ बीदासर चातुर्मास की है। आपने रात्रिकालीन व्याख्यान में रामचरित्र शुरू किया। व्याख्यान से पहले नई-नई औपदेशिक गीतिकाएं सुनाने लगे। मंत्री मुनि ने निवेदन किया–'आपकी मर्जी हो तो उपदेश कोई मुनि दे देगा। व्याख्यान का परिश्रम तो आपको होता ही है, फिर यह अतिरिक्त श्रम क्यों कर रहे हैं?' मंत्री मुनि का निवेदन डालगणी ने स्वीकार नहीं किया। आपकी मर्जी

कालूगणी से उपदेश दिलाने की थी और वह भी कालूगणी स्वयं आकर प्रार्थना करे तो।

कालूगणी ने मंत्री मुनि से कहा था कि वे गुरुदेव से निवेदन कर दें कि व्याख्यान का प्रारंभ कोई भी संत कर देंगे; किंतु इस बात का डालगणी ने कोई उत्तर नहीं दिया तो कालूगणी ने सोचा—गुरुदेव की नई-नई गीतिकाएं फरमाने की इच्छा होगी, इसलिए स्वयं उपदेश फरमाते हैं। यह चिंतन कर उन्होंने कभी जाकर निवेदन किया नहीं।

महोत्सव के अवसर पर जब यह रहस्य खुला तब समझने वाले समझ गए कि चार मास तक डालगणी ने उपदेश क्यों दिया।

२४. डालगणी द्वारा लिखित पत्र—

भिक्षु पाट भारीमाल, भारीमाल पाट रायचन्द, रायचन्द पाट जीतमल, जीतमल पाट मघराज, मघराज पाट माणकलाल, माणकलाल पाट डालचन्द, डालचन्द पाट कालू। विशेष आज्ञा प्रमाणै चाल्यां फायदो होसी। सं. १९६६ प्रथम श्रावण बदि एकम, रविवार।

२५. आत्मा की अच्छी या बुरी प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट सुख-दुःख और आवरण के हेतुभूत पुद्गलों को कर्म कहा जाता है। वे संख्या में आठ हैं—

१. ज्ञानावरणीय
२. दर्शनावरणीय
३. वेदनीय
४. मोहनीय
५. आयुष्य
६. नाम
७. गोत्र
८. अन्तराय

२६. आत्मा की क्रमिक विशुद्धि का नाम गुणस्थान है। इसको जीवस्थान भी कहा जाता है। गुणस्थान चौदह हैं। इनमें आठवें गुणस्थान का नाम निवृत्तिबादर गुणस्थान है। इसे 'अपूर्वकरण' भी कहा जाता है। आत्मविकास की अग्रिम भूमिकाओं में पहुंचने के लिए यहीं से दो श्रेणियां निकलती हैं। यहां से क्षपक श्रेणी लेकर चलनेवाला साधक उत्तरोत्तर गति करता हुआ चौदहवीं भूमिका पारकर मुक्त हो जाता है। इस गुणस्थान में कुछ बातें अपूर्व होती हैं, इसलिए इसके 'अपूर्वकरण' नाम की सार्थकता है।

२७. जैन आगमों में आठ पृथ्वियों का विवेचन मिलता है। उनके नाम इस प्रकार हैं–

१. रत्नप्रभा	५. धूमप्रभा
२. शर्कराप्रभा	६. तमप्रभा
३. बालुकाप्रभा	७. महातमप्रभा
४. पंकप्रभा	८. ईषतप्राग्भारा

२८. कर्म-मुक्त आत्मा के आठ गुण हैं–

१. केवलज्ञान	५. अटल अवगाहन
२. केवलदर्शन	६. अमूर्तिकपन
३. आत्मिक सुख	७. अगुरुलघुपन
४. क्षायिक सम्यक्त्व	८. क्षायकलब्धि

ये आठ गुण मुक्त आत्मा में पाए जाते हैं। मुक्त आत्माएं सिद्धशिलातल से ऊपर रहती हैं। आधार और आधेय के अभेदोपचार से उस स्थान को ही महान आठ गुणों का स्थान कहा गया है।

२९. साधना की सुरक्षा की दृष्टि से पांच समिति और तीन गुप्ति का विशेष मूल्य है, अतः इनको माता कहा गया है। ये आठ प्रवचन माताएं कहलाती हैं–

समिति	**गुप्ति**
१. ईर्या समिति	१. मन गुप्ति
२. भाषा समिति	२. वचन गुप्ति
३. एषणा समिति	३. काय गुप्ति
४. आदाननिक्षेप समिति	
५. व्युत्सर्ग समिति	

३०. आठ मद स्थान–

१. जाति	५. तपस्या
२. कुल	६. श्रुत
३. बल	७. लाभ
४. रूप	८. ऐश्वर्य

३१. आठ सिद्धियां–

१. लघिमा	४. प्रकाम्य
२. वशिता	५. महिमा
३. ईशित्व	६. अणिमा

७. कामावसायित्व ८. प्राप्ति

३२. आप्त पुरुषों के आठ प्रातिहार्य–

१. अशोक वृक्ष
२. पुष्प वृष्टि
३. दिव्यध्वनि
४. देवदुन्दुभि
५. स्फटिक सिंहासन
६. धर्मचक्र
७. छत्र
८. चामर

३३. चौदह रज्ज्वात्मक लोक के असंख्य प्रतरों में दो सर्व क्षुल्लक प्रतर सुमेरु पर्वत के मध्य में होते हैं। उनमें चार ऊपर और चार नीचे गोस्तनाकार रूप में आठ प्रदेश होते हैं। वे रुचक प्रदेश कहलाते हैं। लोकाकाश की भांति आत्मा के भी आठ रुचक प्रदेश होते हैं।

केवली समुद्घात के समय आत्मा के असंख्य प्रदेश समस्त लोक में व्याप्त हो जाते हैं। उस समय आत्मा के आठ रुचक प्रदेश आकाश के आठ रुचक प्रदेशों पर जाकर अवस्थित हो जाते हैं, ऐसा माना गया है।

३४. कालूगणी का जन्म वि. सं. १९३३ में हुआ और आचार्य-पदारोहण १९६६ में। दो तीयों का दो छक्कों में परिवर्तन एक विशिष्ट घटना है। लेखक के अनुसार कालूगणी के आचार्य पदारोहण के समय छह छक्क मिले हुए थे। छह छक्कों में प्रथम दो छक्के १९६६ की साल के थे। एक छक्क मास का था। कालूगणी के जन्म अथवा नए वर्ष के प्रारंभ से महीनों का संख्यांकन किया जाए तो भाद्रव मास छठा मास होता है। उस समय कालूगणी की अवस्था तेंतीस वर्ष की थी। तेंतीस के दो अंकों की जोड़ छह होती है। इस प्रकार एक छक्क वर्ष का हो गया। पदारोहण की तिथि थी पूर्णिमा (१५)। पांच और एक छह, एक छक्क तिथि का हो गया। छठा छक्क परिषद था। इन छह छक्कों की समन्विति कालूगणी के व्यक्तित्व की विशिष्टता की सूचक है।

३५. आचार्य की आठ संपदा मानी गई हैं–आचार संपदा, श्रुत संपदा, शरीर संपदा, वचन संपदा, वाचना संपदा, मति संपदा, प्रयोगमति संपदा और संग्रहपरिज्ञा। प्रत्येक संपदा के चार-चार भेद करने से ये बत्तीस हो जाती हैं। इन्हें आचार्य के गुण रूप में भी विश्लेषित किया गया है।

१. आचार संपदा

१. चरण (संयम) युक्तता
२. मदरहितता
३. अनियतवृत्तिता
४. अंचचलता

२. श्रुत संपदा

१. बहुश्रुतता
२. परिचितसूत्रता
३. विचित्रसूत्रता
४. घोषविशुद्धि

३. शरीर संपदा

१. आरोहपरिणाहयुक्तता
२. अनवत्राप्यता
३. परिपूर्णेन्द्रियता
४. स्थिर संहननता

४. वचन संपदा

१. आदेय वचनता
२. मधुर वचनता
३. अनिश्रित वचनता
४. असंदिग्ध वचनता

५. वाचना संपदा

१. योग्य वाचना
२. परिणत वाचना
३. सूत्रनिर्वहन वाचना
४. अर्थनिर्वहन वाचना

६. मति संपदा

१. अवग्रह
२. ईहा
३. अवाय
४. धारणा

७. प्रयोगमति संपदा

१. शक्ति ज्ञान
२. पुरुष ज्ञान
३. क्षेत्र ज्ञान
४. वस्तु ज्ञान

८. संग्रहपरिज्ञा

१. गणयोग्योपग्रह संपत्ति
२. संसक्त संपत्ति
३. स्वाध्याय संपत्ति
४. शिक्षोपसंग्रह संपत्ति[1]

प्रकारान्तर से आचार्य के छत्तीस गुणों का वर्णन इस रूप में उपलब्ध है–

---

१. प्रवचनसारोद्धार पत्र १२८-१३०

१. आर्य देश	१३. जितनिद्र	२५. तदुभयविधिज्ञ
२. प्रशस्त कुल	१४. मध्यस्थ	२६. उदाहरणनिपुण
३. प्रशस्त जाति	१५. देशकालभावज्ञ	२७. हेतुनिपुण
४. प्रशस्त रूप	१६. प्रत्युत्पन्नमति	२८. उपनयनिपुण
५. दृढ़ संहनन	१७. अनेकभाषाविद	२९. नयनिपुण
६. धैर्य	१८. ज्ञान आचार	३०. शीघ्रग्राही
७. अनाशंसी	१९. दर्शन आचार	३१. स्वसमयज्ञ
८. श्लाघानिरपेक्षता	२०. चारित्र आचार	३२. परसमयज्ञ
९. ऋजुता	२१. तप आचार	३३. गंभीर
१०. स्थिरबुद्धि	२२. वीर्य आचार	३४. अनभिभवनीय
११. आदेयवचन	२३. सूत्रविधिज्ञ	३५. कल्याणकारी
१२. जितपरिषद	२४. अर्थविधिज्ञ	३६. शान्तदृष्टि

३६. पुत्र-सुख से वंचित एक राजा का अचानक स्वर्गवास हो गया। उत्तराधिकार के प्रश्न पर समस्या खड़ी होने लगी। समाधान की दिशा में उस समय प्रचलित परम्परा का प्रयोग हुआ। राज-परिवार में पालित बुलबुल को उड़ा दिया गया। वह उड़ती हुई जिस व्यक्ति पर जाकर बैठेगी, वही राजा बनेगा। इस निश्चय के साथ कुछ राजपुरुष बुलबुल की गति का पीछा करने लगे।

बुलबुल उड़ती हुई जंगल में गई और एक घसकट्टे (घास बेचकर जीविका निर्वाह करने वाले) के सिर पर जाकर बैठ गई। राजपुरुषों ने उस व्यक्ति को घेर लिया। वह बेचारा घबराकर बोला—'मुझे क्यों पकड़ते हो? मैं अपने खेत का घास काटकर भारा लाया हूं, किसी दूसरे का नहीं। मैंने कोई अपराध नहीं किया है।' राजपुरुषों ने बड़ी मुश्किल से उसको समझाकर राजा बनाने की बात बताई।

घसकट्टा खुश होकर राजमहल में पहुंचा। वहां उसे नहला-धुलाकर राजसी वस्त्र पहनाए गए। राज्याभिषेक समारोह में उसे ऊंचे सिंहासन पर बिठाया गया। विधिवत सारा काम संपन्न हुआ। सिंहासन से उतरते समय उसने अगल-बगल खड़े दोनों मन्त्रियों के कंधों का सहारा लिया। राजा के इस व्यवहार पर मन्त्रियों को हंसी आ गई। कल तक तो घंटों भर घास काटता और सिर पर बोझ ढोता, फिर भी थकान नहीं आती। आज बैठा-बैठा थक गया, इसलिए सहारे की जरूरत पड़ रही है। मंत्रियों की हंसी के पीछे यह पृष्ठभूमि थी। राजा ने देखा और समझा, पर कहा कुछ नहीं।

थोड़ी देर बाद उसने दोनों मन्त्रियों को बुलाकर पूछा—'उस समय आप

हंस क्यों रहे थे?' यह प्रश्न सुन मन्त्री स्तब्ध रह गए। वे बोले—'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।' राजा ने कुछ कठोर होकर कहा—'मुझे सच-सच बता दो।' मन्त्री घबराए और अपनी हंसी का कारण बता दिया। राजा ने उनको लक्षित कर कहा—'आप लोग वर्षों से मन्त्री हैं, पर अभी तक चिन्तन का स्तर कितना छिछला है। क्या आप यह सोचते हैं कि मैं बैठा-बैठा थक गया।' मंत्रियों ने अपनी भूल स्वीकार की। उनकी प्रश्नायित आंखों में झांकता हुआ राजा बोला—'सचिवो! मैं बिलकुल नया हूं। राज्य-संचालन का मेरा कोई अनुभव नहीं है। इस स्थिति में मेरे कार्य की सफलता आप लोगों की मन्त्रणा पर निर्भर करती है। मेरे मंत्रियों के कंधे कितने मजबूत हैं, इसकी थाह पाने के लिए मैंने आपका सहारा लिया था।'

मंत्री अपने राजा के उक्त तर्क को सुनकर अवाक हो गए। कल तक जिसे ठीक से बात करनी नहीं आती थी, आज वह इतना वाक्पटु बन गया। मंत्री के मुंह से सहसा बोल फूट पड़े—'यह सब गद्दी का प्रभाव है।'

३६. संघीय पुस्तकें तथा अन्य आवश्यक उपकरण जो संघ की संपदा है, उनका वजन सभी साधु-साध्वियों को लेना होता है। संघ द्वारा मान्य अवस्था और आचार्य द्वारा की गई बख्शीश इसमें अपवाद है।

प्राचीन समय में समुच्चय के वजन का अनुपात चौवन वर्ष तक दो पुस्तकें (पांच किलो) और साठ वर्ष तक एक पुस्तक (ढाई किलो) थी। साठ वर्ष के बाद समुच्चय के वजन से मुक्त समझा जाता था। सप्तम आचार्यश्री डालगणी के समय में स्थविर साधुओं के अधिक होने से वजन उठाने की समस्या हो गई। इस समस्या को समाहित करने के लिए आपने निर्देश दिया—'गुरुकुलवास में रहने वाले सभी साधु-साध्वियों को दो पुस्तकों का वजन उठाना होगा। अवस्था-वृद्ध साधु-साध्वियां भी इसके अपवाद नहीं होंगे।'

लाडनूं में डालगणी का स्वर्गवास हुआ और कालूगणी ने संघ का दायित्व संभाला। चातुर्मास-समाप्ति के बाद लाडनूं से विहार के समय साधुओं की ओर से वजन के सम्बन्ध में पुनर्विचार के लिए निवेदन किया गया। कालूगणी ने डालगणी द्वारा निर्धारित विधान के अनुसार सब साधु-साध्वियों को दो पुस्तकों का वजन लेने का निर्देश दिया। वहां से सुजानगढ़ पहुंचने के बाद मंत्री मुनि श्री मगनलालजी के विशेष अनुरोध पर कालूगणी ने पुस्तकों की व्यवस्था पूर्ववत (चौवन वर्ष तक दो और साठ वर्ष तक एक) लागू कर दी।

आचार्यश्री तुलसी ने इस व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन कर ५४ और ६० वर्ष

के स्थान पर ५८ वर्ष की अवस्था में साधु-साध्वियों को समुच्चय के वजन से मुक्त कर दिया। इस अवस्था से पहले बहिर्विहार में प्रत्येक साधु-साध्वी के लिए आधा किलो तक वजन लेने की विधि है। गुरुकुलवासी साधु-साध्वियों पर यह विधि लागू नहीं है। उन्हें अपेक्षा के अनुसार अधिक वजन भी लेना होता है।

३८. कालूगणी ने आचार्य-पद का दायित्व संभालते ही इस बात पर ध्यान दिया कि साधुओं में सिंघाड़े (वर्ग) बहुत कम हैं। इतने कम सिंघाड़ों से सब क्षेत्रों की संभाल नहीं हो सकती। इसी दृष्टि से आपने साधुओं के सात नए सिंघाड़े (वर्ग) तैयार किए। उस समय गुरुकुलवास में बहुत कम मुनि रहे। वर्ग के अग्रगण्य मुनियों के नाम पर प्रकार हैं–

१. मुनि आनन्दरामजी (श्रीडूंगरगढ़)
२. मुनि चुन्नीलालजी (सरदारशहर)
३. मुनि पन्नालालजी (गोगुन्दा)
४. मुनि छगनमलजी (कानोड़)
५. मुनि नथराजजी (गंगापुर) बाद में गण बाहर
६. मुनि सगतमलजी (पुर) बाद में गण बाहर
७. मुनि रंगलालजी (राजाजी का करेड़ा) बाद में गण बाहर

कालूगणी की ख्यात में सन्तों के सात सिंघाड़ों का ही उल्लेख है। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार उस समय साध्वियों के भी तीन नए सिंघाड़े बनाए गए थे। उनके नाम इस प्रकार हैं–

१. साध्वी जुहारांजी (फलौदी)
२. साध्वी छगनांजी (रासीसर)
३. साध्वी केसरजी (रीणी)

३९. कालूगणी द्वारा सर्वप्रथम दीक्षित मुनि पूनमचंदजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठा...

प्रथम शिष्य पुनवान, श्री कालू करुणा घणी।
आयू अल्पीयान, निर्मल संयम निर्वह्यो।।

४०. मुनि कस्तूरचन्दजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित पद्य–

१. वर व्यावचियो जीवन भर मुनि तेजमाल* की सेव करी।
भद्र प्रकृति तुलसी हस्ते सिघाड़बंध री ख्यात वरी।।
२. स्यामखोर गुरुभक्ता कामल रह्यो निकम्मापण स्यूं दूर।
थोड़ो किंयां घणो गुण लेतो कोमल-हृदय संत कस्तूर।।

*मुनि तेजमालजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठे–

१. कछवासी मुनि तेज, मरुधर रो धोरी वृषभ।
गण-गणपति स्यूं हेज, रंग्यो रंग मजीठ ज्यूं।।

२. बण्यो रह्यो बेदाग, लीलाधर री लील में।
कालू-कृपा अथाग, आजीवन आंख्यां लखी।।

४१. मुनि घासीरामजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित पद्य–

१. श्रद्धाचार व्रताव्रत आज्ञा अनुकम्पा नव तत्त्व पिछाण।
स्वामीजी री चौपायां पर करी मननपूर्वक मुनि छाण।।

२. पद्य हजारां कंठस्थित आगम री झीणी रेस ग्रही।
सन्त बडोड़ा नथमलजी री घासी बाबो बाट वही।।

३. खानदेश रो पहलो यात्री बोलारम तक जा पहुंच्यो।
श्री कालू री महर लहर जीवन भर गण में रच्यो-पच्यो।।

४. बच्यो अनेक बार खतरां स्यूं एक मात्र श्रद्धा रै पाण।
स्वामीजी रै शासन नै कर मान्यो अपणो जीवन-प्राण।।

४२. क्रीड़ा करता हुआ सिंह बार-बार पीछे मुड़कर देखता है, इसी प्रकार जिस तपस्या में पूर्व-आचरित तपःविधि को दोहराकर आगे बढ़ा जाता है, वह लघुसिंह निक्रीड़ित तप कहलाता है। महासिंह निक्रीड़ित तप की अपेक्षा छोटा होने के कारण इसका नाम लघुसिंह निक्रीड़ित है। इस तपस्या में एक से नौ उपवास तक तपस्या होती है। आगे बढ़ना और वापस उतरना यह इसका क्रम है।

लघुसिंह निक्रीड़ित के चार अभिक्रम हैं। प्रत्येक क्रम में तपस्या के दिन १५४ और पारणे के दिन ३३ होते हैं। इस प्रकार इसमें छह मास और सात दिन का समय लगता है।

प्रथम अभिक्रम में पारणे के दिन विगय (दूध, दही आदि पदार्थ) ली जा सकती है दूसरे अभिक्रम में विगय छोड़नी होती है, तीसरे में निर्लेप–नीवी और चौथे अभिक्रम में पारणे के दिन आयम्बिल किया जाता है। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में कुल दो वर्ष और अट्ठाईस दिन का समय लगता है।

भैक्षवशासन में उपरोक्त तप अनेक साधु-साध्वियों ने किया। उसमें चौथी परिपाटी अनेकों ने प्रारंभ की, पर प्रायः बीच में ही दिवंगत हो गए। इसको परिपूर्ण करने वाली तीन साध्वियां हुईं–

१. साध्वीश्री मुक्खांजी	वि. सं. १९७७ राजलदेसर में
२. साध्वीश्री धन्नांजी	वि. सं. १९८०

३. साध्वीश्री अणचांजी वि. सं. १९९६ बीदासर में

४३. मुनि सोहनलालजी, चूरू के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित दोहे–

१. सुघड़ लेख वाचक सुघड़, सुघड़ काव्य जल्पंत।
शासन रो सेवक सुघड़, सुघड़ सोहनो संत।।
२. सद्गुरु गुणगायक सुघड़, कलाकुशल मतिमंत।
'सिरेकुंवर' सति 'धन' तनय, सुघड़ सोहनो संत।।
३. हिम्मत कदे न हारतो, दिल रो बो दाठीक।
अकस्मात सुरपथ गयो, मुनि सोहन निर्भीक।।

४४. मुनि चंपालालजी (मीठिया) के संसारपक्षीय कनिष्ठ भ्राता मुनि चुन्नीलालजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठे–

१. विश्वासी दृढ़निष्ठ, वर आचार-विचार में।
चंपक-भ्रात कनिष्ठ, चावो चुनीलाल मुनि।।
२. चम्माली वर्षांह, संयम पाल्यो सांतरो।
अपनी दूजी बांह, ज्यूं बंधव साथे रह्यो।।
३. आखिर अनशन धार, च्यार दिनां चेतै सहित।
कियो आत्म निस्तार, जोजावर सुसमाधि में।।

४५. साध्वी छोटांजी की तपस्या, संलेखना और अनशन बहुत प्रभावशाली रहे। उन्होंने एक तेरह को छोड़कर पंद्रह तक लड़ी की। ३१ दिन संलेखना तप किया। ३५ दिन तिविहार अनशन और दो घंटे २० मिनट चौविहार अनशन किया। उनकी यह अंतिम ६६ दिन की तपस्या पूर्व-निर्धारित-सी प्रतीत होती है।

४६. वि. सं. १९२८ (ई. सन् १८७१) में हर्मन जेकोबी पहली बार भारत आए थे। दूसरी बार वि. सं. १९७० (ई. सन् १९१३) में वे जोधपुर जैन साहित्य सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए जोधपुर आए। उस समय चूरू-निवासी केशरीचंदजी कोठारी उनसे मिले। उन्होंने तेरापंथ और कालूगणी का परिचय देकर उनके दर्शन करने की प्रेरणा दी। सं. १९७० फाल्गुन शुक्ला १० को हर्मन जेकोबी लाडनूं में कालूगणी से मिले।

४७. सेठ को व्यवसाय की दृष्टि से देशान्तर जाना था। घर में पत्नी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। पति के प्रस्थान की बात सुन वह बोली–'आपके बिना एक दिन भी बिताना कठिन हो जाता है। यह एक साल का लंबा समय कैसे कटेगा?' पति ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा–'समय काटना तुम्हारे लिए

जितना कठिन है, उतना ही मेरे लिए है। जरूरी काम है इसलिए जाना पड़ेगा।'

पत्नी बोली—'आप तो वहां व्यापार में उलझ जाएंगे। मैं यहां बैठी-बैठी करूंगी क्या?' यह सुनकर सेठ ने कहा—'अपने यहां एक गोदाम कपास से भरा है। तुम दिनभर बैठी-बैठी सूत कातते रहना। काम में मन लग जाएगा तो वर्ष पूरा होता ही दीखेगा।'

पति की अनुपस्थिति में पत्नी ने गलत रास्ता ले लिया। वह दुश्चरित्रा हो गयी। दिन-रात ऐश और विलास। कौन पति को याद करे और कौन कपास काते? समय अपनी गति से बह रहा था। सेठानी की आंखें तब खुलीं, जब उसे संवाद मिला कि सेठजी अपनी एकवर्षीय यात्रा पूरी कर घर पहुंच रहे हैं। सेठ के आगमन का संवाद सेठानी के लिए महाभारत बन गया और सारी व्यवस्था उसने ठीक कर ली पर काते बिना कपास का सूत तो बन नहीं सकता था। आखिर उसने एक षड्यंत्र रचा और अपने पति को फंसाने के लिए निकल पड़ी।

चण्डी देवी का भयावह रूप, सिर पर धधकते अंगारों से भरी हंडिया और हाथ में नंगी तलवार। सेठानी अपने पति के रास्ते में आकर खड़ी हो गई। ज्योंही सेठ उधर से गुजरा, वह कड़ककर बोली—'अरे यायावर! बिना मेरी आज्ञा इस कान्तार से गुजरने वाला तू कौन है?'

सेठ कांप उठा। कुछ पूछने का साहस उसे नहीं हुआ। हाथ जोड़े, पांवों में सिर रखा, गिड़गिड़ाया, पर देवी का कोप शांत नहीं हुआ। उसके हाथ में नंगी तलवार देख सेठ का सिर चकराने लगा। भय के कारण उसके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे। फिर भी वह बचा-खुचा साहस जुटाकर बोला, मां! भूल हो गई। क्षमा करो। चाहो तो कोई प्रायश्चित्त दे दो।

सेठानी इसी अवसर की प्रतीक्षा में थी। वह कुछ रोब प्रदर्शित करती हुई बोली—

'मैं हूं देवी चण्डिका, माथै मोटी हंडिका।
थारो या पत्नी रो नाश, कात्यो-पीन्यो करूं कपास।।'

—देवी ने प्रायश्चित्त के तीन विकल्प सुझाए—

१. इस तलवार से तुम्हारी गरदन उतार दूं।

२. तुम्हारी पत्नी को बलि का बकरा बना दूं।

३. तुम्हारी पत्नी द्वारा काते गए सूत को कपास बना दूं।

भद्र श्रेष्ठी अपनी पत्नी की वंचना को नहीं समझ सका। उसने अनुनयपूर्ण शब्दों में कहा—'देवि! तीसरा विकल्प मुझे स्वीकार है!' देवी बोली—'तथास्तु! ऐसा

ही होगा। पर देखो दो घंटा तक यहां से हिलना मत।'

वहां से लौटकर सेठानी घर पहुंची और अपने चण्डी के मुखौटे को उतार फेंका। दो घंटे बाद वहां से चलकर सेठ घर पहुंचा। भय के कारण उसे ज्वर हो गया था। मध्याह्न की धूप और भूख का भी प्रभाव था। दयनीय दशा में उसने घर में प्रवेश किया। सेठानी प्रतीक्षा में बैठी थी। सेठ की हालत देखते ही वह आंसू बहाती हुई बोली—'आपको शरीर का कोई ध्यान है या नहीं? यह क्या हाल बना रखा है?'

सेठ बोला—'आज तो तुम्हारे सौभाग्य से ही बचकर आया हूं। मार्ग में देवी कुपित हो गई। वह मेरे या तुम्हारे प्राण लेकर ही संतुष्ट होने वाली थी। किन्तु एक बात पर राजी हो गई कि तुमने साल भर जो सूत काता है, उसे कपास में बदलकर जीवन-दान दे सकती हूं।'

सेठानी अन्यमनस्क होकर बोली—'तो क्या मेरा साल भर का परिश्रम व्यर्थ जाएगा?' सेठ ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—'प्राण बचे लाखों पाए। चलो, देखें तुम्हारे सूत का क्या हाल है?' पति-पत्नी दोनों गोदाम में गए। वहां कपास का ढेर वैसे ही लगा था, जैसे सेठ छोड़कर गया था। पत्नी ने व्यंग्य भरी मुस्कान बिखेरते हुए कहा—आपकी देवी ने मेरा कात्या-पीन्या कपास कर दिया।'

४८. लाडनूं में हर्मन जेकोबी ने आचार्यश्री कालूगणी के दर्शन किए। वहां तीन दिन रहकर उन्होंने जैन आगम, जैनसाधना-पद्धति, तेरापंथ की दीक्षा तथा कालूगणी के व्यक्तित्व का अध्ययन किया। नए प्रदेश और नए संपर्क में उन्हें जो अनुभव हुआ, उसकी चर्चा उन्होंने लाडनूं में ही दिए गए एक वक्तव्य में की। वक्तव्य अंग्रेजी भाषा में है। उसे यहां अविकल रूप से उद्धृत किया जा रहा है—

Ladies and Gentlemen

I have now been three days in your town of Ladnun, where I have been invited by the Jain Swetambar Terapanthi Community. I have enjoyed your great hospitality and I gladly avail myself of this opportunity to offer my cordial thanks to all who have come from near distant places to meet me and who have vied with each other to make my stay in Ladnun a very plesant and successful one. As I am told, I am the first European, who came to this town. May

my visit which has given so much satisfaction to me, and I hope, same to you, be an auspicious omen—a Mangala for the friendly relation of the two races, European and Indian.

I have been much interested in seeing your town with its splendid mansions and its fort with its historical memories and I shall not forget, what has made so deep an impression on my mind. But the purpose for which I came and for which I was expressly invited was to see your Pujyaji Maharaj and to collect information about the Jain Swetambar Terapanthi section at the fountain head. In this respect my visit was a fully success.

I had some lengthy conversations with the Pujyaji Maharaj Shree Kaluramji, who has most kindly shown and explained to me important passages on the jain Shastras and enlightened me besides on many important points of interest, e.g. on the very strict rules of conduct to which the J. S. Terapanthi sadhus must comply and other gentlemen who have taken much trouble to inform me about the organisation of the J. S. Terapanthis, the working of which I have observed with my own eyes, when I was present at the meetings of Sadhus and Mahasatis, of shravaks and shravikas under the guidance of your venerable head Guru, the Pujyaji Maharaj. It so happended that during my presence in Ladnun, the ordination of a man and his wife took place and I could witness the ceremony. Moreover, on this very morning, I have been present at a शिक्षा (i.e. the public examination of sadhus). Thus I have been able to form a correct idea of the institutions and the religious life of the J. S. Terapanthis, about whom so little is known to the public in Europe and America. I may say, that thanks to the readiness of all to give me information. The purpose of my visit to Ladnun has been entirely fulfilled and that I am now in a position, whereever an occasion offers, to speak with authority about the J. S. Terapanthis and their religion.

Before I conclude, I should like to make another remark. I have been told that the Terapanthis like the other sections of the Jain Church make efforts to improve the education of their youth. Now I would direct your attention to one point. I have met many Jains who had a full command of the English language but very few who had mastered even the elements of Sanskrit, the learned language of their own country. In my opinion, which I hope is shared by most of you, it should be the duty of very educated Jain to learn Sanskrit, not to pass an examination in that language, but to be able to read the works of their own literature. Ofcourse, for that purpose you should not study Sanskrit as the Pandits teach it. The niceties of grammar are not wanted by one, who learns Sanskrit to read books written in an easy style. What is wanted is the knowledge of the rudiments of grammar declination, the verbal system, and compounds and the principal means to reach the aim will be to read easy texts, not difficult ones; and to read extensively not only small portions and selected specimens. It will be necessary to fix the method to be employed in the schools to be founded. You must settle these principles in conjuction with all the sections of Jains. Swetambars and Digamhars Sthanakvasis and Terapanthis must forget their quarrels and devise together the plan for the higher Jain education. By united efforts only you will be able to come to satisfactory results.

And now, Gentlemen, I must conclude with deeply felt thanks for your liberal hospitality, for the cordial welcome you gave me and for so many acts of kindness which I never shall forget. So I say farewell to you and Community. May it continue to prosper and progress for all time and in all places.

Ladnun, 9-3-14 Sd. Dr. Hermann Jacobi

४९. इलाहाबाद जाने वाले श्रावकों के नाम पढ़ें निम्नांकित सोरठों में–

१. जीवण बैंगाणीह[1], गणेशजी चण्डालिया[2]।
गणेश गधियाजीह[3], राय सुराणा[4] मुदित मन।।

२. विश्रुत साथ वकील, सहज छोगजी चोपड़ा।
शासणभक्त सलील, निज कर्तव्य निभाण नै।।

१. जीवनमलजी बैंगानी (लाडनूं)
२. गणेशदासजी चंडालिया (लाडनूं)
३. गणेशदासजी गधैया (सरदारशहर)
४. रायचंदजी सुराणा (चूरू)
५. छोगमलजी चोपड़ा (गंगाशहर)

५०. गोहिरा प्रायः पीपल के वृक्ष के आसपास रहता है। जिस स्थान पर गोहिरा रहता है, वहां बिजली गिरने की संभावना रहती है, ऐसी जनश्रुति है। उससे गोहिरा तो जलता ही है, उसके साथ पीपल का वृक्ष भी जलकर भस्म हो जाता है।

५१. साध्वीप्रमुखा जेठांजी अस्वस्थता के कारण मेवाड़-यात्रा में साथ नहीं थीं। सं. १९६२ में उनका चतुर्मास सरदारशहर था। उसके बाद उन्होंने राजलदेसर में स्थिरवास किया था। यहां स्थिरवास की दृष्टि से राजाण (राजलदेसर) का उल्लेख है।

५२. भगवान महावीर ने अपने साधनाकाल में मंखलिपुत्र गोशालक को दीक्षित किया, मुंडित किया, प्रव्रजित किया, शिक्षित किया और तेजोलब्धि प्राप्त करने की प्रक्रिया बताई। गोशालक भगवान के साथ-साथ घूमता। एक दिन उसने वैश्यायन नामक तपस्वी से छेड़छाड़ की। तपस्वी उत्तेजित हुआ। उसने गोशालक को समाप्त करने के लिए उष्ण तेजोलब्धि का प्रयोग किया। भगवान ने सोचा–गोशालक भस्मसात हो जाएगा। गोशालक के प्रति उपजी अनुकम्पा से प्रेरित होकर भगवान ने शीतल तेजोलब्धि का प्रयोग किया। गोशालक बच गया।

गोशालक को बचाने के लिए तेजोलब्धि का प्रयोग भगवान महावीर का छद्मस्थ अवस्था में होने वाला प्रमाद था। केवलज्ञान उपलब्ध होने के बाद भगवान ने अपने शिष्यों को जो मार्गदर्शन दिया, उसमें लब्धिप्रयोग का निषेध किया है।

भगवान के सामने उन्हीं के दो शिष्य–सर्वानुभूति और सुनक्षत्र गोशालक की तेजोलब्धि से जलकर भस्म हो गए। उन्हें बचाने के लिए न तो भगवान ने शीतल तेजोलब्धि का प्रयोग किया और न इन्द्रभूति आदि लब्धिसंपन्न मुनियों

नें किया। क्योंकि भगवान को केवलज्ञान के आलोक में यह ज्ञात हो चुका था कि लब्धिप्रयोग साधु के लिए विहित नहीं है। छद्मस्थ अवस्था में प्रमाद होना असंभव नहीं है। भगवान महावीर के जीवन में ऐसा ही कुछ घटित हुआ, जिसका पूरा विवेचन भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में उपलब्ध है।

५३. 'सायां का खेड़ा' गांव के पास ही सिसोदा है। सिसोदा श्रद्धा का क्षेत्र है। उसके आसपास के क्षेत्रों की यात्रा के प्रसंग में वह क्षेत्र छूटना नहीं चाहिए, पर मूल ग्रन्थ में उसका उल्लेख नहीं है।

५४. एक भूंखा ब्राह्मण कालिदास के पास पहुंचा। उसकी दयनीय स्थिति उसके आकार, वस्त्रों और शब्दों से अभिव्यक्त हो रही थी। वह बोला—'कविवर! आपके सहयोग बिना महाराज भोज के निकट पहुंचना संभव नहीं है। आप कृपा करें तो मेरे लिए रोटी-पानी की जुगाड़ हो जाए।'

कालिदास का मन करुणा से भर गया। उसने पूछा—'तुम कुछ पढ़े-लिखे हो?' 'नहीं, मैं तो कुछ नहीं जानता।' ब्राह्मण का उत्तर सुन कालिदास बोला—'तुम अच्छी पोशाक पहनकर राजसभा में पहुंचो और राजा का अभिवादन कर एक शब्द बोलो—'आशीर्वादः'। आगे की स्थिति मैं संभाल लूंगा।'

ब्राह्मण के लिए आशीर्वाद शब्द को याद रखना भी कठिन था। वह 'आशीर्वादः' रटता हुआ चल रहा था। रास्ते में एक ऊंट दौड़ रहा था। लोग चिला रहे थे—'उष्ट्रः उष्ट्रः'। ब्राह्मण आशीर्वाद को भूल गया और 'उष्ट्र' शब्द को पकड़ लिया। 'उष्ट्र' शब्द भी उसकी पकड़ से निकल गया। अब वह 'उशरटः उशरटः' करता हुआ राजसभा में पहुंचा।

राजा भोज विद्वानों से घिरा बैठा था। नवागत पंडित ने दूर से ही राजा की ओर लक्ष्य कर कहा—'उशरटः'। वहां उपस्थित सब पंडित खिलखिलाकर हंस पड़े। कालिदास अपने स्थान से उठा और बोला—विद्वानो! आप लोगों को पंडित की पहचान नहीं है। नए अतिथि का इस प्रकार मखौल पांडित्य का उपहास है। हमारे अतिथि विद्वान ने चार अक्षरों में महाराज की स्तुति की है। उन्होंने कहा है—

उमया सहितो देवः, शंकरः शूलपाणिना।
रक्षतु त्वां हि राजेन्द्र! टकारः घनगर्जनात्।।

कालिदास के सहयोग से वह महामूर्ख भी पंडित कहलाकर कृतार्थ हो गया।

५५. प्राचीन समय की बात है। एक ब्राह्मणपुत्र बारह वर्ष तक काशी में विद्याभ्यास कर अपने घर लौट रहा था। मार्ग में एक गांव से गुजरते समय वह

कुएं के पास ठहरा, बैल को पानी पिलाकर विश्रामहेतु एक वृक्ष के नीचे बैठा। वहां कुछ ग्रामीण व्यक्ति पहले से ही बैठे थे। नवागन्तुक के पांडित्य का परिचय पाकर वे बोले—'हमारे गांव में भी एक पंडित रहता है, आप उनके साथ शास्त्रार्थ करें।' ब्राह्मणपुत्र ने आनाकानी की तो वे कहने लगे—'शास्त्रार्थ किए बिना पांडित्य का परीक्षण क्या होगा?' गांववासियों के उकसाने से न चाहने पर भी उसने शास्त्रार्थ के लिए स्वीकृति दे दी।

ग्राम से पंडित को बुलाया गया। वह था तो मूर्खभट्टारक पर ऊलजलूल बातें बताकर पंडित बन बैठा। उसने आते ही कहा—'शास्त्रार्थ करना है तो बोलो मध्यस्थ कौन है?' ग्रामवासी बोले—'मध्यस्थ हम हैं।' पंडित ने पुनः पूछा—'शर्त क्या है?' वे बोले—'पंडितजी! इस राहगीर पंडित के पास शास्त्रों से भरी हुई बोरी और एक बैल है। यदि यह हारे तो शास्त्र-भंडार तथा बैल आपका और आप हारे तो घर का माल-असबाब सारा पंडित का।'

सारी बातें तय होने के बाद वह ग्रामीण पंडित बोला—'पंडितजी! मेरा एक प्रश्न है—'तुंबक तुंबक तुंबा है जी तुंबक तुंबक तुंबा है'—इस प्रश्न का उत्तर दो।'

नवागन्तुक पंडित इस प्रश्न की भाषा को नहीं समझ सका। उसने अपने सारे ग्रंथ छान डाले, पर प्रश्न का उत्तर कहीं नहीं मिला। ग्रामीण लोग बोले—'हमारे पंडितजी महापंडित हैं। आप इनसे हार गए, अतः शर्त के अनुसार सारी पुस्तकें और बैल इनको सौंप दो।' ब्राह्मणपुत्र बहुत दुःखी हुआ। अपना सर्वस्व वहीं छोड़कर वह दुःखी मन से अपने गांव पहुंचा।

पारिवारिक लोग उसकी प्रतीक्षा में खड़े हुए थे। उसे विमनस्क और व्यथित देखकर पिता ने पूछा—'पुत्र! बारह साल बाद घर आए हो। खुशी के इन क्षणों में यह उदासीनता क्यों?' पुत्र का गला भर आया। उसने अपने साथ बीती सारी घटना सुना दी। ब्राह्मण सुनकर मुस्कराया और बोला—'बेटा! चिंता मत करो। जाओ, विश्राम करो। मैं अभी जाता हूं और तुम्हारे ग्रन्थ लेकर आता हूं।'

ब्राह्मण ने तिलक-छापा कर ब्राह्मणत्व को अच्छी प्रकार निखारा। साथ में एक बैल लिया और एक खाली बोरी। रास्ते में आरणिया छाणों (कण्डों) से बोरी को भरकर उसी ग्राम में पहुंचा। गांववासियों ने पंडितजी का परिचय पाकर उसी प्रकार शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी। पंडितजी ने अपनी स्वीकृति दी। ग्राम के पंडित को सूचना मिली। वह विजयी जुआरी की भांति दौड़ता हुआ आया। वही शर्त और वे ही मध्यस्थ। पंडित ने अपना वही 'तुंबक तुंबक तुंबा' वाला प्रश्न दोहराया।

आगन्तुक पंडितजी बोले—'प्रश्न ही अधूरा है, तब उत्तर कैसे होगा?' मध्यस्थता करने वाले बोले—'पंडितजी ठीक कह रहे हैं। अधूरे प्रश्न का उत्तर कैसे हो सकता है? पहले प्रश्न पूरा करो।' पंडित बगलें झांकने लगा तो उन्होंने आगन्तुक पंडित को संबोधित कर कहा—'प्रश्न की पूर्ति आप ही कर दीजिए।' पंडितजी रोब जमाते हुए बोले—'सीधा तुंबक तुंबक बोल दिया। तुबंक आएगा कहां से? पूरा पाठ इस प्रकार है—

खेतस खेतस खेता है जी खेतस खेतस खेता है।
मेहस मेहस मेहा है जी मेहस मेहस मेहा है।
बीजस बीजस बीजा है जी बीजस बीजस बीजा है।
बेलस बेलस बेला है जी बेलस बेलस बेला है।
नालस नालस नाला है जी नालस नालस नाला है।
फूलस फूलस फूला है जी फूलस फूलस फूला है।
[औंर फिर] तुंबक तुंबक तुंबा है जी तुंबक तुंबक तुंबा है।'

गांववासी लोग लगे अपने पंडित को कोसने। वे बोले—'यह पाठ तो हम भी जानते हैं, पूरा पाठ इसी प्रकार है। हमारे पंडितजी पाठ खाते हैं। इस शास्त्रार्थ में ये पराजित हैं। इनको पराजित करने वाले आप पहले पंडित हैं। हम तो इन्हीं को परमेश्वर मानकर बैठे थे। पर अब हमारे यहां इस रूप में नहीं रह सकेंगे।'

शर्त के अनुसार उन्होंने वह बैल, पुस्तकें और घर का सारा सामान पंडितजी को भेंट कर दिया। पंडितजी ने अपने घर पहुंचकर सारी पुस्तकें पुत्र को लाकर सौंप दीं। पुत्र ने विस्मित भाव से पूछा—'पिताजी, आपने उसे कैसे जीता?' पिता ने उत्तर दिया—पुत्र! ऐसे पंडित मेरे जैसे अनपढ़ लोगों के द्वारा ही पीटे जाते हैं। तुम्हारे पांडित्य का परीक्षण विद्वद परिषद में हो सकता है। ऐसे पंडितों के सामने तो हम ही काफी हैं।'

५६. एक गरीब बुढ़िया का पुत्र जिस स्कूल में पढ़ता था, उसी स्कूल में एक राजकुमार भी पढ़ता था। बुढ़िया का बेटा प्रतिभासंपन्न था और राजकुमार था मंदमति। बैठने का स्थान निकट होने से दोनों में मित्रता हो गई। राजकुमार के अध्ययन में बुढ़िया का लड़का सहयोग करने लगा, इससे उनकी मित्रता और प्रगाढ़ हो गई।

एक दिन अध्यापक ने बच्चों से कहा—'विद्यार्थियो! दूध पौष्टिक भोजन होता है। सुबह नाश्ते में बच्चे दूध लेते रहें तो उनकी प्रतिभा और अधिक निखर जाएगी।' बुढ़िया के बेटे को दूध का स्वाद ही याद नहीं था। उसने घर पहुंचकर

दूध की मांग की। बुढ़िया ने उसको समझाना चाहा, पर वह समझा नहीं।

बुढ़िया इतनी गरीब थी कि पाव भर दूध जुटा पाना संभव नहीं था। उसने पुत्र के मन को समाहित करने के लिए गेहूं के आटे का धोवन बना दिया और उसमें थोड़ी चीनी डाल दी। लड़का उसे दूध मानकर पी गया। अब यह प्रतिदिन का क्रम बन गया। बुढ़िया अपने पुत्र को दूध के नाम पर धोवन पिलाकर व्यथित थी। पर वह निरुपाय थी। और कुछ कर भी नहीं सकती थी।

राजकुमार कई दिनों से बुढ़िया के पुत्र को अपने घर आमंत्रित कर रहा था; पर वह इतना स्वाभिमानी था कि स्वीकृति ही नहीं दे रहा था। आखिर राजकुमार के अत्यन्त आग्रह पर उसने इस शर्त पर जाना स्वीकार किया कि एक दिन राजकुमार भी उसके घर भोजन करेगा।

प्रातराश के समय राजकुमार ने अपने परिचारक को निर्देश दिया—'आज दूध के दो कटोरे यहां पहुंचा दें।' रढ़ा हुआ मलाईदार दूध, ऊपर बादाम, नोजे, पिस्ते, इलायची आदि। राजकुमार ने एक कटोरा अपने मित्र के हाथ में थमा दिया और एक अपने हाथ में ले लिया। दूध देखते ही बुढ़िया के पुत्र को मितली आने लगी। दूध पर डाले हुए मेवे में उसको मक्खियों का आभास हुआ। उसने सोचा—बड़े घरों में नौकरों के हाथ से काम होता है। कौन संभाल रखता है रसोई की? मेरी मां मुझे कितना स्वच्छ दूध पिलाती है। यह ऐसा दूध मैं नहीं पी सकता।

राजकुमार ने मित्र की झिझक को बड़ी मुश्किल से तोड़कर उसे दूध पिलाने के लिए राजी किया। दूध पिया तो बड़ा रुचिकर लगा। ऐसा स्वादिष्ट दूध तो उसने कभी चखा ही नहीं था। दूध पीने से पहले उसकी झिझक स्वाभाविक थी, क्योंकि उसने सदा धोवन ही पिया था। धोवन पीने का आदी व्यक्ति दूध की गरिमा को कैसे पहचान सकता है।

५७. अवस्था से वृद्ध, शरीर से असमर्थ और भूख से व्याकुल वनराज वन के एक प्रान्तर में शांत भाव से बैठा था। शरीर और मन—दोनों का पराक्रम चुक जाने के कारण वह खाद्य-सामग्री उपलब्ध नहीं कर सकता था। सामने वृक्ष पर एक बन्दर बैठा था। उसका आमिष पाने के लिए वह उतावला था, पर शक्तिहीन था।

सिंह ने एक चाल चली। महात्मा का जामा पहना, वैराग्य का प्रदर्शन किया और आंखें जमीन में गड़ाकर चला। ऊपर से बंदर ने देखा। विस्मित हुआ। जंगल का राजा, इतना संयत और शांत! नीचे की टहनी पर बैठकर बंदर ने पूछा—'वनराज! आज यह क्या रूप बनाया है? यह वैराग्य कब से और क्यों है?' सिंह बोला—भाई! जीवन-भर पाप किया, अब अवस्था ढल रही है, मन संसार से उद्विग्न हो गया

अतः मैंने सब प्राणियों के साथ मैत्री का संकल्प कर लिया है।'

बंदर खुश हुआ। सोचा—हमारे पशु-परिवार में भी साधुता आ रही है। ऐसी पवित्र आत्मा के चरण स्पर्श कर हम भी अपना कल्याण कर लेंगे। यह सोच वह वृक्ष के नीचे उतर आया। उसने वनराज से चरण-स्पर्श की अनुमति मांगी तो वह बोला—'भैया! ये सब उपचार हैं, मुझे इनकी कोई अपेक्षा नहीं है।' बंदर बोला—'महात्मन्! आपको अपेक्षा नहीं है, पर मैं अपनी जरूरत के लिए ऐसा करना चाहता हूं। सिंह इस बात पर मौन रहा तो बंदर उसके निकट आया और नमस्कार-हेतु नीचे झुका।

सिंह ने मौका देखा और बंदर की गर्दन पकड़ ली। बंदर सिंह के छल को समझ गया। बचाव की दृष्टि से उसने एक उपाय सोचा। वह एकदम खिलखिलाकर हंसने लगा। मौत के मुंह में हंसी! सिंह ने आश्चर्य के साथ इसका कारण पूछा। बंदर बोला—'आज मैं बहुत खुश हूं। क्योंकि आप जैसे महात्मा के द्वारा मेरी सहज सुगति हो रही है। मेरी हंसी का रहस्य यही है। अब आप कृपा कर मेरी इस जीवन-यात्रा को शीघ्र समाप्त करें। किंतु उससे पहले मेरे मन की एक तीव्र अभिलाषा है, उसे भी पूरी करें।' वनराज की सांकेतिक जिज्ञासा के उत्तर में वह बोला—'मैंने आपका आक्रोश देखा है, पर यह बात बहुत पुरानी हो गई। वर्तमान में मैं आपके जीवन में अहिंसा और संयम देख रहा हूं, किंतु आपका हास्य कभी नहीं देखा। कृपा कर एक बार मुसकान बिखेर दें, मैं कृतकृत्य हूं।'

अपनी प्रशंसा सुनकर सिंह इस बात को भूल गया कि बन्दर किस उद्देश्य से क्या कर रहा है। वह खिलखिलाकर हंसने लगा। मुंह खुलते ही बन्दर नौ-दो ग्यारह। वह वृक्ष पर चढ़कर रोने लगा। वनराज ने पूछा—'बन्दर! तुम मेरी पकड़ में थे तब हंस रहे थे और अब प्राण बच गए तब रो रहे हो, क्यों?' बंदर बोला—'वनराज! मैं उस समय हंसा था अपने बचाव के लिए और अब रोता हूं तुम जैसे सन्तों पर, जो भोली दुनिया को अपने फरेब में लेकर किस प्रकार धोखा दे देते हैं।'

५८. एक कथाभट्ट कथा सुनाता था। प्रतिदिन नई-नई कथाएं और प्रासंगिक चर्चा। श्रोता लोग अच्छा रस लेते थे। एक दिन चर्चा के संदर्भ में बैंगन पर बात चली। कथाकार ने पुस्तक में वर्णित बैंगन के अवगुण बताते हुए कहा—'यह बहुबीजा है, तामसिक है, बेगुण—गुणरहित है, इसलिए इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए।' श्रोता लोग पंडितजी के प्रतिपादन से प्रभावित हुए। कई व्यक्तियों ने बैंगन खाने का परित्याग कर दिया।

कथा पूरी हुई। कथाभट्ट अपने घर के लिए रवाना हुआ। साथ में कुछ भक्त भी थे। रास्ते में सब्जी-मंडी आ गई। कथाभट्ट सब्जी खरीदने के लिए रुका और बैंगन का मोल-भाव पूछने लगा। भक्तों को यह अटपटा-सा लगा, पर बोलने का साहस नहीं हुआ। एक भक्त से चुप नहीं रहा गया। वह बोला—'पंडितजी! अभी तो आप बैंगन की इतनी बुराई कर रहे थे और अब खाने के लिए खरीदने लगे हैं। क्या बात है?'

पंडित एक बार झिझका, फिर रोष प्रदर्शित करता हुआ बोला—'मूर्ख! तू कुछ समझता भी है कि नहीं, वे बैंगन पोथे के थे और ये खाने के हैं। पोथे की सब बातें मानक्रर बैठ जाएं तो जी भी नहीं सकते।'

५७. एक संपन्न सेठ के घर में गाय, भैंस आदि पशु बहुत थे। गायें-भैंसें अच्छी नस्ल की थीं, अतः वे दूध भी अच्छा देती थीं। दूध, दही, मक्खन किसी पदार्थ की कमी नहीं थी। उस सेठ के पड़ोस में एक ईर्ष्यालु व्यक्ति रहता था। वह सेठ की संपन्नता और पशुधन देखकर मन-ही-मन बहुत जलता था। उसकी जलन कभी-कभी अधिक बढ़ती तो वह कुछ जली-भुनी सुना भी देता था।

एक दिन वह भोजन करने बैठा। पड़ोस में भैंस का शब्द सुन वह आवेश में आकर बोला—'सेठ ने कितनी मोटी भैंसें पाल रखी हैं, दिन भर अरड़ाती रहती हैं। ये मर क्यों नहीं जातीं?' उसकी पत्नी ने यह बात सुनी और कहा—'पड़ोसी की भैंस आपको क्यों अखरती है? पड़ोस में रहने के कारण हम भी इसका लाभ उठाते हैं। पड़ोसी के घर छाछ बनती है, वह हमें प्रतिदिन मिल जाती है। पर्व-त्यौहार के दिन दूध भी मिल जाता है। हमें तो फायदा ही है।'

पति बोला—'तुम जानती नहीं हो, इन गाय-भैंसों ने मुझे कितना बेचैन बना रखा है? पड़ोसी के घर जब-जब बिलौने का शब्द होता है, मेरे कलेजे में झेरने की ताड़ियों का आघात होता है। मैं अब इसे अधिक समय तक सहन नहीं कर सकता।'

ईर्ष्यालु व्यक्ति ने एक दिन अवसर देखा और एक भैंस चुरा ली। उसे मकान के नीचे भौंहरे में बांधकर चारा-पानी डाल दिया। भैंस के स्वामी को अप्रत्याशित रूप से भैंस के गायब होने की सूचना मिली। उसने आसपास खोज कराई, पर पता नहीं लगा। पड़ोसी से इस संबंध में पूछा गया तो वह उत्तेजित होकर बोला—'भट्ठी में जले, आग लगे उसकी भैंस को, जो मुझ पर झूठा इल्जाम लगाता है।'

कुछ व्यक्ति पड़ोसी के प्रति संदिग्ध थे, पर भैंस को बिना देखे वे उसे चुनौती कैसे दें? खोजी लोगों को बुलाया गया। खोज पड़ोसी के घर तक जाते

थे, पर भीतर नहीं थे। भीतर के खोज वह पहले से ही मिटा चुका था। बहुत खोजने पर भी भैंस नहीं मिली तो मामला पंचों के पास गया। पंच घटनास्थल पर पहुंचे। उन्होंने सारी स्थिति की जानकारी की और 'धीज' कराने का फैसला दिया। 'धीज' का मतलब है सत्यता का परीक्षण। इस परीक्षण में पंचों ने लोहे के गोले गरम कर संदिग्ध व्यक्ति के हाथों में देने का निश्चय किया। संदेह पड़ोस में रहने वाले उस व्यक्ति पर था। वह व्यक्ति इसके लिए तैयार हो गया।

जब उसे बुलाया गया तो वह हाथ में तवा लेकर आया। पंचों ने कहा—'यदि तुमने भैंस नहीं चुराई है तो तवा दूर रख दो और ये गोले हाथों में लो।' यह सुनकर वह बोला—'आप तो सच्चे हैं, फिर यह संडासी का व्यवधान क्यों? आपकी संडासी और मेरा तवा। आपके हाथ तो मेरे भी हाथ।' इस बात पर पंच मौन हो गए। धीज नहीं हुआ।

अपराह्न में बंटे (रंधा हुआ गवार) के समय भैंस बोलने लगी। लोगों ने भैंस की आवाज पहचान ली। वे घर में घुसे और भौंहरे में बंधी हुई भैंस को निकाल लाए। ईर्ष्यालु व्यक्ति का षड्यंत्र विफल हो गया। उसे अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी।

६०. नंदू, जुगल आदि का परिवार। नंदू और जुगल दोनों भाई थे। इनमें जुगल के यह संकल्प था कि वह प्रतिवर्ष आचार्यवर के दर्शन करेगा। एक वर्ष पूरा होने की अवधि में दर्शन न कर पाए तो जितने दिन दर्शन न हो, चार आहार का त्याग। कई बार उसके दर्शन वर्ष की संपन्नता पर ही होते थे। उस समय वह उपवास या बेले की तपस्या में होता। जुगल ने यह संकल्प जीवनभर निभाया।

६१. सतरंगी और नवरंगी सामान्यतः तपस्या का सामूहिक प्रयोग है। सतरंगी में तपस्या करने वाले उनपचास व्यक्ति होते हैं। प्रथम दिन सात व्यक्ति सात-सात दिन का उपवास शुरू करते हैं। दूसरे दिन सात व्यक्ति छह-छह दिन का, तीसरे दिन पांच-पांच दिन का, चौथे दिन चार-चार दिन का, पांचवे दिन तीन-तीन दिन का, छठे दिन दो-दो दिन का और सातवें दिन एक-एक दिन का उपवास करते हैं। यह समग्र तप सतरंगी तप कहलाता है।

नवरंगी में तपस्या करने वाले इक्यासी व्यक्ति होते हैं। उक्त क्रम से नौ-नौ व्यक्ति क्रमशः नौ से लेकर एक उपवास तक की तपस्या का क्रम पूरे नौ दिनों तक चलाते हैं।

इस सामूहिक प्रयोग को कोई व्यक्ति अकेला ही करना चाहे तो उनपचास और इक्यासी व्यक्तियों के बीच होने वाली तपस्या उस एक व्यक्ति को ही करनी

होती है।

६२. कौरवों और पाण्डवों के मध्य हुए घमासान युद्ध महाभारत की समाप्ति के बाद पाण्डवों का मन ग्लानि से भर गया। अपने ही स्वजनों को अपने ही शस्त्रास्त्रों से प्रतिहत करने के बाद जब वे युद्धभूमि से लौटे तो उनका अंतःकरण विचलित हो गया। युद्ध में संचित पाप का शोधन करने के लिए उन्होंने तीर्थस्नान करने का निर्णय लिया। अपने निर्णय पर श्रीकृष्ण की सहमति पाकर वे उसकी तैयारी में लग गए। यात्रा से पूर्व जब वे श्रीकृष्ण से विदा लेने गए तो वे बोले—'तुम तीर्थयात्रा पर जा रहे हो। विशेष तीर्थों पर तुम जलस्नान भी करोगे। क्या मेरी इस तुम्बी को भी स्नान करा लाओगे?'

'क्यों नहीं, हम एक बार करेंगे तो इसे तीन बार कराएंगे।' पाण्डवों ने पुलकित होकर उत्तर दिया। वे तुम्बी को साथ लेकर गए और महीनों तक तीर्थयात्रा करते रहे। जहां-जहां तीर्थभूत नदियों में उन्होंने स्नान किया, वे तुम्बी को तीन-तीन बार स्नान कराना नहीं भूले।

तीर्थयात्रा पूरी कर पाण्डव श्रीकृष्ण के पास पहुंचे। कृष्णजी ने पूछा—'क्यों भाई! स्नान कर आए?' पाण्डवों की सविनय स्वीकृति पाकर वे बोले—'मेरी तुम्बी का क्या हाल है?' पाण्डवों ने तुम्बी श्रीकृष्ण को सौंपते हुए कहा—'यह लीजिए आपकी तुम्बी।' श्रीकृष्ण ने तुम्बी का एक छोटा-सा टुकड़ा तोड़कर जीभ पर रखा और कड़ुवाए मुंह की भंगिमा प्रदर्शित करते हुए बोले—'लगता है कि तुम मेरी तुम्बी को स्नान कराना भूल गए। अन्यथा इतने तीर्थों का अवगाहन करके भी यह मीठी क्यों नहीं हुई?' पाण्डव कुछ मुस्कुराए और बोले—'जनार्दन! आप भी आज कैसी बात कर रहे हैं? यह कड़वी तुम्बी जलस्नान से मीठी कैसे हो सकती है?'

'फिर तुम्हारी आत्मा जलस्नान से पवित्र कैसे हो सकती है?' श्रीकृष्ण के इस प्रतिप्रश्न ने पाण्डवों को गंभीर बना दिया। वे अपनी गंभीरता को तोड़कर बोले—'यदि तीर्थों का जल पवित्र नहीं होता है और उसमें स्नान करने से पापों का शोधन नहीं होता है तो आपने हमको तीर्थयात्रा के लिए जाने से मना क्यों नहीं किया?' श्रीकृष्ण का उत्तर था—'उस समय तुम्हारा मानस इतना विक्षिप्त था कि मैं कुछ भी कहता, वह तुम्हारी समझ में नहीं आता।'

'फिर हमारी शुद्धि कैसे होगी?' पाण्डवों द्वारा किए गए इस प्रतिवेदन पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा, सत्यावहा शीलतटा दयोर्मी।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र! न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा।।

आत्मा नदी है, संयम जल है, सत्य उसका प्रवाह है, सदाचार उसके तट हैं और करुणा उस नदी में मचलती लहरें हैं। पाण्डुपुत्र! तुम वहां निमज्जन करो। तुम्हारे लिए यही श्रेय है। क्योंकि जल से अंतरात्मा का शोधन नहीं होता।

६३. भागवत स्कंध १०, अध्याय ८४, श्लोक ६३

यस्यात्मबुद्धिःकुणपे त्रिधातुके, स्वधीःकलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित्, जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः।।

६४. चर्पट मंजरी श्लोक १४, १५

- कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः, का मे जननी को मे तातः।
  इति परिभावय सर्वमसारं, सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्।।
- का ते कान्ता कस्ते पुत्रः, संसारोऽयमतीवविचित्रः।
  कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय मनसि भ्रातः!

६५. भागवत के श्लोक पर श्रीधरी टीका—

अतः साधून् विहायान्यत्रात्मादिबुद्ध्या सज्जमानोऽतिमन्द इत्याह—यस्येति आत्मबुद्धिरहमिति बुद्धिःत्रयो धातवो वात-पित्त-श्लेष्माणः प्रकृतयो यस्य तस्मिन् कुणपे शरीरे, स्त्रीपुत्रादिषु स्वधीः स्वीया इति बुद्धिः, भौमे भूमिविकारे इज्यधीर्देवताबुद्धिः, यत् यस्य सलिले तीर्थबुद्धिस्तीर्थमिति बुद्धिः, अभिज्ञेषु तत्त्ववित्सु यस्य ता बुद्धयो न सन्ति स एव गोष्वपि खरो दारुणोऽत्यविवेकी यद्वा गवां तृणादिभारवाहः खरो गर्दभ इति।

६६. वृक्ष पर एक हंस परिवार रहता था। एक वृद्ध हंस के नेतृत्व में युवक और बाल हंस सुखपूर्वक जी रहे थे। वृक्ष के मूल में एक बेल अंकुरित हुई और कालांतर में वह वृक्ष के ऊपर चढ़ने लगी। वह बेल जब तने को पारकर शाखाओं-प्रशाखाओं पर छाने लगी तो वृद्ध हंस ने सुझाव दिया—इस बेल को उखाड़ देना चाहिए। दूसरे हंसों ने उपेक्षा कर दी। वृद्ध हंस ने उनको बार-बार बेल उखाड़ने की बात कही तो वे उत्तेजित होकर बोले—'आपकी समझ कितनी अधूरी है? इस बेल से हमें क्या हानि होगी? यह तो हमें अच्छा संरक्षण दे सकती है। धूप, तूफान, सर्दी और वर्षा सब हमें तंग करते हैं, अब हम निश्चिंत होकर रह सकेंगे।' बेल ने चारों ओर से वृक्ष को घेर लिया। एक ओर छोटा-सा रास्ता रहा, जो पक्षियों के आने-जाने से आवृत नहीं हो सका।

एक दिन एक बहेलिया उधर से गुजरा। अनेक हंसों को एक सीमित और

आच्छन्न परिधि में देखकर वह खुश हुआ। गमनागमन के छोटे-से मार्ग पर जाल बिछा देने मात्र से सारे हंस एक साथ उसे उपलब्ध हो सकते थे। उसने वैसा ही किया। अब सब हंस घबराए और वृद्ध हंस की बात न मानने के कारण पश्चात्ताप करने लगे।

उनकी कातर आंखों में मार्गदर्शन की याचना थी। वृद्ध हंस द्रवित होकर बोला—'मैंने तुमको पहले ही कह दिया था कि इस बेल को जड़-मूल से उखाड़ दो। तुम लोग इस विषय में लापरवाह रहे। थोड़ी-सी लापरवाही से यह काम बढ़ गया। अब तो एक ही उपाय है कि तुम लोग श्वास रोककर पड़े रहो और जब मैं संकेत करूं उड़ जाना।'

वृक्ष की छाया में विश्राम करने के बाद बहेलिये ने अपना जाल संभाला। जाल में एक भी हंस नहीं था, किंतु वे सब मृत-से होकर शाखाओं पर लटक रहे थे। उस समय हंसों को मारना निषिद्ध था। बहेलिए ने सोचा—यदि कोई शिकायत कर देगा तो मारा जाऊंगा। उसने तत्काल अपना जाल समेटा। जाल सिमटते ही वृद्ध हंस ने संकेत किया। सब हंस एक साथ उड़ गए।

६७. आचार्य भिक्षुकृत बारह व्रत चोपई का गाथांश—

साधु बिना सगला पोखीजै, पनरमो असंयति-पोष कहीजै।८।१५

बारह व्रत चोपई की पूरी गाथा।

साधु बिना सगला पोखीजै, पनरमो असंयति-पोष कहीजै।
रोजगार लहि त्यां ऊपर रेवै, खाणो-पीणो असंयति नै देवै।।८।१५

६८. भगवान महावीर के संसारपक्षीय जामाता जमालि भगवान के पास दीक्षित हुए। कुछ समय बाद वे भगवान से अलग विहार करने लगे। एक दिन वे अस्वस्थ हो गये। उन्होंने शिष्यों को बिछौना तैयार करने के लिए निर्देश दिया। शिष्य बिछौना बिछाने लगे। जमालि के लिए एक क्षण भी बैठे रहना मुश्किल हो रहा था। उन्होंने बार-बार बिछौने के लिए पूछा। शिष्य अपना काम कर रहे थे। पर उसमें जो समय लग रहा था, उससे जमालि के विचारों में उथल-पुथल शुरू हो गयी।

जमालि ने सोचा—भगवान कहते हैं—'कडेमाणे कडे' (क्रियमाण कृत)—जिस काम को करना शुरू कर दिया, वह हो गया। कितनी देर से मेरा बिछौना किया जा रहा है, किंतु अब तक पूर्ण नहीं हुआ है। इस स्थिति में भगवान महावीर की प्ररूपणा सही कैसे हो सकती है? 'कडेमाणे अकडे'—क्रियमाण जब तक पूरा नहीं होता है तब तक वह अकृत ही रहता है।

जमालि को समझाने का प्रयत्न किया गया। बहुत समझाने पर भी वे इस बात को ग्रहण नहीं कर सके कि क्रियमाण कार्य में जितना कुछ निष्पन्न हो रहा है, वह कृत ही है। सिद्धांत-भेद के कारण वे भगवान महावीर के संघ से मुक्त होकर स्वतंत्र विहार करने लगे।

जो तथ्य प्रत्यक्ष हो, उसे नकार देना एक प्रकार से जड़ता नहीं तो क्या है? जो पाठ सामने हो उसे अस्वीकार करना भी इसी कोटि में आ जाता है।

६४. मुनि नथमलजी (बागोर) बचपन में ही संसार से विरक्त हो गए। मुनिजीवन जीने का उनका संकल्प परिवार वालों के सामने आया तो उन्होंने सहजता से आज्ञा नहीं दी। बालक को डराने-धमकाने के साथ मारपीट की गई। कमरे में बंद कर रखा गया। और भी अनेक प्रकार की कठिनाइयां उपस्थित की गईं। इतनी कठिनाइयों के बावजूद बालक की सहनशीलता और दृढ़ता उल्लेखनीय रही। छोटी अवस्था और मन को विचलित करने वाली परिस्थितियों में विचारों की स्थिरता अपने आप में महत्त्वपूर्ण घटना है।

७०. वि. सं. १९७४, ७५ में राजस्थान प्लेग की बीमारी से आक्रांत हो गया। शहरों के लोग शहर छोड़ देहातों में जाने लगे। गांव के गांव खाली होने लगे। लाडनूं में वृद्ध साध्वियों का स्थिरवास था। वहां से कई परिवार बाहर चले गए। गणेशदासजी चिंडालिया आदि कुछ श्रावकों ने साध्वियों के पास पहुंच कर उनकी मनःस्थिति के संबंध में पूछताछ की। साध्वियों ने कहा—'हमारी इच्छा तो यहीं रहने की है। फिर श्रावक लोग जैसा उचित समझें, हम वैसा करने के लिए तैयार हैं। श्रावक बोले—'महासतीजी! आप जब तक यहां हैं, हम शहर नहीं छोड़ेंगे।' उस भयंकर उपद्रव में जो श्रावक लाडनूं रहे, उनकी सूची इस प्रकार है—

१. राजरूपजी खटेड़	२. तनसुखदासजी खटेड़
३. रतनलालजी गोलछा	४. खूबचन्दजी गोलछा
५. नेमीचन्दजी दूगड़	६. धरमचन्दजी गोलछा
७. लच्छीरामजी खटेड़	८. हरकचन्दजी खटेड़
९. तखतमलजी खटेड़	१०. भैंरूदानजी खटेड़
११. हजारीमलजी चोरड़िया	१२. नथमलजी बैंगानी
१३. मोहनलालजी गुनेचा	१४. जुवारमलजी बैद
१५. रामलालजी गुनेचा	१६. महालचन्दजी बैद
१७. चतुरभुजजी बैद	१८. जेठमलजी बैद
१९. रामलालजी बोथरा	२०. गणेशदासजी चिंडालिया

२१. बालचन्दजी बैद (जीली)　　२२. धनराजजी बरमेचा
२३. छोगमलजी बोथरा　　२४. तोलारामजी दूगड़
२५. महालचन्दजी कोठारी　　२६. डायमलजी चोरड़िया
२७. बुद्धमलजी दूगड़　　२८. दुलीचन्दजी दूगड़

७१. साध्वी निजरकुमारीजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठा—

पाल्यो संयम भार, निरतिचार निर्मल सदा।
श्रमणी निजरकुंवार, बेटी धनजी बैद री।।

७२. कुछ प्राणियों में परस्पर जन्मजात वैर होता है। संस्कृत वैयाकरणों ने ऐसे वैर को नित्य वैर के रूप में स्वीकार किया है। जन्मजात शत्रुता रखने वाले प्राणियों में कभी एकत्व की संभावना भी नहीं रहती। किंतु तीर्थंकरों के समवसरण में उनका शत्रुभाव सौहार्द में परिणत हो जाता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर वैयाकरणों ने एक सूत्र दिया—'नित्यवैरिणाम्'। नित्य वैरियों में एकत्व स्थापना के उदाहरण हैं—अहिनकुलम्, अश्वमहिषम्, मार्जारमूषकम् आदि।

७३. देवा देवीं नरा नारीं, शबराश्चापि शाबरीम्।
तिर्यञ्चोऽपीह तैरश्चीं, मेनिरे भगवद्गिरः।।

७४. राजगृह नगर में लोहखुरो नामक चोर का बड़ा आतंक था। उसका पुत्र रौहिणेय भी चोरी करने में बहुत दक्ष था। मृत्यु का समय निकट जानकर पिता ने पुत्र को संबोधित करके कहा—'बेटा! अंतिम शिक्षा दे रहा हूं, उसका जीवनभर पालन करना।' रौहिणेय पिता का निर्देश जानने के लिए उत्सुक था। पिता ने कहा—'पुत्र! राजगृह में महावीर नाम के एक श्रमण हैं, तुम भूल-चूककर उनके संपर्क में मत जाना। वे हमारे शत्रु हैं। उनके पास जाकर हम अपने कुलकर्म (चोरी) से दूर हो जाते हैं। यदि कभी संयोगवश साक्षात्कार हो जाए तो ध्यान रखना, उनकी वाणी तुम्हारे कान में न पड़े।' रौहिणेय ने अपनी ओर से पिता को आश्वस्त किया। लोहखुरो का शरीरांत हो गया।

रौहिणेय के पास गगनगामिनी पादुकाएं और रूपपरावर्तिनी विद्या थी। इनके कारण उसका उत्पात और अधिक बढ़ गया। एक दिन वह दिन में चोरी करने के लिए घुसा। लोग सजग हो गए। उनका कोलाहल सुन रौहिणेय दौड़ा, पर जल्दी में अपनी पादुकाएं वहीं भूल गया। वह जिस मार्ग से दौड़ा, उसी के पास भगवान महावीर का समवसरण था। भगवान उस समय प्रवचन कर रहे थे। रौहिणेय को पता चला। वह अपना मार्ग बदले, इतना अवकाश नहीं था। उसने दोनों कानों

में अंगुलियां डालीं और तेज गति से दौड़ा। सहसा उसके पांव में कांटा लग गया। अब कांटा न निकाले तो राजपुरुषों की पकड़ का भय और कांटा निकाले तो महावीर की वाणी का भय। राजपुरुषों से बचने के लिए उसने कानों से अंगुलियां हटाकर कांटा निकाला। भगवान की वाणी कानों में पड़ी। भगवान उस समय देवता के संबंध में चर्चा कर रहे थे—'देवता के नयन अनिमिष होते हैं, मन में इच्छा करते ही उनका कार्य निष्पन्न हो जाता है, उनके गले का पुष्पहार म्लान नहीं होता तथा उनके पैर भूमि से चार अंगुल ऊपर रहते हैं।'

कांटा निकलते ही रोहिणेय कानों में अंगुलियां डालकर भाग गया। उसने भगवान के उक्त वचन अनमने भाव से सुने। अब वह उन्हें विस्मृत करना चाहता था। विस्मृति का जितना प्रयत्न, उतनी ही धारणा दृढ़ होती गई। वह भगवान की वाणी को भुला नहीं सका।

राजगृह में रौहिणेय का आतंक उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। अभयकुमार ने अपने बुद्धिबल से उसे पकड़वा लिया, पर उसने अपने आपको शालिग्राम का व्यापारी बताकर बचाव कर लिया। अभयकुमार उसके प्रति संदिग्ध था। उसने उसके साथ मैत्री-संबंध स्थापित किया और अपने घर भोजन का निमंत्रण दिया। भोजन में कुछ मादक पदार्थ खिलाकर उसे मूर्च्छित कर दिया गया। स्वर्गीय वैभव से युक्त एक कक्ष में कुछ सुंदरियों ने अप्सराओं की भूमिका में उसके सामने प्रश्न किया—'आपने पिछले जन्म में क्या कर्म किया, जिससे आपको यह स्वर्गीय ऐश्वर्य उपलब्ध हुआ है?' रौहिणेय स्तब्ध था। वह कुछ कहे, उससे पहले ही उसे भगवान महावीर की वाणी याद आ गई—देवता अनिमिष नयन होते हैं, उनके पैर जमीन पर नहीं टिकते...। रौहिणेय अभयकुमार की कूटनीति को समझ गया। वह स्वयं को मनुष्यलोक का जीवित मानव बताकर वहां से मुक्त हुआ।

इस घटना के बाद रौहिणेय का मन बदल गया। उसने सोचा—मैंने बिना इच्छा भगवान महावीर के कुछ वाक्य सुने, उनसे मुझे जीवन मिल गया। यदि मैं भावपूर्वक भगवान की वाणी सुनकर उनका अनुगमन करूं तो न जाने मेरा कितना हित सध जाए। वह भगवान के समवसरण में गया। भगवान का प्रवचन सुन उसे आत्मग्लानि हुई। उसने चोरी छोड़ने के साथ ही अपना समग्र जीवन भगवान को समर्पित कर दिया।

७५. आचार्य भिक्षु ने अपने भावी उत्तराधिकारी मुनि भारीमालजी को संबोधित करके कहा—'भारीमाल! तुम्हारी ईर्या समिति में कोई व्यक्ति दोष निकाले तो तुम्हें प्रायश्चित्तस्वरूप तीन दिन का उपवास करना है।' मुनि भारीमालजी ने

गुरुदेव के इस निर्देश को विनयपूर्वक स्वीकार करते हुए जिज्ञासा की—'प्रभो! मेरी गलती पर कोई कहेगा तो मुझे तेला करना है। यदि कोई द्वेषवश भूल न होने पर भी गलती निकाले तो?'

आचार्य भिक्षु ने समाधान के स्वरों में कहा—'भारीमाल! तेला तो तुझे करना ही है। गलती पर तेला हो उसे वर्तमान दोष-विशोधन के लिए समझना और बिना गलती तेला हो उसे विशेष निर्जरा की दृष्टि से स्वीकार करना।' मुनि भारीमालजी के चेहरे की प्रसन्नता उनके समताभाव को द्विगुणित कर रही थी। कहा जाता है कि उन्हें अपने जीवन में केवल एक तेले की तपस्या करनी पड़ी।

७६. एक कल्पनाशील पथिक अशुभ कल्पनाओं के सृजन और उनकी अभिव्यक्ति में बहुत रस लेता था। जब तक वह अपनी सोची हुई बात कह नहीं देता, उसे संतोष नहीं होता। एक दिन वह किसी गांव में एक बुढ़िया के घर ठहरा। बुढ़िया राहगीरों को भोजन बनाकर खिलाती थी। बुढ़िया को चावल-मूंग की खिचड़ी बनाने का निर्देश देकर वह एक ओर बैठ गया। बुढ़िया चावल-मूंग भिगोकर दूसरे कार्य में व्यस्त हो गई।

इसी बीच बुढ़िया ने देखा कि राहगीर बैठा-बैठा सिर हिला रहा है। बुढ़िया ने पूछा—'क्या कर रहे हो?' वह बोला—ऐसे ही कोई बात मन में आ गई। 'क्या बात मन में आई है?' बुढ़िया द्वारा पुनः पूछे जाने पर वह बोला—'यह भैंस किसकी है?' बूढ़िया ने उत्तर दिया—'मेरी है।' राहगीर बोला—'यह इतनी मोटी भैंस मर गई तो बाहर कैसे निकलेगी? तुम्हारे घर का दरवाजा तो इतना छोटा है।' यह सुनते ही बुढ़िया उबल पड़ी—'अभी निकल घर से, आया है मेरी भैंस को मारने। जबान वश में नहीं रहती है।' राहगीर ने माफी मांगकर जैसे-तैसे बुढ़िया को शान्त किया।

थोड़ी देर हुई, राहगीर फिर सिर हिलाने लगा। बुढ़िया ने पूछा—'अब फिर सिर क्यों हिला रहा है?' राहगीर बोला—'यह स्त्री कौन है?' 'यह मेरी पुत्रवधू है।' बुढ़िया के इस उत्तर पर उसने प्रतिप्रश्न किया—'तुम्हारा पुत्र कहां है?' 'वह व्यापार के लिए परदेश गया है।' बुढ़िया के ऐसा कहने पर वह बोला—'मांजी! तुमने इसके पति को परदेश भेजकर अच्छा नहीं किया। यदि वह वहीं पर मत्यु को प्राप्त हो गया तो इसकी क्या हालत होगी? इसने हाथ में जो चूड़ा पहन रखा है, यह बहुत छोटा है। इसे तो फिर फोड़कर ही निकालना पड़ेगा।' राहगीर के इस कथन ने बुढ़िया को आपे से बाहर कर दिया। वह उसे कोसने लगी और बिना भोजन किए ही घर से निकल जाने के लिए कहा।

राहगीर ने अपने पैसे वापस मांगे तो बुढ़िया ने कहा—'ये अपने मूंग-चावल ले जा।' उसके पास कोई बर्तन तो था नहीं इसलिए अपने अंगोछे में मूंग और चावल डलवा लिए। चावल-मूंग पानी में भिगोए हुए थे, अतः अंगोछे से पानी टपकने लगा। शहर से गुजरते समय लोगों ने पूछा—'राहगीर! तुम्हारे अंगोछे से क्या झर रहा है?' राहगीर बोला—'महाशय! यह मेरी जबान झर रही है। यदि मैं अपनी जीभ से बुरी जबान नहीं बोलता तो मेरी यह हालत नहीं होती।'

७७. 'भ्रमविध्वंसन' तेरापंथ संघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य की कृति है। इसमें तेरापंथ संघ द्वारा मान्य सैद्धान्तिक तथ्यों को आगमों का आधार देकर यौक्तिक ढंग से प्रमाणित किया गया है। इसका आधार स्वामीजी की ३०६ बोलों की हुंडी है। वर्तमान में उपलब्ध पुस्तक ईशरचन्दजी चौपड़ा (गंगाशहर) द्वारा मुद्रित करवाई गई है। इससे पहले एक बार 'भ्रमविध्वंसन' का प्रकाशन हो चुका था, पर वह विधिवत नहीं हुआ।

कच्छ (वेला) के श्रावक मूलचन्दजी कोलंबी तपस्वी और आस्थाशील श्रावक थे। एक बार उन्होंने संतों के पास 'भ्रमविध्वंसन' की प्रति देखी। उन्हें ग्रंथ बहुत अच्छा लगा। उनके मन में ग्रंथ को प्रकाशित करने की भावना जगी। उन्होंने संतों से पूछे बिना ही उनके पूठे से वह प्रति निकाल ली और किसी से परामर्श किए बिना ही ८ अक्टूबर १८६७ में उसको छपवा लिया।

'भ्रमविध्वंसन' छपकर आया तो उसका स्वरूप देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। जो प्रति मुद्रण के लिए गई थी, वह रफ कापी थी। कहीं उसकी पंक्तियां कटी हुई थीं, कहीं आगे-पीछे लिखी हुई थीं, कहीं छूटे हुए पाठ बाहर हासिए में निकाले हुए थे। मुद्रण करनेवाले ने कुछ छोड़ा, कुछ लिखा और मूल ग्रंथ को एकदम विरूप बना दिया।

वि. सं. १९७९ बीकानेर चातुर्मास में आचार्यश्री कालूगणी के निर्देश से कुछ सन्तों ने पंडित रघुनंदनजी के साथ बैठकर 'भ्रमविध्वंसन' का संपादन किया। इसका संपादन जितना श्रमसाध्य था, ग्रंथ की उपयोगिता उतनी ही बढ़ गई।

७८. सेठ व्यवसाय के लिए देशांतर गया। घर में सेठानी अकेली थी। बाल-बच्चे थे नहीं। मन बहलाने के लिए वह पास-पड़ोस में जाती और समय बिताती। एक-एक कर कई वर्ष बीत गए। सेठ लौट कर नहीं आया। सेठानी उसकी याद में अधीर हो उठी। उसने सेठ को जल्दी लौट आने के लिए कहलवाया। सेठ के संवादवाहक ने आकर बताया कि अभी सेठजी काम में बहुत उलझे हुए हैं, इसलिए आ नहीं सकेंगे। सेठानी का मन आहत हो गया, पर वह कर भी

क्या सकती थी?

गांव के बाहर एक मंदिर था। वहां एक बाबाजी रहते थे। गांव में बाबाजी की अच्छी प्रतिष्ठा थी। मंदिर में निरंतर सत्संग होता था। गांव की काफी महिलाएं सत्संग का लाभ उठाती थीं। सेठानी भी सत्संग में जाने लगी। वह सत्संग में बैठती, पर उसका मन वहां जमता नहीं था। उसकी उद्विग्नता बढ़ती रही। एक दिन संध्या के समय वह अकेली घर से निकली और मंदिर में पहुंच गई। उसने बाबा से मांगकर पानी लिया और वहीं जमकर बैठ गई। कुछ देर इधर-उधर की बातें कर वह बोली—'बाबा! आज रात को मैं यहीं सोऊंगी।' बाबा सहमे। उन्होंने अनुभव किया कि सेठानी की नीयत अच्छी नहीं है। वे शांत भाव से बोले—'हमारे मंदिर के परिसर में कोई अकेली औरत नहीं रह सकती। फिर आज तो दूसरे बाबा भी यहां नहीं हैं। तुम भले घर की औरत हो, चुपचाप यहां से चली जाओ। सेठानी ने लाज-शरम छोड़कर अपने मन की बात कह दी। बाबाजी का मन ग्लानि से भर गया। उन्होंने सेठानी को अविलम्ब मंदिर से बाहर जाने का निर्देश देते हुए कहा—'तुम जाती हो या नहीं? मैं किसी और को बुलाऊं?'

सेठानी निरुपाय थी। वह दुःखी मन से घर लौट गई। अब उसके मन में दूसरा विकल्प उठा। उसने सोचा—बाबा बहुत बुरा है। यदि यह मेरी बात फैला देगा तो कहीं की न रहूंगी। कितना अच्छा हो, इनका काम तमाम कर दूं। बहुत सोच-समझकर उसने मालपुए बनाए और बाबाजी के प्रति मन में जनमी हुई आंशका के कारण उनमें जहर मिला दिया। उसने मालपुओं को एक आदमी के साथ बाबाजी के पास पहुंचा दिया। बाबाजी तब तक अपना भोजन निपटा चुके थे। उस आदमी ने सेठानी के भेजे हुए मालपुए बाबाजी के आगे रख दिए। बाबाजी ने कहा—'मैं भोजन कर चुका हूं। अब मुझे जरूरत नहीं है।' वह आदमी बोला—'सेठानीजी ने कहा है कि यह मेरी भेंट बाबाजी को देकर ही आना है।' बाबाजी अनमने होकर बोले—'बड़ी विचित्र औरत है। कभी कुछ कहती है और कभी कुछ करती है।' उन्होंने नाराजी प्रकट करते हुए कहा—'वापस नहीं ले जाना है तो रख दो किसी अलमारी में।' आगन्तुक मालपुए वहां रखकर चला गया।

रात को दस बजे के बाद एक राहगीर मंदिर में आया और बोला—'बाबा! गांव मे जाना है, पर अब तो देरी हो जाने के कारण दरवाजे बन्द हो गए हैं। रातभर यहां विश्राम कर सकता हूं क्या?' बाबा ने कहा—'यहां बहुत स्थान है, आराम से ठहरो।' आगन्तुक बोला—'भूख बहुत लगी है, कुछ खाने को हो तो बताओ। बाबा ने कहा—मेरे पास तो कुछ है नहीं। तुम लोगों के घरों से ही आया

हुआ कुछ पड़ा है। उस अलमारी में देख लो।' आगन्तुक ने अलमारी खोली और मालपुओं से भरा पात्र देख अपने भाग्य की सराहना की। उसने भरपेट मालपुए खाए और ठंडा पानी पिया। खाने के तुरंत बाद उसे ऊंघ आने लगी। मंदिर के बरामदे में खटिया बिछाकर वह सोया तो सोया ही रह गया।

उधर सेठानी सुबह होते ही बाबा के हालात जानने के लिए आई। उसने देखा—बाबा मरा नहीं है, वह तो घूम-फिर रहा है। उसका कलेजा बैठ गया। कहीं बाबा को मालपुओं में जहर होने का आभास तो नहीं हो गया? आशंकित मन से वह पूछ बैठी—'बाबा! आपने हमारे मालपुए नहीं खाए? कितनी भावना से उन्हें तैयार किया था।' बाबाजी बोले—'पुओं का बहुत अच्छा उपयोग हो गया। कल रात कोई भूखा यात्री आया था। तुम्हारे पुए उसे खिला दिए।' सेठानी अधीर होकर बोली—'कौन यात्री था वह?' बाबा ने उत्तर दिया -'मैं तो उसे जानता नहीं। बहुत थका हुआ होगा? उधर देखो। अब तक भी वह सोकर नहीं उठा है।' सेंठानी के मन का पाप उसे कचोटने लगा। वह सीधे उस यात्री के पास गई। उसके मुंह का कपड़ा हटाकर देखा—वह तो चिरनिद्रा की गोद में सो चुका था। वह और कोई नहीं, स्वयं उसका पति ही था। सेठानी के मुंह से अनायास ही चीख निकल पड़ी। उसे अपनी करणी का फल मिल चुका था। बाबाजी को जब इस बात की जानकारी हुई तो उन्होंने समूची घटना को थोड़े से शब्दों में बांधकर कहा—

'पूआ बणाया चीणी घाली, संतां नै जीमावण चाली।
किया अस्त्री खाया भरतार, खाड खणै तो कूवो त्यार।।'

जो दूसरे का बुरा करना चाहता है, उसका अपना बुरा तो पहले ही हो जाता है।

७९. मुनिश्री अमीचंदजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित दोहे—

१. अजब अमीरी में रह्यो, अमीचंद गृहवास।
उरग कंचुकी ज्यूं तज्यो, विरगत हृदय विलास।।

२. बोल-थोकड़ां में विबुध, विनयी शासन-दास।
सुधी सुघड़ लेखक बण्यो, लेखकला अभ्यास।।

८०. साध्वीश्री छगनांजी के संबंध में आचार्यश्री द्वारा कथित पद्य—

१. छगनां सति सिंघाड़पती, देवगढ़ चउमास।
तनु कारण जाणी कियो, अनशन अति उल्लास।।

२. अंग अरोग हुयो तभी, भारी बण्यो विचार।।
दिल दृढ़ता स्यूं सीझियो, दिन सेंतीस निकार।।

३. भारमल्ल शासण पछै, इसड़ो अनशन अन्य।
श्रमणीगण में इण कियो, गणिवर-पुण्य अनन्य।।

८१. जंवरीमलजी दूगड़ के कथन का संवादी लोकप्रचलित पद्य—
हिड़क्यो पड़ियो खाड में, काढ़ै जिणनै खाय।
मूरख नै समझावतां, ज्ञान गांठ रो जाय।।

८२. वीतभयपुर पाटण का राजा उदाई भगवान महावीर का भक्त था। एक दिन उसके मन में चाह जगी—कितना अच्छा हो भगवान महावीर स्वयं यहां पधारें और मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करें। भावना का वेग इतना प्रबल था कि वह भगवान महावीर की संवेदना में प्रतिबिंबित हो गई। भगवान उस समय बिहार प्रदेश में समवसृत थे। कहां सिंधु-सौवीर और कहां बिहार। लगभग चौदह सौ मील की क्षेत्रीय दूरी को पाटने के लिए भगवान ने पाटण की ओर प्रस्थान किया।

लम्बी यात्रा, बीहड़ पथ और हजारों मुनियों का परिवार। मार्गगत कठिनाइयों से सैकड़ों मुनि काल-कवलित हो गए। किंतु भगवान महावीर रुके नहीं। एक भक्त की भावना सफल करने के लिए भगवान पाटण पहुंचे। अपने आराध्यदेव के दर्शन पाकर राजा उदाई की प्रसन्नता सीमा के बंधन को तोड़कर आगे निकल गयी।

भगवान महावीर ने वहां प्रवचन किया। राजा उदाई के मन पर उसकी इतनी तीव्र प्रतिक्रिया हुई कि वह संसार से विरक्त हो गया। राज्य को नरक का हेतु समझकर उसने अपने पुत्र केशीकुमार को उत्तराधिकार नहीं दिया। अभीचिकुमार उसका भानजा था। उसे राज्य सौंपकर राजा उदाई भगवान महावीर के पास प्रव्रजित हो गया।

८३. महाराजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना के साथ भगवान महावीर की उपासना में गया। वहां से लौटते समय महारानी के देखा—ठिठुरन भरी सर्दी में मुनि प्रसन्नचंद्र राजर्षि ध्यानस्थ खड़े हैं। ठंडी हवाएं तीर की भांति उनके चारों ओर बह रही हैं, फिर भी मुनि निष्कंप हैं।

उस दिन सदा की अपेक्षा सर्दी अधिक थी। महारानी मुनि की कठिन साधना का चिंतन करती हुई सो गई। जिस समय वह जगी, उसका एक हाथ रजाई से बाहर था। कमरा बन्द था, फिर भी हाथ अकड़ गया। उस समय अचानक ही उसके मुंह से बोल फूट पड़े—'हे भगवान! वह क्या करता होगा?'

राजा ने रानी के ये शब्द सुने और वह उसके चरित्र के प्रति संदिग्ध हो उठा। अपने संदेह की जांच-पड़ताल किए बिना ही उसने रानी को समाप्त करने

का निर्णय ले लिया। प्रातःकाल भगवान को वंदन करने जाते समय उसने मंत्री अभयकुमार को आज्ञा दी—'रानी चेलना का महल जला देना।' अभयकुमार ने विस्मित भाव से इस आदेश को सुना और अपने करणीय के बारे में सोचने लगा।

श्रेणिक भगवान के समवसरण में पहुंचा। भगवान को वंदन कर वह बैठा ही था कि उसके कानों ने भगवान के शब्द सुने—राजा चेटक की सातों पुत्रियां सतियां हैं। राजा को काटो तो खून नहीं। अपने आदेश की क्रियान्विति से होने वाले अनर्थ की कल्पना से वह कांप उठा। क्योंकि चेलना भी राजा चेटक की पुत्री थी। भगवान स्वयं जिसके सतीत्व का साक्ष्य देते हैं, उसके प्रति संदेह कैसा?

श्रेणिक उलटे पांव लौटा। मार्ग में अभयकुमार मिल गया। श्रेणिक ने आतुरता से पूछा—'अभय! कहां से आ रहे हो?' अभयकुमार पिता की आतुरता में अर्थ भरी दृष्टि से अवगाहन करता हुआ बोला—'आपके आदेश का पालन करके आ रहा हूं।' श्रेणिक अनुताप व्यक्त करते हुए बोला—'अनर्थ कर दिया, अब क्या होगा?'

अभयकुमार ने राजा की मानसिक स्थिति को संभालते हुए कहा—'पिताजी चिंता न करें, माताजी सुरक्षित हैं।' यह सुनकर श्रेणिक आश्वस्त हुआ। अभयकुमार जैसे पुत्र और मंत्री को पाकर उसने गौरव का अनुभव किया।

८४. एक वृद्ध ब्राह्मण प्रतिदिन सभा में जाता। राजा को आशीर्वाद देकर वह बोलता—'धर्मे जयः पापे क्षयः'। महीनों से यह क्रम चल रहा था, पर राजा ने कभी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। एक दिन राजा की दृष्टि ब्राह्मण पर पड़ी। उसे निकट बुलाकर राजा ने उससे बातचीत की। राजपुरोहित दूर बैठा देख रहा था। राजा मेरा पद छीनकर इसे न दे दे, इस संदेह ने राजपुरोहित को व्यथित कर दिया। वह ब्राह्मण से मिला और बोला—'महाराज से तुम्हारी क्या बातचीत हुई?' ब्राह्मण ने कहा—'मैं गरीब आदमी हूं। मैं कुछ जानता नहीं।' राजपुरोहित बोला—'देखो, राजा से बात करने का तरीका यह नहीं है। कहीं मुंह से थूक उछल गया तो मृत्यु दण्ड मिलेगा, इसलिए तुम अपने मुंह पर एक कपड़ा बांध कर आया करो।'

ब्राह्मण से निपटकर पुरोहित राजा के पास पहुंचा और बोला—महाराज! आप किससे बात करते हैं? वह जाति-बहिष्कृत है। ब्रह्मभोज से अलग है। शराब पीता है और न जाने क्या-क्या करता है। आपको अपने पद की गरिमा का ध्यान रखना चाहिए।'

राजा ने कहा—'मुझे तो ब्राह्मण शरीफ ही लगा। वह शराब पीता है, इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है?' पुरोहित बोला—'महाराज! आप ध्यान रखना। वह जब भी शराब पीकर आएगा, अपना मुंह बांधकर आएगा।'

दूसरे दिन राजा ने देखा—ब्राह्मण आज अपना मुंह बांधकर आया है। राजा को पुरोहित के कथन में सत्यता का आभास हुआ। उसने एक रुक्का लिखकर ब्राह्मण को दिया और कहा—'भंडारी के पास चले जाओ।'

ब्राह्मण खुश होकर चला। रास्ते में पुरोहित मिला। ब्राह्मण के खिले हुए चेहरे को देख पुरोहित ने पूछा—'आज तो बड़े खुश नजर आते हो। क्या मिल गया?' पुरोहित ने कहा—'यह सब आपकी कृपा है। आपने मुझे कल कला सिखाई और आज राजा ने रुक्का दे दिया।'

पुरोहित ने रुक्का ब्राह्मण के हाथ से छीन लिया। ब्राह्मण कुछ रुआंसा हुआ तो वह बोला—'मेरी कला का पुरस्कार मुझे ही मिलेगा। पांच-दस रुपये तुम्हें मिल जाएंगे, शेष सब कुछ मेरा है।' गरीब ब्राह्मण राजपुरोहित से मुकाबला कैसे कर सकता था। उसने वह रुक्का राजपुरोहित को पकड़ा दिया।

पुरोहित भंडारी के पास पहुंचा। भंडारी ने रुक्का लेकर पढ़ा। उसमें राजा ने लिखा था—

रुपया दीज्यो पांच सौ, मत दीज्यो सुल्लाख।
घर में आगो घालनै, काटी लीज्यो नाक।।

पत्र के अनुसार भंडारीजी ने पांच सौ रुपये गिनकर पुरोहित को दे दिए। पुरोहित जाने लगा तो वह बोला—'ठहरो, अभी अन्दर आओ।' 'क्यों?' पुरोहित द्वारा जिज्ञासा करने पर भंडारी ने कहा—'रुक्के में आदेश है, तुम्हारी नाक काटनी है।' अब पुरोहित घबराया और बोला—'यह रुक्का मेरा नहीं है।' उसने बहुत मिन्नतें कीं, पर भंडारी के पास राजा के हाथ का लिखा पत्र था। पांच सौ रुपये जिसे देने थे, उसी की नाक काटनी थी। उसने बलपूर्वक पुरोहित की नाक कटवा दी। पुरोहित अपने दुष्कृत्य से लज्जित हुआ और घर जाकर लेट गया।

दूसरे दिन ब्राह्मण राजा के समक्ष उपस्थित हुआ। राजा ने विस्मित भाव से पूछा—'कल तुम्हें रुक्का दिया था, आज फिर क्यों आए?' ब्राह्मण दीनता व्यक्त करता हुआ बोला—'वह तो पुरोहितजी ने ले लिया।' राजा का मन संदिग्ध हुआ। उसने हकीकत की जानकारी कर पूछा—'क्या तुम शराब पीते हो? क्या तुम ब्रह्मभोज से बहिष्कृत हो?' ऐसे प्रश्न सुनकर ब्राह्मण भी असमंजस में पड़ गया। उसने कहा—'राजन! शराब पीना तो दूर, मैं शराबी के साथ बैठकर भोजन भी नहीं

करता तथा ब्रह्मभोज में सदा सम्मिलित होता रहा हूं। आप मुझसे यह सब क्यों पूछ रहे हैं?'

राजा पुरोहित की नीचता से अवगत हुआ। उसने पुरोहित को बुलाया। वह आने की स्थिति में नहीं था, पर उसे आना पड़ा। राजा ने उसकी भर्त्सना कर उसे देशनिकाला दिया तथा उस गरीब ब्राह्मण को पुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित किया। ब्राह्मण 'धर्मे जयः और पापे क्षयः' के अपने सिद्धांत में गहरा आस्थाशील हो गया।

८५. वि. सं. १९८३ में थली के ओसवाल समाज में एक बहुत बड़ा सामाजिक संघर्ष खड़ा हो गया। संघर्ष का मूल कारण था कुछ व्यक्तियों का पारस्परिक वैमनस्य। किंतु उसे जोड़ा गया मुर्शिदाबाद के इन्द्रचन्दजी दूधोड़िया और इन्द्रचन्दजी नाहटा की विलायत-यात्रा से। उन लोगों ने वि. सं. १९४४ में विदेश-यात्रा की। इस यात्रा में खान-पान संबंधी पवित्रता आदि कुछ तथ्यों को संदिग्ध ठहराकर उन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया गया। वे लोग समाज के समक्ष क्षमायाचना करने तथा दण्ड लेने के लिए उद्यत थे, फिर भी कुछ व्यक्तियों की विभेद नीति ने ऐसा नहीं होने दिया।

कालान्तर में कुछ और व्यक्ति विदेश गए। वे शिक्षित भी थे और संपन्न भी। उन्होंने समाज को प्रभावित किया और ओसवाल समाज दो पक्षों में विभाजित हो गया। एक पक्ष मुर्शिदाबाद का और दूसरा मारवाड़ का। थली के जो ओसवाल विलायत जाने का विरोध करते थे, वे मुर्शिदाबाद के उस धड़े में सम्मिलित थे।

इस झगड़े को विस्तार मिला चूरू से। वहां के प्रसिद्ध परिवार कोठारी और सुराणा परस्पर वैमनस्य से ग्रसित थे। उन्हीं दिनों सुराणा परिवार के एक युवक का विवाह अजमेर के लोढ़ा परिवार में हुआ। वहां विजयसिंहजी दूधोड़िया (मुर्शिदाबाद) ने साधर्मिक भाइयों को भोज दिया। विजयसिंहजी विलायत जाने वाले व्यक्तियों में से थे, अतः कुछ बाराती भोजन में सम्मिलित हुए और कुछ नहीं हुए।

बारात वापस पहुंचे, इससे पहले ही थली प्रदेश में यह संवाद पहुंच गया। कोठारी परिवार को अवसर मिला और उन्होंने सुराणा परिवार के विरोध में एक वातावरण तैयार कर लिया। सुराणा परिवार को इस बात का पता चला तब उसने भी अपने पक्ष को प्रबल बनाने के लिए अभियान शुरू कर दिया। अब कोठारियों के पक्ष की 'श्रीसंघ' तथा सुराणा पक्ष की 'विलायती' नाम से पहचान होने लगी।

'श्रीसंघ' और 'विलायती' का संघर्ष इतना प्रबल हुआ कि पारिवारिक संबंध टूटने लगे, गंदे छापे निकलने लगे और एक दूसरे को अपमानित करने का प्रयास होने लगा। इस सामाजिक संघर्ष में धर्मसंघ को भी उलझाने का प्रयत्न हुआ। पर पूज्य गुरुदेव कालूगणी की दूरदर्शिता एवं तटस्थ नीति ने कोई अवांछनीय कार्य नहीं होने दिया।

उस सामाजिक झगड़े में तेरापंथ से द्वेष रखने वाले व्यक्तियों ने तेरापंथ के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए एक अभियान चलाया। इस अभियान में उन्होंने अन्य संप्रदाय के धर्माचार्य और मुनियों को आमंत्रित किया। आमंत्रण स्वीकृत हुआ। विविध आकांक्षाओं और संभावनाओं में उनका आगमन हुआ। दो साल तक काफी कशमकश का वातावरण रहा। आशा के अनुरूप कार्य न होने से उन्हें पुनः लौट जाना पड़ा।

इधर सामाजिक संघर्ष भी धीरे-धीरे मंद होने लगा। मुर्शिदाबाद के जाति-बहिष्कृत परिवारों को पुनः समाज में सम्मिलित कर लिया गया। चूरू की पारस्परिक कटुता भी क्षीण होने लगी। उस झगड़े और कटुता को समग्रता से समाप्त करने का श्रेय आचार्यश्री तुलसी को प्राप्त हुआ। वि. सं. १९९९ चूरू चातुर्मास में आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को आचार्यश्री की सन्निधि में परस्पर खमतखामणा के साथ उस अवांछनीय अध्याय की समाप्ति हो गई।

(विस्तृत जानकारी के लिए पढ़ें 'तेरापंथ का इतिहास' खण्ड १, पृ. ४१७-२९)

८६. मनुष्य को पागल-बनाने वाले आठ स्थान एक कवि के शब्दों में—

काम क्रोध जल आरसी, शिशु त्रिया मद फाग।
होत सयाने बावरे, आठ ठोड़ चित लाग।।

८७. आचार्यश्री भिक्षु ने धर्म के क्षेत्र में कुछ नए मानदंड स्थापित किए। धार्मिक और लौकिक कार्यों के मिश्रण को अहितकर बताते हुए उन्होंने एक उदाहरण दिया—

एक व्यापारी मुख्य रूप से तंबाकू और घी का व्यापार करता था। ग्राहकों के मन में व्यापारी का विश्वास था और व्यापारी ईमानदार था। अच्छा-खासा जमा हुआ काम चलता था।

एक दिन व्यापारी को कहीं बाहर जाना था। पीछे से दूकान कौन संभाले? यह प्रसंग चला तो पुत्र ने कहा—'पिताजी! आप हमारा भरोसा नहीं करते हैं। कभी काम संभलाकर देखें तो सही।'

व्यापारी ने पुत्र को दुकान पर बुलाकर समझाया—'देखो बेटे! एक ओर घी के टीन रखे हैं तथा दूसरी ओर तंबाकू के हैं। दोनों वस्तुओं के ये दो टीन खुले हैं, बाकी सब बंद हैं। जब तक ये न बिकें, दूसरे टीन मत खोलना।' पुत्र द्वारा मूल्य पूछने पर पिता ने कहा—'दोनों की कीमत समान है।'

व्यापारी पुत्र के भरोसे दुकान छोड़कर गया। पुत्र ने दुकान का निरीक्षण किया। घी और तंबाकू के खुले टीनों को देखकर उसने सोचा—एक भाव की दो चीजें अलग-अलग पड़ी हैं। ये पुराने आदमी कुछ सोचते-समझते ही नहीं हैं। बिना मतलब दो बर्तन रुके पड़े हैं। उसने तंबाकूवाला टीन उठाया, घीवाले टीन में डाला और चम्मच से मिलाकर एकमेक कर दिया।

थोड़ी देर में ग्राहक आया। उसने पूछा—'सेठजी कहां हैं?' पुत्र बोला—'मैं बैठा हूं, बोलो क्या लेना है?' ग्राहक ने घी की मांग की। उसने तंबाकू मिला हुआ घी लाकर दिखाया। ग्राहक ने पूछा—'यह क्या है?' वह बोला—'घी में तंबाकू मिली हुई है।' ग्राहक ने कहा—'अरे भाई! तुम्हारी अकल कहां चली गई? वह बोला—'जरा संभलकर बोलो। तुम्हें लेना है तो लो अन्यथा लौट जाओ।'

दूसरे ग्राहक ने तंबाकू की मांग की। उसे भी वही घीमिश्रित तंबाकू दिखाई गई। ग्राहक खाली हाथ लौटा। एक-एक कर बीसों ग्राहक आए और कुछ खरीदे बिना ही लौट गए। दूसरे टीन खोलने की आज्ञा नहीं थी और मिश्रित घी-तंबाकू किसी ने खरीदी नहीं। आखिर वह हताश होकर घर आकर बैठ गया।

दूसरे दिन व्यापारी लौट आया। उसने आय-व्यय का हिसाब मांगा तो पुत्र बोला—'आय कहां से हो? आपने सब ग्राहकों को सिर पर चढ़ा रखा है। मेरा तो दिमाग खराब कर दिया आपके ग्राहकों ने।' व्यापारी ने पूछा—'आखिर हुआ क्या?' पुत्र ने अपनी करामात की सारी कहानी सुनाई। सारी स्थिति समझकर व्यापारी बोला—'अरे बेवकूफ! व्यापार ऐसे होता है क्या? घी और तंबाकू का भाव एक है, पर तभी तक है, जब तक वे अलग-अलग हों। साथ मिलाकर तुमने उनको धूल बना दिया। जाओ, इसे कूड़ेघर पर डालकर आओ।'

व्यापारी ने पुनः अपने ग्राहकों को याद किया, पर उनका मूड बिगड़ चुका था। काफी परिश्रम के बाद ग्राहक निकट आए और दुकान अच्छी प्रकार चलने लगी।

इस उदाहरण के माध्यम से स्वामीजी ने यह समझाया है कि घी और तंबाकू के मिश्रण की भांति अध्यात्म-धर्म और लोक-धर्म का मिश्रण भी अहितकर हो जाता है।

८८. चम्पानगरी में माकन्दी सार्थवाह के दो पुत्र थे—जिनरक्षित और जिनपालित। दोनों भाइयों ने ग्यारह बार लवण समुद्र की यात्रा कर अपने व्यापार को विस्तार दिया। बारहवीं बार वे फिर यात्रा करने के लिए उद्यत हुए। माता-पिता ने निषेध किया, पर वे नहीं माने और समुद्र-यात्रा के लिए चल पड़े।

समुद्र में भयंकर तूफान आया। उनका जहाज टूट गया। टूटे हुए काष्ठ-खंड के सहारे तैरते हुए वे 'रत्नद्वीप' नामक स्थल पर जा पहुंचे। उस द्वीप की स्वामिनी रयणादेवी ने उनको आश्रय दिया। दोनों भाई उस देवी के साथ रहने लगे।

एक दिन लवण समुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव की आज्ञा से रयणादेवी समुद्र की सफाई करने गई। जाते समय उसने दोनों भाइयों से कहा—'दक्षिण वनखंड को छोड़कर सब जगह घूम सकते हो। मैं थोड़ी देर में लौटकर आ रही हूं।' दोनों भाई घूमते-घूमते दक्षिण दिशा में पहुंचे। उन्होंने सोचा—इस वनखंड में जाने का निषेध क्यों किया? चलकर देखें तो सही।

दोनों भाई दक्षिण वनखंड का दृश्य देख भय से कांप उठे। वहां एक ओर हड्डियों के ढेर लगे थे, दूसरी ओर एक व्यक्ति शूली पर लटक रहा था। उसने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं काकंदी का व्यापारी हूं। जहाज टूट जाने से यहां पहुंचा और एक छोटी-सी भूल के कारण इस स्थिति से गुजर रहा हूं। तुम लोगों की भी यही स्थिति होनेवाली है। यहां से बच निकलना चाहते हो तो पूर्व दिशा के वनखंड में शैलक यक्ष रहता है, उसकी आराधना करो।'

दोनों भाई अविलम्ब वहां पहुंचे। यक्ष की आराधना की। यक्ष प्रसन्न हुआ। उसने कहा—'मैं तुम्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचा सकता हूं। किन्तु मार्ग में तुम्हें रयणादेवी वापस बुलाए तो उसकी ओर आंख उठाकर भी मत देखना।' दोनों भाई इस बात से सहमत हो गए। यक्ष ने घोड़े का रूप बनाया और उनको अपनी पीठ पर बिठाकर आकाश-मार्ग से दौड़ने लगा।

देवी अपने काम से निवृत्त होकर लौटी। दोनों भाइयों को वहां न देख उसने अपने ज्ञान से देखा। उनके वहां से प्रस्थान की बात ध्यान में आते ही उसने उनका पीछा किया। निकट पहुंचकर वह उन्हें मोहित करने का प्रयास करने लगी। उसके करुणार्द्र विलाप और अभ्यर्थना पर जिनरक्षित का मन द्रवित हो उठा। उसने अनुरागपूर्वक देवी की ओर देखा। प्रतिज्ञा से च्युत होते ही यक्ष ने उसको नीचे गिरा दिया। देवी ने उसको खड्ग में पिरो लिया और टुकड़े-टुकड़े कर मार दिया। जिनपालित देवी का करुण क्रंदन सुनकर भी विचलित नहीं हुआ। यक्ष

ने उसको सकुशल चंपानगरी तक पहुंचा दिया। जिनरक्षित के मन में देवी के प्रति जो अनुकंपा जगी, वह मोह अनुकंपा है। इसका आत्मविकास से कोई संबंध नहीं है।

८६. मेघकुमार अपने साधु-जीवन की प्रथम रात्रि में ही मानसिक उद्वेलन से पराभूत हो गया। वह घर जाने की अनुमति लेने के लिए भगवान महावीर के पास पहुंचा। भगवान उसकी मनःस्थिति से अवगत थे। उन्होंने अपने नवदीक्षित शिष्य को संबोधित कर कहा—

'मेघ! इतनी छोटी-सी बात में यह कायरता! क्या तुझे अपना पिछला जन्म याद नहीं है? मेरुप्रभ हाथी के भव में तुमने जंगल की दावाग्नि से बचने के लिए एक बड़े भूभाग को निस्तृण बना डाला। जंगल में आग लगी। हवा के झोंकों से आग आगे बढ़ी। जंगल के पशु बचाव के लिए उस स्थान में इकट्ठे होते गए। वह लंबा-चौड़ा मैदान इतना भर गया कि एक पांव रखने के लिए भी स्थान नहीं रहा। तुमने खाज खनने के लिए पैर ऊपर उठाग्ग, त्योंही एक खरगोश वहां आकर बैठ गया।'

अपनी बात आगे बढ़ाते हुए भगवान बोले—'तुमने पैर नीचे रखना चाहा, पर खरगोश को देखकर सोचा—जमीन पर पांव रखूंगा तो यह खरगोश कुचलकर मर जाएगा। इससे मेरी आत्मा पाप से भारी हो जाएगी। अहिंसा की विशुद्ध प्रेरणा से तुम तीन पैरों के बल खड़े रहे। आग शांत हुई। पशु जंगल में गए। स्थान खाली देखकर तुमने पैर नीचे टिकाना चाहा, पर टिक नहीं सका। ढाई दिन तक अधर में रहने के कारण पांव इतना अकड़ गया था कि तुम नीचे गिर पड़े और तुम्हारा प्राणान्त हो गया। मेघ! तुम्हारी वह कष्टसहिष्णुता आज कहां चली गई?'

मेघकुमार ने जातिस्मृति ज्ञान के आलोक में अपना पिछला जन्म देखा। वह प्रतिबुद्ध हुआ और पुनः संयम में सुस्थिर हो गया। भगवान महावीर द्वारा अनुमोदित मेरुप्रभ हाथी की अनुकंपा निरवद्य अनुकंपा है। क्योंकि उसकी पृष्ठभूमि में आत्मोदय का लक्ष्य था।

९०. धर्मघोष नामक आचार्य चंपानगरी आए। उनके शिष्य-परिवार में धर्मरुचि अनगार तपस्वी मुनि थे। एक मास की तपस्या के पारणे में वे आचार्य की आज्ञा से भिक्षा लेने के लिए गए। घूमते-घूमते वे नागश्री ब्राह्मणी के घर पहुंचे। नागश्री ने उस दिन भोजन सामग्री में तुम्बे का शाक बनाया। शाक चखने पर उसे भान हुआ—यह तो कड़वा तुम्बा है। खाने के योग्य नहीं है। वह उसे कूड़ेघर

पर डालने के लिए बाहर निकली। सामने मुनि को देखकर, पता नहीं किस द्वेषभाव से प्रेरित होकर उसने वह शाक मुनि को भिक्षा में दे दिया।

मुनि धर्मरुचि भिक्षा लेकर आचार्य के पास पहुंचे। आचार्य ने शाक देखकर कहा—'यह कड़वा तुम्बा है। इसे खाने से मृत्यु हो सकती है। तुम बाहर जाओ। इस शाक को एकांत निरवद्य स्थान में विसर्जित कर दो।' मुनि एकांत स्थान में पहुंचे। शाक की एक-दो बूंद नीचे गिरीं और वहां चींटियां आ गईं। देखते-देखते वे मर गईं। मुनि ने सोचा—एक-दो बूंद से इतनी चींटियां मर गईं। सारा शाक विसर्जित करूंगा तो पता नहीं कितनी चींटियों की हिंसा होगी? इस चिंतन के साथ ही वह सारा शाक उन्होंने खा लिया। शरीर में विष का प्रभाव बढ़ते देख मुनि ने आजीवन अनशन स्वीकार कर लिया। अनशन-काल में तीव्र वेदना का अनुभव हुआ। उस वेदना को समभाव से सहन कर आयुष्य पूर्ण होने पर वे सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

९१. श्रमण भगवान महावीर के अंतेवासी शिष्य प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम गोचरी हेतु वाणिज्यग्राम गए। वहां से लौटते समय उन्होंने उपासक आनंद के अनशन की चर्चा सुनी। वे कोल्लाग सन्निवेश पहुंचे। आनंद गणधर गौतम के दर्शन पाकर बहुत खुश हुआ। अनशन-काल में आनंद को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। वार्तालाप के मध्य उसने अपने अवधिज्ञान का प्रसंग उपस्थित करते हुए कहा—'भंते! मैं पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में लवण समुद्र में पांच-पांच सौ योजन तक जान रहा हूं, देख रहा हूं। उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवंत पर्वत को जान रहा हूं, देख रहा हूं। ऊर्ध्व दिशा में प्रथम देवलोक सौधर्म कल्प तक जान रहा हूं, देख रहा हूं तथा नीची दिशा में लोलुयच्युत नरकावास को जान रहा हूं, देख रहा हूं।'

इन्द्रभूति गौतम यह सुनकर विस्मित हो गए। वे आनंद को संबोधित कर बोले—'आनंद! गृहस्थ को अवधिज्ञान उपलब्ध हो सकता है, पर इतना बड़ा नहीं हो सकता है। तुमने अनशन में असत्य भाषा का प्रयोग किया है, इसकी आलोचना करो।'

उपासक आनंद विनम्रतापूर्वक बोला—'भंते! जिनशासन में आलोचना सत्य भाषण की होती है या असत्य भाषण की?'

गौतम स्वामी ने स्वीकार किया कि आलोचना असत्य भाषण की होती है। आनंद ने अत्यंत विनीत और कोमल शब्दों में निवेदन किया—'भंते! तब तो

आलोचना आप ही करें।'

गणधर गौतम भगवान महावीर के पास पहुंचे। सारी स्थिति की अवगति देकर उन्होंने कहा—'भंते! क्या गृहस्थ को इतना बड़ा अवधिज्ञान हो सकता है?' भगवान ने इस तथ्य का समर्थन करते हुए कहा—'गौतम! आनन्द को इतना बड़ा ज्ञान उपलब्ध हुआ है। तुमने उसकी आशातना की है। जाओ, खमतखामणा करके आओ।'

गणधर गौतम ने उसी समय आनंद उपासक के घर पहुंचकर अपनी भूल के लिए क्षमायाचना की। विशिष्ट ज्ञान-संपदा से संपन्न होने पर भी छद्मस्थ अवस्था में गौतम स्वामी से जो प्रमाद हुआ, उसको भगवान ने प्रमाद ही बताया है।

९२. पूज्य कालूगणी द्वारा प्रस्तुत आगम का पाठ—

समवाओ १२।२

उवही[1] सुअ[2] भत्तपाणे[3] अंजली-पग्गहे[4] त्ति य।
दायणे[5] य निकाए[6] अ अब्भुट्ठाणे[7] त्ति आवरे।।१।।
कितिकम्मस्स य करणे[8] वेयावच्चकरणे[9] इ अ।
समोसरणं[10] संनिसेज्जा[11] य कहाए अ पबंधणे[12]।।२।।

९३. गुरु गोरखनाथजी अपने समय के प्रसिद्ध संत थे। उनके पास एक शिष्य रहता था। शिष्य विनम्र था, पर था बुद्धिहीन। वह अपने गुरु की परिचर्या करता और उनकी कृपादृष्टि पाकर धन्य हो जाता।

गोरखनाथजी ख्यातिप्राप्त विद्वान थे। उनके पास दूर-दूर के पंडित तत्त्वचर्चा के लिए आते। उनके आवास-स्थल में सदा ज्ञान की गंगा बहती रहती। शिष्य बराबर तत्त्वचर्चा में सम्मिलित होता और अपने गुरु की विद्वत्ता का दर्शन कर आत्मविभोर हो जाता।

एक दिन शिष्य ने गोरखनाथजी को प्रणाम कर कहा—'गुरुदेव! आपकी मंगलमय छत्रछाया में मैं निश्चिंत हूं। आपका प्रभाव सब वर्ग के लोगों पर है। एक बार जो व्यक्ति यहां पहुंच जाता है, वह आपके प्रति समर्पित हो जाता है। आप अपने भक्तों के प्रश्नों का उत्तर देते हैं, समस्या का समाधान देते हैं और देते हैं तत्त्वज्ञान का पोष। आपके वर्चस्व से यह आश्रम भी प्रसिद्ध हो गया है। मेरी भावना है कि मैं सदा-सदा आपके चरणों की उपासना करता रहूं। मेरी इस भावना को सफल करनेवाले आप ही हैं। यदि आपने ऐसा नहीं किया तो मेरी गति क्या होगी?'

अपने शिष्य की व्यथा सुनकर गोरखनाथजी शिष्य को संबोधित कर बोले—'जन्म और मृत्यु संसार का निश्चित क्रम है। इसे कोई टाल नहीं सकता। मेरे बाद भी अपना यह आश्रम पंडितों का केंद्र बना रहे, इस दृष्टि से मैं तुझे एक महत्त्वपूर्ण 'गुदड़ी' दे रहा हूं। जब भी तेरे सामने जटिल प्रश्न आए, तुम इसको झड़का लेना। प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।

गोरखनाथजी दिवंगत हुए। विद्वानों ने आश्रम में आना-जाना बंद कर दिया, क्योंकि शिष्य की अज्ञता से वे भलीभांति परिचित थे। कुछ व्यक्ति उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने गए। प्रसंगवश तत्त्वचर्चा भी चली। शिष्य ने अपनी 'गुदड़ी' को झड़काया और प्रत्येक प्रश्न को गंभीरता से समाहित कर दिया। आगंतुक लोगों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाजार में इसकी चर्चा की। विद्वान उत्सुकता के साथ वहां गए। शिष्य ने उनको सम्मान दिया।

विद्वानों ने उस दिन कुछ नए प्रश्न उपस्थित किए। शिष्य ने 'गुदड़ी' के सहारे प्रत्येक प्रश्न का सही-सही उत्तर दे दिया। श्रोताओं ने अनुभव किया मानो स्वयं गोरखनाथजी ही उनके प्रश्नों को समाहित कर रहे हैं। वे लोग संतुष्ट होकर वहां से उठे और जाते-जाते बोले—'हम तो सोचते थे गुरुजी का शिष्य क्या जानता है? पर यहां तो गुदड़ी में गोरख पैदा हो गया।' यह बात गांव-गांव में प्रसिद्ध हुई और गोरखनाथजी का वह भोला-भाला शिष्य 'गुदरीवाला गोरख' नाम से पहचाना जाने लगा।

९४. मुनि जोरजी रुग्ण, वृद्ध और अपंग मुनि थे। चलने में असमर्थ होने के कारण वे कई वर्षों से सुजानगढ़ में स्थिरवास कर रहे थे। उनकी परिचर्या काफी कड़ी थी, फिर भी कालूगणी के निर्देशानुसार प्रतिवर्ष साधुओं का एक सिंघाड़ा उनकी सेवा में रहता था। एक बार उन्होंने आज्ञा लिए बिना अपने मन से चौविहार अनशन कर लिया। संतों ने इस नासमझी के लिए उनको विवेक भी दिया, पर अनशन तो हो ही चुका था।

आचार्यश्री कालूगणी के पास अनशन का संवाद पहुंचा। कालूगणी ने कहा—'इस प्रकार बिना आज्ञा अनशन करना उचित नहीं था, पर जब अनशन कर ही लिया है तो उसे अंत तक दृढ़ता से निभाएं और साधु उनकी परिचर्या करें।' कालूगणी के निकट बैठे थे मुनिश्री मगनलालजी। वे बोले—'गुरुदेव! अनशन की इस बात को प्रसारित कर देना चाहिए। इसे गुप्त रखना संघ के हित में नहीं है।'

कुछ दिन बाद जोरजी का मन दुर्बल हो गया। उन्होंने कहा—'मैं भूखा नहीं रह सकता। मुझे खाने के लिए दो।' सेवार्थी साधुओं ने उनको बहुत समझाया,

पर उनके परिणाम स्थिर नहीं हुए। आखिर स्वीकृत अनशन को न निभा सकने के कारण उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया गया।

गुरु की आज्ञा बिना किए गए कार्य में सफलता नहीं मिलती, तेरापंथ धर्मसंघ की इस धारणा को पुष्ट करने वाले ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

९५. आचार्यश्री कालूगणी चातुर्मास करने के लिए छापर पधारे। रेवतमलजी नाहटा के मकान से संलग्न नोहरे में प्रवचन का कार्यक्रम था। कार्यक्रम चल रहा था, उसी बीच सभा में हलचल हो गई। 'जोया' नामक जंतुओं का आक्रमण इतना तीव्र था कि श्रोताओं के लिए वहां बैठे रहना संभव नहीं रहा। ज्ञात हुआ कि वहां पहले खाद थी, उस पर बालू रेत बिछा दी गई। फलतः जोयों की उत्पत्ति हो गई।

उस उपद्रव से बचने के लिए वहां से सारी रेत उठाई गई और पक्का आंगन बनवा दिया गया। आंगन बनते ही कुछ लोगों ने अफवाहें फैलाईं—यह आंगन साधुओं के लिए बना है, मगनजी स्वामी ने खड़े रहकर इसको तैयार करवाया है, आदि...। इन तथ्यहीन अफवाहों से वातावरण में एक उफान आया। यद्यपि उस आंगन से साधुओं का न तो कोई संबंध था और न उस पर बैठने से विधि का अतिक्रमण होने वाला था। फिर भी समय और परिस्थिति के अनुरूप कालूगणी ने सब संतों को एकत्रित कर विशेष निर्देश देते हुए कहा—'कोई भी साधु चातुर्मास की समाप्ति तक इस आंगन में पैर न रखे।' साधुओं ने इस निर्देश का बड़ी सतर्कता से पालन किया। एक दिन प्रमादवश एक मुनि उधर से चले गए। उन्हें प्राप्त प्रायश्चित्त ने सबको विशेष रूप से सजग कर दिया।

९६. तामली तापस ने साठ हजार वर्ष तक बेले-बेले तपस्या की। उसकी तपस्या की चर्चा देवों में थी और मनुष्यों में भी थी। उधर भवनपति देवों की राजधानी बलिचंचा में इन्द्र नहीं रहा। राजधानी के वरिष्ठ देवों—असुरों ने तामली तापस के पास पहुंचकर प्रार्थना की कि वे बलिचंचा में इंद्र होने के लिए 'निदान' (मानसिक संकल्प) कर लें। तामली ने असुरों के इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया।

आयुष्य पूरा होने पर तपस्वी का साधना काल संपन्न हो गया। वह वैमानिक देवों के द्वितीय स्वर्ग 'ईशान' में इन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ। बलिचंचा के भवनपति देव इस घटना से अवगत हुए। अपने निवेदन पर ध्यान न देने के कारण उनका मन क्षोभ से भर गया। उन्होंने तामली के शव को अपने अधिकार में कर उसकी विडंबना की।

वैमानिक देवों ने ईशानेंद्र को सूचना दी कि उनके शव की हालत बहुत बुरी हो रही है। ईशानेंद्र ने ध्यान दिया और वह क्रोध से भर गया। उसने वहीं बैठे-बैठे तेजोलब्धि का विस्फोट किया। समूची बलिचंचा में आग-ही-आग हो गई। भवनपति देव झुलसने लगे तो उन्होंने ईशानेन्द्र से क्षमा-याचना की और अपनी भूल पर अनुताप व्यक्त किया। यह प्रसंग भगवती सूत्र के तीसरे शतक (३/४७-५१) में वर्णित है।

इस सन्दर्भ से यह बात प्रमाणित होती है कि तेजोलब्धि के प्रयोग में सात-आठ कदम पीछे लौटने का नियम नहीं है। जो व्यक्ति स्वयं में पूर्ण सक्षम नहीं होते हैं, वे पीछे हटकर अपनी शक्ति का विस्फोट करते हैं। किंतु शक्तिसंपन्न व्यक्ति के लिए इसकी अनिवार्यता नहीं है। भगवान महावीर ने अपने प्रबल सामर्थ्य से पीछे हटे बिना लब्धि-प्रयोग किया, इसमें आश्चर्य जैसा कुछ नहीं है।

९७. भगवान ऋषभ ने प्रव्रज्या स्वीकार की तब उनके साथ चार हजार राजा और राजकुमार भी प्रव्रजित हुए। प्रव्रजित होनेवाले और प्रव्रज्या देखनेवाले सभी साधना के विधि-विधानों से अपरिचित थे। भगवान ऋषभ का मार्गदर्शन ही उनके लिए आलम्बन था। ऋषभ ने दीक्षित होते ही मौन व्रत स्वीकार कर लिया। मार्गदर्शन और वार्तालाप तो दूर, उन्होंने संकेत तथा दृष्टिक्षेप भी नहीं किया। उनके सहयात्री साधकों ने एक दिन प्रतीक्षा की, दो दिन प्रतीक्षा की, कई दिन प्रतीक्षा की, पर ऋषभ का मौन नहीं खुला। भूख, प्यास, निद्रा आदि शारीरिक दुर्बलताओं तथा मानसिक विक्षोभ को वे सहन नहीं कर सके।

आखिर एक दिन उन्होंने सामूहिक रूप में निर्णय लिया कि वे न तो अपने घर जाने की स्थिति में हैं और न ऋषभ की इस महायात्रा में साथ देने में सक्षम हैं। अब तो कोई तीसरा विकल्प ही उन्हें त्राण दे सकेगा। एक-एक कर उन लोगों ने कई विकल्प स्वीकार किए। कोई कन्दाहारी बने तो कई फलाहारी। किसी ने जटा बढ़ाई तो किसी ने मुंडित रहना स्वीकार किया। गंगा नदी के तट पर साधकों की उस भीड़ ने तापसों की नई सृष्टि की। अपनी-अपनी अभिरुचि और क्षमता के अनुसार उनकी चर्या और विचारधारा अनेक रूपों में विभाजित हो गई।

भगवान ऋषभ उन सबकी मनःस्थितियों के ज्ञाता थे। साधना-पथ से उनकी भटकन का बोध ऋषभ को था, फिर भी वे मौन रहे। क्योंकि तीर्थंकर छद्मस्थ अवस्था में केवल आत्मानुकम्पी होते हैं। उस समय वे न किसी को दीक्षित करते हैं, न शिक्षित करते हैं और न किसी प्रकार की व्यवस्था ही देते हैं।

९८. मुनि भीमराजजी आचार्यश्री तुलसी के प्रारंभिक अध्ययन में सहयोगी

रहे। उनके अध्यापन का तरीका बहुत ही सुंदर और मधुर था। उनके जीवन की कुछ और भी विशेषताएं थीं, जिनके कारण आचार्यश्री के मन में उनका विशिष्ट स्थान हो गया।

प्रामाणिकता और समय की नियमितता मुनि भीमराजजी के सहज गुण थे। उनकी समय-सारणी निश्चित रहती थी। स्वावलंबन को वे आत्मधर्म समझते थे। अवस्था से वृद्ध हो जाने पर भी उन्होंने अपना वजन किसी दूसरे को नहीं दिया। धर्मसंघ की मर्यादाओं और गतिविधियों के प्रति वे बहुत सतर्क रहते थे। आचार्य की आज्ञा के प्रति वे सदा सावधान थे। उनका अध्ययन गहरा और यौक्तिक था। उनके तर्क अकाट्य होते थे। वे जिन क्षेत्रों में रहते, वहां श्रावकों को थोकड़े बहुत सिखाते थे। सुजानगढ़ के कई व्यक्तियों ने उनके पास 'गम्मा' सीखा।

मुनि भीमराजजी की गोचरी के संबंध में यह बात प्रसिद्ध थी कि वे धराए हुए आहार से थोड़ा भी अधिक नहीं लाते थे। श्रावक अधिक आग्रह करते तो वे कहते—'मैं आचार्यश्री को निवेदन कर दूंगा। यदि वे मंगवाएंगे तो चार बार आ जाऊंगा, पर अभी अधिक नहीं लूंगा।'

९९. मुनि सोहनलालजी (चूरू) तेरापंथ धर्मसंघ के आस्थाशील मुनि थे। संघ और संघपति के प्रति उनका समर्पण भाव विलक्षण था। वि. सं. १९८६ लाडनूं-चातुर्मास में वे पूज्य कालूगणी के साथ थे। वहां उनके जीवन में आकस्मिक रूप से ऐसी दुर्घटना घटित हुई कि उन्हें संघ के संरक्षण से वंचित होना पड़ा। भावावेश में संघीय आलंबन को छोड़कर वे कुछ दिन अज्ञात रहे। यह स्थिति उनके लिए जितनी दुःखद और दुर्भाग्यपूर्ण थी, संघ के लिए भी कम चिंताजनक नहीं थी।

आवेश का प्रभाव कम हुआ तो वे पुनः संघ की शीतल छाया में आने के लिए आतुर हो उठे। लाडनूं-चातुर्मास में ही वे पुनः कालूगणी के समक्ष उपस्थित हुए। वहां पहुंचकर उन्होंने जिस ढंग से अपना अंतःकरण खोलकर रखा, सारी जनता को अपने प्रवाह में ले लिया। वे अविलंब संघ में प्रवेश पाना चाहते थे, पर उस समय उस रूप में उनको संघ-प्रवेश की स्वीकृति धर्मसंघ की अवज्ञा का कारण बन सकती थी। इसलिए बहुत अधिक प्रार्थना के बावजूद भी कालूगणी ने अपनी स्वीकृति नहीं दी।

कालूगणी द्वारा कोई आश्वासन न मिलने पर भी उनकी विनम्र प्रार्थना का क्रम चलता रहा। श्रावक समाज और साधु समाज ने भी निवेदन किया। प्रार्थनाओं के सिलसिले में छह मास का समय पूरा हो गया। आगम निर्दिष्ट विधि के अनुसार छह मास के बाद उन्हें नई दीक्षा देकर धर्मसंघ में सम्मिलित किया गया।

छह मास का वह समय मुनि सोहनलालजी के लिए कसौटी का समय था, जिसमें वे खरे उतरे। उस अवधि में उन्होंने जिस शालीनता और संघभक्ति का परिचय दिया, वह अपने आप में बेजोड़ है। ऐसे उदाहरण धर्मसंघ के इतिहास में उल्लेखनीय बन जाते हैं।

१००. भैरूंदानजी चौपड़ा के संबंध में आचार्यश्री द्वारा कथित दोहे–

१. पुण्याई रो पूतलो, भागी भैरूंदान।
मुकुट चौपड़ा-वंश रो, शासण में सम्मान।।

२. परम भगत गुरुदेव रो, सब भायां में ज्येष्ठ।
काछ वाच रो साचलो, है स्वभाव रो श्रेष्ठ।।

१०१. गंगाशहर के श्रावकों के सम्बन्ध में आचार्यश्री तुलसी के द्वारा रचित दोहे–

१. लूणावत बो देवजी, सेठी[1] किशन दलाल।
पृथ्वी[2], भैरव[3] प्रेरणा, कीन्हो काम कमाल।।

२. जंगल में मंगल हुयो, बीकायत रो भाग।
तेरापंथ-प्रभावना, खिल्यो चोखलो बाग।।

३. गंगाणै रा चौपड़ा, देश-प्रदेशां ख्यात।
शासण-गौरव-वृद्धि में, सदा बढ़ायो हाथ।।

१ सेठिया
२ मुनि पृथ्वीराजजी
३ भैरूंदानजी चौपड़ा

१०२. प्रस्तुत पंक्ति में 'सिद्ध' शब्द श्लेष अलंकार में प्रयुक्त है। सिद्ध सर्वज्ञ होते हैं। उनसे कोई भी रहस्य अज्ञात नहीं होता। यहां 'सिद्ध' जाति का वाचक है। नेमनाथजी सिद्ध सिद्धांत के अच्छे जानकार थे। उनके सामने असंगत उत्तर टिक नहीं सकता था, इसलिए चर्चा का प्रसंग समाप्त कर दिया गया।

१०३. बत्तीस आगमों के प्रामाण्य का आधार है द्वादशांगी। जिन शास्त्रों की बातें द्वादशांगी से विपरीत जाती हैं, उनका प्रामाण्य संदिग्ध होता है। महानिशीथ आदि के संबंध में तो उसके संकलनकार ने स्पष्ट लिखा है कि जिन स्थलों पर पदानुरूप सूत्रालापक प्राप्त नहीं हुए, वहां श्रुतधरों ने अपने चिंतन के अनुसार उचित पदों का संकलन किया है। शासन देवी द्वारा प्राप्त इसकी मूल प्रति वर्तमान में खंडित है तथा उदेई के जंतुओं द्वारा भी कई पन्ने विकृत कर दिए गए हैं। इसलिए इसमें जहां कभी भी कुलिखित–विसंगत तथ्य हैं, पाठक उसका दोष मुझे न दें।

हरिभद्र, सिद्धसेन आदि युगप्रधान आचार्यों ने इस संबंध में परिश्रमपूर्वक जो कार्य किया है, वह उल्लेखनीय है। किंतु कुलिखित पाठ का दोष किसी को नहीं देना चाहिए।

जब संकलनकार स्वयं ही ग्रंथ की प्रामाणिकता में संदिग्ध हैं और वे विसंगत तथ्यों की जिम्मेदारी लेना नहीं चाहते हैं, वैसी स्थिति में इन ग्रंथों को प्रामाणिक कैसे माना जाए?

१०४. साधनाशील साधु साधक होता है, सिद्ध नहीं। साधनाकाल में प्रमादवश होनेवाली स्खलना की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्खलना के परिष्कार की दृष्टि से गुरु का मार्गदर्शन और साधक की अपनी जागरूकता उसके जीवन में अकल्पित रूपान्तरण घटित कर देती है।

मुनि बिरधीचन्दजी (वृद्धिचन्दजी) आत्मार्थी और तपस्वी साधु थे। एक बार प्रमादवश उनसे कोई गलती हो गई। आचार्यश्री कालूगणी तक बात पहुंची। उन्होंने साधुओं की सभा में कड़ा उपालम्भ दिया और उनका सिंघाड़ा समाप्त कर दिया। बात यहीं समाप्त नहीं हुई। उन्हें उन्हीं के अनुगामी, जो दीक्षापर्याय में उनसे छोटे थे, मुनि जयचन्दलालजी (सुजानगढ़) के साथ रहने का निर्देश दे दिया।

आचार्यश्री की उस दिन की डांट इतनी कड़ी थी कि सुनने वाले अन्य साधु भी कांप उठे। पर मुनि बिरधीचन्दजी ने उस कठोर उपालम्भ को भी विनम्रता और शान्ति के साथ नतमस्तक होकर स्वीकार किया। ऐसा करके उन्होंने अपनी आत्मार्थिता का तो परिचय दिया ही, वे धन्यवाद के भी पात्र बन गए। आचार्य तुलसी ने उनको सौ-सौ साधुवाद देकर एक उल्लेखनीय उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

१०५. बीकानेर-प्रवास में प्रातःकालीन व्याख्यान में 'कालूयशोविलास' का व्याख्यान चलता था। कालूगणी के शरीर पर लू का प्रकोप हुआ—इस प्रसंग का वाचन जिस दिन हुआ, उसी दिन सायंकाल आकस्मिक रूप से ठंडी हवा चलने लगी। इस आकस्मिक परिवर्तन को लक्षित कर आचार्यश्री तुलसी का कविहृदय मुखरित हो उठा। उन्होंने वायु को संबोधित कर उत्प्रेक्षा करते हुए कहा—

रे रे वायो! सुदृढ़मधुना शीतलीभूय वासि,
ज्ञातं ज्ञातं सपदि मयका हार्दिकं तन्निमित्तम्।
आयासस्ते गुरुगदभवं प्राक्कलङ्कं पिधातुं,
नालं किन्तु प्रभुनुतिमये काव्यके मुद्रितः सः।।

१०६. मुनि रणजीतमलजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठे—

१. मासखमण अट्ठार, पेंताली बावन इकिक।
दो मासी दो बार, तक्र-अगार सिंताल दिन।।
२. दिवस एक शत एक, इक शत बंयासी दिवस।
आछ अगार सरेख, तात रीत राखी सही।।
३. पंद्रह वर्ष प्रमाण, एकांतर तप सामठो।
चउत्थ छट्ठ अठ माण, कर-कर कर्म निकंदिया।।
४. डालिम री दिन-रात, त्यूं श्री कालू री सदा।
सेवा सझी सुजात, सफल जनम 'रणजी' कर्‌यो।।

१०७. घटना सरदारशहर की है। स्थानकवासी मुनि केसरीचन्दजी उसी दिशा में पंचमी समिति जाते थे, जिधर कालूगणी पधारते। एक दिन वे मार्ग में कालूगणी से मिले और बोले—'आचार्यजी! आप ठहरें, मुझे आपसे बात करनी है।' कालूगणी ने कहा—'रास्ते में क्या बात होगी?' यह कहकर कालूगणी जाने लगे तो वे बोले—'आप यहां से चले गए तो आपको भीखणजी की आण है, डालचंदजी की आण है और सब आचार्यों की आण है।' कालूगणी ने उनको समझाया कि हमारी स्वीकृति बिना कोई आण कैसे हो सकती है। पर वे नहीं माने।

कालूगणी अपने प्रवास-स्थान पर पधार गए। पीछे से शिवलालजी पटुआ (बीकानेर), उत्तमचंदजी गोठी, नेमीचंदजी बोरड़ (पंच) आदि कुछ व्यक्तियों ने मुनिजी को संबोधित कर कहा—'महाराज! आप ऐसे कैसे आण दिरा देते हैं? यदि ऐसे ही आण होती है तो हम कह देंगे—आप यहां से उठे तो आपको जवाहरलालजी (उनके आचार्य) की आण है।' मुनिजी ने इस बात को पकड़ लिया और वहीं जमकर बैठ गए। लोगों ने उनको बहुत समझाया, पर वे अपनी बात पर अड़े रहे। स्थिति काफी तनावपूर्ण हो गई। बीकानेर महाराज को जब इस स्थिति की जानकारी मिली तो उन्होंने कई अफसरों को उन्हें समझाने के लिए भेजा। मुनिजी पर उनका कोई असर नहीं हुआ। आखिर बीकानेर से गृहमंत्री शार्दूलसिंहजी उस स्थिति को संभालने आए। उनकी बात भी सहज रूप से स्वीकृत नहीं हुई तो उन्होंने शक्ति से काम लिया। गृहमंत्री ने उनको इस बात से भी सहमत कर लिया कि पहले वे कालूगणी के पास जाकर खमतखामणा करें। फिर वे श्रावक आपके साथ खमतखामणा करेंगे। इस प्रकार तनावपूर्ण स्थिति सामान्य बनी।

१०८. रतनी बाई दूगड़ (फतेहपुर) का जन्म बोरावड़ में हुआ। उनकी बड़ी बहन छगनांजी ने सगाई छोड़कर दीक्षा ग्रहण की। रतनी बाई के मन में भी वैराग्य की भावना जागी। पर पिता ने आज्ञा नहीं दी। उनका विवाह फतेहपुर के दूगड़

परिवार में हुआ। विवाह के बाद वे गृहकार्य का संपादन करती हुईं भी धर्माराधना में सजग थीं। विवाह के कुछ वर्षों बाद अंकुरित वैराग्य का पौधा फिर हरा हो गया। उन्होंने अपने पति लक्ष्मणलालजी (बालचंदजी) के सामने वैराग्य भावना प्रकट की। मौका देखकर ससुर तक भी अपनी बात पहुंचाई। किन्तु उन्हें आज्ञा नहीं मिली।

रतनी बाई ने पूज्य कालूगणी के दर्शन कर कई बार दीक्षा की प्रार्थना की। तेरापंथ संघ में पारिवारिक जनों की आज्ञा के बिना दीक्षा नहीं हो सकती। इसलिए उनको दीक्षा के बारे में कोई आश्वासन नहीं मिला। रतनी बाई ने अपनी ओर से आज्ञा प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिली। आखिर उन्होंने कहा—'परिवार वाले दीक्षा की आज्ञा नहीं देंगे तो मैं आमरण अनशन कर लूंगी।' इस कठिन प्रतिज्ञा के बाद भी काम नहीं बना तो उन्होंने मनोबल के साथ सागारी अनशन स्वीकार कर लिया। दिन पर दिन निकलते गए, परिजनों का मन नहीं बदला। आखिर वि. सं. १९८९ कार्तिकी अमावस्या दीपावली के दिन अनशन के बहत्तरवें दिन उनका स्वर्गवास हो गया।

यह घटना त्रिआयामी दृढ़ता का उदाहरण है। पहली दृढ़ता रतनी बाई की, जिन्होंने दीक्षा की आज्ञा न मिलने तक आहार का परित्याग किया। दूसरी दृढ़ता पूज्य कालूगणी की, जिन्होंने पारिवारिक जनों की आज्ञा प्राप्त हुए बिना दीक्षा नहीं दी। तीसरी दृढ़ता उनके पति की। उन्होंने यहां तक कह दिया था कि यह मर जाए तो भी मैं इसे दीक्षा की आज्ञा नहीं दूंगा।

कहा जाता है कि उन दिनों महात्मा गांधी के समक्ष किसी भाई ने उक्त घटना की चर्चा की। उन्होंने उस पर टिप्पणी करते हुए कहा—इस मृत्यु में गुरुजी का कोई दोष नहीं है। क्योंकि अस्तेय व्रत को निभाते हुए वे पारिवारिक जनों की आज्ञा के अभाव में दीक्षा नहीं दे सकते थे। बहन को भी दोषी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह वयस्क थी। अपने हित की सुरक्षा या प्राप्ति के लिए संघर्ष करने का उसे पूरा अधिकार था। घरवालों को उसकी भावना के प्रति इतना कठोर नहीं होना चाहिए था।

१०९. वि. सं. १९८९ का चातुर्मास सरदारशहर करके आचार्यश्री कालूगणी रतनगढ़ होते हुए मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी को राजलदेसर पधारे। वहां पोष शुक्ल पक्ष में गुरुदेव ने मुनि लच्छीरामजी को अनुशासन का उल्लंघन करने के कारण गण से बाहर कर दिया। उस समय उन्होंने अपनी भूल स्वीकार करते हुए जो लिखित लिखा, वह इस प्रकार है—

'श्री भीखू, भारमाल, ऋषराय, जयजश, मघवा, माणक, डालचंद, कालूराम सूं ऋषि लच्छीराम की अर्ज मालुम हुवै। आप कृपा महरवानगी कराय कर मनैं कोई खामी रो ओळुंभो दिरावो तो हूं समभाव सूं अंगीकार करसूं, डंड दिरावो जिको पिण समभाव सूं पालसूं, और कोई क्रोधादिक करीने सामने बोलूं नहीं, मरजी उपरांत कोई बात करूं नहीं, आप म्हारो निभाव करावो, संजम को साज दिरावो, आप बड़ा हो, भरतक्षेत्र में तीर्थङ्कर देव समान आपनै जाणूं छूं, आप म्हारो संजम पळावो।'

संमत १९८९ पोष सुदि ५ अदीतवार

११०. मुनि आशारामजी (बालोतरा) अष्टमाचार्यश्री कालूगणी द्वारा दीक्षित थे। वे बहुत मनोबली, सुदृढ़ संहननवाले और तपस्वी मुनि थे। गृहस्थ अवस्था में वे एक बार ऊंट पर यात्रा कर रहे थे। सहसा वे ऊंट से गिर पड़े और उनके हाथ की हड्डी टूट गई। उन्हें तत्काल डॉक्टर को दिखाया गया। डॉक्टर ने कहा—'पक्का पट्टा बांधना पड़ेगा। वह पट्टा कम-से-कम तीन महीनों तक रहेगा।' आशारामजी बोले—'इतने समय तक मैं हाथ को बांधे नहीं रख सकता। और कोई उपाय हो तो बताओ।' डॉक्टर ने कहा—'पक्के पट्टे के अतिरिक्त कोई उपाय कारगर नहीं होगा।'

आशारामजी वहां से घर लौट गए और अपने पूर्वजों की अनुश्रुति के आधार पर कोयले पीसकर उन्हें तिलों के तेल में मिलाकर पी गए। कुछ दिनों में हाथ की हड्डी जुड़ गई और शरीर भी पहले की अपेक्षा अधिक हृष्ट-पुष्ट हो गया।

हाथ ठीक होने के बाद वे पुनः डाक्टर से मिले। डाक्टर ने उनको पहचाना नहीं। उन्होंने अपने हाथ की हड्डी टूटने और पुनः जुड़ने की सारी बात डाक्टर को बताई तो वे विस्मित रह गए और विनोद में बोले—आप एक बार और ऊंट से गिरें तथा यही दवा लें तो अधिक मजबूत हो जाएंगे।

उनके जीवन की ऐसी अनेक घटनाएं हैं, जो आश्चर्यकारक हैं। उनमें 'मन के तेरहिये'—(तेरह व्यक्ति एक मन घी को एक साथ खाने वाले), मासखमण तपस्या के पारणे में दाल का हलवा और पकोड़े खाना आदि उल्लेखनीय हैं।

दीक्षित होने के बाद मुनि आशारामजी ने जीवन भर एकान्तर तप किया। बीच-बीच में बड़ी तपस्याएं कीं। अंत में चाड़वास में अट्ठावन दिन की संलेखना में अनशन किया, जो पन्द्रह दिन बाद सानंद संपन्न हुआ। उस समय कालूगणी बीदासर थे। आपने अपने हाथ से तपस्वी मुनि को पत्र लिख संतों को चाड़वास भेजा। उस पत्र में एक दोहा था—

आशा! तुझ आशा फळी, संथारे की साच।
दृढ़ मन अधिक दिखावजे, रहे भिक्षुगण राच।।

कालूगणी द्वारा प्रदत्त पत्र पढ़कर तपस्वी मुनि ने विशेष समाधि और आह्लाद का अनुभव किया। वि.सं. १९८९ चैत्र कृष्णा ७ को तपस्वी मुनि की जीवन-यात्रा संपन्न हुई।

१११. मुनि पांचीरामजी के अनशन के संदर्भ में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठे और छप्पय–

- मुनिवर पांचीराम, प्रबल भावना जो बणी।
  पहुंचेवा सुरधाम (तो) अनशन कर लै विजय वर।।
- पटावरी परिवार, पैदा हो दम्पति तर्‌या।
  कर अनशन साकार, शासनध्वज फहरावसी।।

छप्पय

पांचीराम पटावरी मोमासर रो संत,
पायो परम प्रमोद स्यूं तारक तेरापंथ।
तारक तेरापंथ तपोमय संयम साध्यो,
मौनी बण अकषाय अनुत्तर पथ आराध्यो।
अनशन दिन तेतीस रो जीवन झोंक्यो अंत,
पांचीराम पटावरी मोमासर रो संत।।

११२. दीक्षा-पर्याय में छोटे-बड़े का क्रम छेदोपस्थापनीय चारित्र (बड़ी दीक्षा) के आधार पर रहता है। मुनि धनराजजी और चंदनमलजी की दीक्षा उनके संसारपक्षीय पिता मुनि केवलचंदजी से पहले हो गई थी। पिता को बड़ा रखने की दृष्टि से उनकी बड़ी दीक्षा छह मास बाद हुई।

११३. वि. सं. २०१२ में बारह मुनि धर्मसंघ से अलग हुए। कुछ सैद्धान्तिक और पारम्परिक प्रश्नों को लेकर वह घटना घटी थी, पर उसने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि वह वैचारिक जंग के रूप में परिणत हो गई। साध्वी कमलूजी (राजलदेसर) के संसारपक्षीय भाई मुनि छत्रमलजी भी उनके साथ थे। उस समय साध्वी कमलूजी के सामने दुविधा की स्थिति उत्पन्न हो गई। एक ओर भाई, दूसरी ओर धर्मसंघ। उस विकट समय में उन्होंने दृढ़ता का परिचय देते हुए कहा–'भाई हो या पिता, सब पीछे हैं। पहला स्थान धर्मसंघ और संघपति का है।' अपने ज्ञातिजनों की किंचित भी परवाह न करते हुए उन्होंने जिस निष्ठा और साहस का परिचय दिया, वह एक उदाहरण है। वे स्वयं अपने भाई मुनि

को प्रतिबोध देने गईं और उन्हें समयोचित शिक्षा दी।

११४. साध्वी किस्तूरांजी की अंतिम तपस्या के पचास दिन संलेखना और अनशन दोनों मिलाकर हैं। उनके संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा रचित दोहा–

कस्तूरां करणी करी, तपोयोग सुविशेष।
दिन पचास संलेखना, अंतिम अनशन शेष।।

११५. आचार्यश्री कालूगणी जब लाडनूं पधारे, उस समय उन्हें फणयुक्त काले नाग का शकुन हुआ। आचार्यश्री तुलसी को शिष्य रूप में प्राप्त कर उन्होंने शकुन के फल को सत्य प्रमाणित कर दिया।

११६. मुनि चम्पालालजी ने वि. सं. २००१ फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को एक साथ आठ दिन की चौविहार तपस्या का प्रत्याख्यान किया। आठवें दिन आजीवन चौविहार अनशन कर लिया। तीन दिन के अनशन में उनका स्वर्गवास हुआ। उनके संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा रचित सोरठा–

तप सात दिवस चौव्यार, तीन दिवस अणसण रही।
कीधो खेवो पार, चंपो मोटे गाम रो।।

२. नामानुक्रम

व्यक्ति नाम

अगस्त्य ऋषि १४६
अणचांजी (साध्वी) ११०, २३५
अभयराज (म) जी (मुनि) ७६, २२०
अमरचन्दजी (मुनि) १७२
अमरूजी (साध्वी) १०६
अमीचन्दजी (मुनि) १०८, १८६
अमृतलालजी (मुनि) १३३
अमृतांजी (साध्वी) २४६
अमोलकचन्दजी (मुनि) २४७
अम्बालालजी कावड़िया १२८
अश्विनीकुमार मुखर्जी १३६
आणंदमलजी (मुनि) २४२
आणंदरामजी (मुनि) ६६
आणंद (नन्द) सिंहजी (ठाकुर) ६०, ११०
आशकरणजी (मुनि) १०७, २४२
आशांजी (साध्वी) १७१, २४७
आसारामजी (मुनि) ११०, २४१
इन्द्रूजी (साध्वी) १७१, २४६
इमरतमलजी (मुनि) १६६
ईशरचन्दजी चौपड़ा १८३, २३१
उदाई (राजा) १८७
ऊदांजी (साध्वी) १७१
ऋषभ (तीर्थंकर) नाभि-तनूजात ५६, २२४
कंचनकंवरजी (साध्वी) २६७
कनकप्रभा (साध्वीप्रमुखा) ५६
कनीरामजी (स्थानकवासी मुनि) १३६, १३८
क (का) नीरामजी बांठिया, १६१-१६६
क (का) नीरामजी (मुनि) १५६
कन्हैया (कनिया) लाल (मुनि) ७६
कमला (लू) जी (साध्वी) २४३, २४५
कस्तूरमलजी (मुनि) १०४, १११
क (कि) स्तूरांजी (साध्वी) ११०, १७०, २४४, २४६, २४८
कानकुमारीजी (साध्वीप्रमुखा) ६५, ७०, ८३, १००, १०१, १३३, १८६
कानूड़ो (कानमलजी मुनि) १६६
कालूगणी (आचार्य) कालूराम, छोगां-अंगज, छोगां-जायो, छोगां-नन्दन, छोगां-मूल-सुत, छोगां-सुत, छौगेय, डालिम-पटधर, मूल-किशोर,

मूल-तनय, मूल-नन्द, मूल-पुत्र, मूल-लाल, मूल-सुनू ५६-५८, ६०, ६१, ६६, ६७, ६९-७३, ७५-७७, ७९, ८०, ८२-८५, ८९-९१, ९३-९५, ९९, १०४, ११५, ११६, ११९-१२२, १२४-१२६, १३३, १३५, १४०, १४२, १४६, १४९, १५१, १५५, १६१, १७०, १७३, १७४, १८१, १८२, १८६, १९२, १९४, १९५, २०१, २०३, २०८, २११, २१२, २१४-२१७, २३३, २४०, २४४, २४६-२४९
कुम्भकरणजी (मुनि) १७२
केवलचन्दजी (मुनि) २३२, २४३
केशर/केसर (रां) जी (साध्वी) १०९, १७२, २४४-२४८
केशरीचन्द (शशी) जी कोठारी १२०, १२७
केसरीचन्दजी (स्था. मु.) २३९
केसरीमलजी (मुनि) २४३
केसूलालजी (मुनि) २४२
कोडामलजी (मुनि) २४७
खूबचन्दजी कोठारी ६२
खूबचन्दजी (मुनि) २४४
खूमांजी (साध्वी) २३५
खेतसीजी (मुनि) २४७
गंगाजी (साध्वी) १७०
गंगासिंहजी (नरेश) १८१, १८२, २३२
गजराजजी (मुनि) २४८
गजाननजी (पंडित) १५८, १५९
गणपतरामजी (मुनि) १०८
गणेशदत्तजी (पंडित) १६४-१६६
गणेशदासजी गधैया २३४, २३६
गणेशदासजी चंडालिया १२०, १७१
गणेशमलजी (मुनि) २४२, २४५
गणेशांजी (साध्वी) २४४, २४७, २४८
गणेशीलालजी (स्था. मु.) लम्बोदरजी, विनायकजी २०८-२११
गिल्की साहब (प्रोफेसर) १८७
गीगांजी (साध्वी) १७२
गुणचन्दजी (मुनि) २४५
गुमानमलजी (मुनि) १७०
गुलाबभ्रात (मघवा) ७२
गुलाबांजी (साध्वी) २४५
गुलाबांजी (साध्वीप्रमुखा) ६५, ६६
गोठी (बिरधीचन्दजी) २३९
गोत (य) म (गणधर) ७४, २०६
गोरूलालजी २०८, २०९
गोविन्दजी (मुनि) १११
गोविन्दरामजी नाहटा २१८
गोशालक २२३
ग्लेन्सी साहब १८४
घनश्याम/घन्नू (पंडित) ८४, ८५
घासीरामजी (मुनि) १०५, २३२
चंदूजी (साध्वी) १११
चन्दनमलजी (मुनि) १७२, २४२, २४३
चम्पांजी (साध्वी) १७२, २४७
चम्पालालजी कोठारी २२३
चम्पालालजी (मुनि) १०७, २४३, २४५, २४६
चम्पालालजी 'चम्पक' (सेवाभावी) १८६, १९०, २४३
चांचियो (चम्पालालजी मुनि) २४२
चांदकंवरजी (साध्वी) १७०, २४३

चांदांजी (साध्वी) १०७-११०, २३५
चिरंजीलालजी (मुनि) २४४
चूनांजी (साध्वी) १७२, २४६
चूनीभाई २३४
चूनोजी (चुन्नीलालजी मुनि) १०७
चोथमलजी (मुनि) २३५, २४७
चोथांजी (साध्वी) २४६, २४८
छगनमलजी बैद २२६
छगनांजी (साध्वी) १०६-१०८, २४७
छत्रमलजी (मुनि) २४७
छोगमलजी चौपड़ा १२७
छोगमलजी (मुनि) १६६, २४२
छोगां-अंगज, (कालूगणी) ८५
छोगांजी ६२, ६५, ७०, ८३, ८२, १००, १२३, १२६, १३३, १४५, १८७, १८६, २२६, २३५
छोगां-नन्दन (कालूगणी) ७०
छोगां-मूल-सुत (कालूगणी) ६१
छोगां-सुत (कालूगणी) ६५, ८६, १६७
छोटांजी (साध्वी) १०८
छौगेय (कालूगणी) ८६, १५५
जंवरीमलजी दूगड़ १८६
जंवरीमलजी (मुनि) २४२, २४५
जगनाथजी (मुनि) १७१
जड़ावांजी (साध्वी) १०६, ११०, २४३, २४४, २४८
जतनकंवरजी (साध्वी) २४२
जतनमलजी कोठारी १६५
जमनांजी (साध्वी) १०५, २४४
जमाली (निह्नव) १६७
जयचन (न्द) लालजी (मुनि) ७६, २३६, २४२, २४६-२४८
जयचन्दजी (यति) २३१
जयपटधर (मघवागणी) ७०, ७२
जयाचार्य जयजश, जीतमल, ७०, ८०, ६२, १३६-१३८, १८३, १८५
जवाहर (री) लालजी (स्था. आचार्य) १६६, १६७, १६६, २०८, २३०
जसकरणजी (मुनि) २४६
जसराजजी (मुनि) १७२
जसू (स्सू) जी (साध्वी) २४४
जानकीदास १५३
जिनरिख २०६
जी. आर. होलेण्ड साहब १८५
जीतमलजी दूगड़ ६७
जीवनमलजी (मुनि) १७०, २४५
जीवराजजी मालू २४४
जीवराजजी (मुनि) २४४, २४८
जुहारांजी (साध्वी) २४४
जेठांजी (साध्वीप्रमुखा) ७६, ८७, ८६, १०६, १३३, १४५, १८६
जोरजी (मुनि) २१७, २४८
ज्ञातपुत्र (महावीर) १००
ज्ञानांजी (साध्वी) १०६
झमकूजी (साध्वी) १०६, २४४, २४७
झूमरमलजी (मुनि) २४६, २४८
टमकूजी (साध्वी) २४४
टेसीटोरी (इटालियन) १४०
डायमलजी नाहटा २२७
डायमल (ल्ल) जी (मुनि) १६४
डालचन्दजी, डालिम (आचार्य) ७६-६५, ६६, १११, २३६
डालचन्दजी कोठारी ६२

डालिम-पटधर (कालूगणी) ६१, १५६, १५६
डूंगरमलजी (मुनि) २४६
डूंगरसिंहजी ६२
तनसुखदासजी (मुनि) १७०
तनसुखांजी (साध्वी) २४२
तामली तापस २२३
ताराचंदजी (मुनि) २४८
तिलोकचन्दजी नाहटा २१८
तुलसी (आचार्य) कालूपटधर ५६, ७२, १११, १६८, १७४, १६०, १६१, २०२, २३०, २३८
तोलारामजी (मुनि) १७१-१७३
त्रिशला-नन्दन (महावीर) २३४
त्रिशला-संभव (महावीर) ११४
त्रिशला-सुत (महावीर) ११४
दयारामजी (मुनि) १६६
दाखांजी (साध्वी) १०६
दीपांजी (साध्वी) २४२
दीपां-जात (भिक्षु स्वामी) ५६
दीपां-सुत (भिक्षु स्वामी) ५६
दुलीचन्दजी कोठारी ६२
दुलीचन्दजी/दुलियो (मुनि) १७३, २४३, २४८
देवचन्दजी (श्रीपूज) २३२
देवानन्दा १००
देवीचन्दजी (मुनि) १११
दोलांजी (साध्वी) १७२
द्वारकादास १५२, १५३, १५५
धनकंवरजी (साध्वी) १०५, १७३
धनराजजी बैद २२६
धनराजजी (मुनि) १६६, १७३, २४२, २४३
धनरूपजी (मुनि) १०६
धन्नां-सुत (मगनमुनि) ७६, ८२
धर्मरुचि (अणगार) २०६
नत्थूराम १५३
नत्थूराम/नथमल १५३, १७०, २४२
नथमलजी (आचार्य) २४७
नरसिंहदासजी लूणिया ६२
नवलांजी (साध्वीप्रमुखा) ७०
नाथांजी (साध्वी) २४४, २४८
नानूजी (साध्वी) १७०, २४७
नाभि-तनुजात (ऋषभ) ५६
नाभि-सुत (ऋषभ) ५६
निजरकुमारीजी (साध्वी) १६६, १७२
नेमचन्दजी (मुनि) १०६, २४६, २४८
नेमनाथजी सिद्ध २३०
नोजांजी (साध्वी) १०६, १७०, १७२, २४८
नोरंगमलजी (मुनि) १७०
पन्नांजी (साध्वी) १०५, १७०, २४६
पांचीरामजी (मुनि) २४३
पाण्डव १५७
पानकंवरजी (साध्वी) २४४, २४७, २४८
पायचन्द सूरि १६१, १६३
पारवतांजी (साध्वी) २४८
पिटरसन साहब १८४
पिस्तांजी (साध्वी) २४५, २४७
पूनमचन्दजी (मुनि) १०४, २४८
पूनांजी (साध्वी) १०७, २४५
पूसराजजी दूगड़ २१४
पूसराजजी (मुनि) १७१, २४५

पृथ्वीराजजी (मुनि) १०४, १७०, १९३, २४५, २४८
पेमांजी (साध्वी) १०७
प्यारचन्दजी (मुनि) १०९
प्यारांजी (साध्वी) १०७, १०९, १६९
प्रतापजी १३६-१३८
प्रतापमलजी (मुनि) २४७
प्रतापांजी (साध्वी) १७०
फतहलालजी मेहता १९४
फतेचन्दजी (मुनि) १७३
फतेहसिंहजी (राणा) १३४
फर्शरामजी कोठारी ६२
फूलकंवरजी (साध्वी) १७२, २४८
फूलचन्दजी (मुनि) १७०
फूलांजी (साध्वी) १०५, १०७, १६९, २२०, २४६
बलदेव १५३
बार साहिब १२०, १२१
बालूजी (साध्वी) २४२, २४७
बिरधीचन्दजी (मुनि) २३६
बींजराजजी पुगलिया २४१
बींजराजजी बैद २४७
बींजराजजी (मुनि) १११
बुधमलजी (मुनि) २४३, २४८
बुधसिंजी चोपड़ा/कोठारी ६२
भगवानजी (मुनि) २४८
भगवानदासजी २०९-२११, २१३, २१४
भट्टोजी दीक्षित १४६
भत्तूजी (साध्वी) २४६, २४८
भागचन्दजी (मुनि) १६९, १७०
भानजी (भानीरामजी मुनि) १०७
भामाशाह १२९
भार (भारीमालजी आचार्य) १७८
भिक्खू (क्षु) भीखणजी (आचार्य) दीपां-जात ६०, ६१, ६६, ७८, ९७, १२९, १६१, १६२, १७९, २०१, २०३, २३९
भी.—भीखणजी १७८
भीखांजी (साध्वी) १७०
भीमजी (मुनि) ७७, ७९, २२६
भूरांजी (साध्वी) १११, १६९
भैरूंदानजी चोपड़ा १८३, १९३, २२७, २३१, २३२
भैरूंदानजी सुराणा २२०
भैरूंसिंहजी २३२
भीमराजजी (मुनि) १७२
मंगतमलजी (मुनि) १७२
मक्खूजी (साध्वी) २४८
मगनलालजी (मंत्री मुनि) ७७, ८२, ८४, ८७-८९, ९३, ९४, ९९, १०६, १३९, १५२, १६७, २०९
मगनांजी (साध्वी) १०९, १७३
मघराजजी मघ, मघवा, (आचार्य) गुलाबभ्रात, जयपटधर, वन्ना-सुजात ६२, ६५-६७, ६९-७६, ८०, ८२, १२१
मघवा-शिष्य (कालूगणी) ६१, २३९
मघवा-सहोदरी (गुलाबांजी) ६६
मघवा-पटधर (माणकगणी) ७६
मधुसूदन १५७
मनसुखांजी (साध्वी) २४३
मनोहरसिंहजी १३३
मनोहरांजी-मनोरांजी (साध्वी) १७१, १७२, २४२, २४३, २४५, २४७, २४८

मन्नालालजी (मुनि) २४६
महात्मा गांधी १५१
महालचन्दजी-मोहनलालजी बैद १५६
महावीर (तीर्थंकर) ज्ञातपुत्र, त्रिशला-नन्दन, त्रिशला-संभव, त्रिशला-सुत, ५६, ११४, ११६, १७६, १७७, २०३
मांगीलालजी (मुनि) १०६, २४५
माणकलालजी (आचार्य) मघवा-पटधर ७१, ७४, ७५, ७७, ७६, ८०, ८२, १४७, १८३, २३६
मानमलजी-सोनमलजी भंडारी १३६
मानसिंहजी १३६
मानांजी (साध्वी) २४३
मान्धातासिंहजी २३२
मालचन्दजी (मुनि) २४४
मालवीय मदनमोहन १२४
मालूजी (साध्वी) १०४, १०७, ११६, १६६, १७०, २४३, २४६
मुक्खांजी (साध्वी) ७६, १०६, १०७
मुलतानमलजी/मत्तू (मुनि) २४२
मूल-किशोर (कालूगणी) ६४
मूलचन्दजी कोठारी ६२, ६५
मूलचन्दजी (मुनि) २४२
मूल-तनय (कालूगणी) ६०
मूल-नन्द (कालूगणी) ६८, १८६
मूल-पुत्र (कालूगणी) ६६
मूल-लाल (कालूगणी) ६४
मूल-सूनु (कालूगणी) ५७
मूलांजी (साध्वी) १०६, १७०, २४८
मेघकुमार (मुनि) २०६
मोतीलालजी (मुनि) १६६, १७३, २४२
मोतीलाल नेहरू १२४
मोहनलालजी खटेड़ १६१
मोहनविजयजी १८५
मोहनांजी (साध्वी) २४५, २४८
मौलांजी (साध्वी) १०८
मौली (कालूगणी) ६६
रघुनन्दनजी (आयुर्वेदाचार्य) ८५, १४०-१४५, १७३
रघुनाथजी (स्था. आ.) १८०
रणजीतमलजी (मुनि) २३२, २३५, २३६
रतनकंवरजी (साध्वी) २४८
रतनांजी (साध्वी) १३३, १६६
रतनी बाई २३६, २४०
रमकूजी (साध्वी) १०५, १७२
राजकंवरजी (साध्वी) २२०, २४६
राजांजी (साध्वी) १७१
राणाजी हरिसिंह चौहान २३३, २३४
रामचन्द्रजी (मुनि) १७०
रामजी (मुनि) २४८
रामसुखजी (मुनि) २४२
रामू-कनियो (रामेश्वरदास-कन्हैयालाल) १५३
रामूजी (साध्वी) २४८
रायकंवरजी (साध्वी) २४३, २४७, २४८
रायचन्दजी (आचार्य) ६२
रायचन्द (शशि) जी सुराणा ८४, ८५, १८५
रावतमलजी (मुनि) २४२
रावतमलजी यति १४०-१४४
रावतमलजी सेठिया १२०, १२७
रिखिरामजी (मुनि) १०६, २२७, २४०
रुकमांजी (साध्वी) १०६

रूपचन्दजी सेठिया ८४, ८८, ८६, १२०
रूपां जतणी १८०
रूपांजी (साध्वी) १०४, १०६, २४५
रूपो-चम्पो (रूपाराम-चम्पालाल) १५३
रेंवतमलजी नाहटा २१६
रौहिणेय १७७
लच्छीरामजी बैद ८८
लच्छीरामजी (मुनि) १०६, २४०
लम्बोदरजी (गणेशीलालजी) २११
लाट साहिब १२७
लाडांजी (साध्वीप्रमुखा) १६१
लाधूजी (साध्वी) २४६
लिखमीचन्दजी (मुनि) २४४
लिछमणदासजी दूगड़ २४०
लिछमांजी (साध्वी) १०४, १७०, १७१, २४३, २४४, २४७, २४८
लीलाधरजी (मुनि) १११
वदनमलजी बांठिया २१४
वन्नां-सुजात (मघवागणी) ७२
वर्धमान (महावीर) ५६
विजय २३६
विजयधर्मसूरिजी १३३
विनायकजी (गणेशीलालजी) २१३, २१४
विरधांजी (साध्वी) १०६, २४६
वीर (महावीर) ५६, ७४, ६८, ११६, ११६, १३३, १६७, १७६, १८०, १८७, २१३, २१४, २२४, २२६
वृद्धिचन्दजी गोठी १२७
वृद्धिचन्दजी (मुनि) १६६
वेश्यायन (तापस) २२३
शंकराचार्य १३३
शक्तमल्ल (मुनि) ८६, १५६
शांतिनाथ (तीर्थंकर) ५६
शाकरजी (मुनि) १११
शारदा १७७
शार्दूलसिंहजी १८१, २३६
शिवनाथसिंह १३२
शिवराजजी (मुनि) १२६, १६६, १७३
शीलांकाचार्य १६३
शुभकरणजी (मुनि) २४८
शोभाचन्दजी ६४
शोभाचन्दजी (मुनि) १६६, २४५
शोभाचन्दजी बेंगाणी ६६
श्रीचन्दजी गधैया १२०, १२७, १८७
श्री (सिरि) लालजी (स्था. आचार्य) १३३, १६८
संतोकां (खां) जी (साध्वी) १०६, १७१, १७२, २४३, २४४, २४८
संपत (मुनि) २४८
सजनांजी (साध्वी) २४६
सन्तलाल उमरिया १५३
समेरमलजी (मुनि) २४६
सिरेकंवरजी (साध्वी) १०७, २४३, २४४, २४७
सिरेमल्लजी (मुनि) १११
सुंदरजी (साध्वी) १७१, २४४, २४६-२४८
सुखदेवांजी (साध्वी) १७०
सुखलालजी (मुनि) १०७, १०६, २३२, २३५, २४१
सुखवीरसिंहजी १२३-१२७
सुखांजी (साध्वी) ११०
सुगनचन्दजी (मुनि) २४४
सुगनांजी (साध्वी) २४५, २४८
सुपारसमलजी (मुनि) १७२

सुमेरमलजी बोथरा १६७, १८१
सुरजांजी (साध्वी) १७२
सुवटांजी (साध्वी) १०५, २४६, २४८
सूरजमलजी (मुनि) १७२
सेंसमल्लजी/संहसमलजी (मुनि) १०६, १७३
सेढू (सेढूराम) १५३
सेरांजी (साध्वी) १७१
सोनांजी (साध्वी) १०६, १७१, १७३, २४६
सोहनलाल़जी दूगड़ १८५
सोहनलालजी (मुनि) १०७, १७०, २२६, २३२, २४५, २४६, २४८
सोहनांजी (साध्वी) १०६, २४४, २४७
स्वरूपचन्दजी (मुनि) २८०
हगामीलालजी (मुनि) २४६
हजारीमल़जी (मुनि) १०५
हजारीमलजी रामपुरिया १६२
हनुमानमलजी (मुनि) २४८
हमीरमलजी १७०, २१६, २४८
हरकंवरजी (साध्वी) २४३
हरखचन्दजी भंसाली २१८
हरखचन्दजी (मुनि) २४३
हरखचन्दजी सुराणा २२०
हरखूजी (साध्वी) १११
हरिनन्दन १४६
हर्मन जेकोबी (याकोबी) ११६-११६, १७३
हस्तीमलजी (मुनि) १७३, २४२
हीरांजी (साध्वी) १०६, ११०, २४४
हीरा (रो) लाल (मुनि) १७०
हीरालालजी मुरड़िया १३४
हुलासमलजी नाहटा २१६
हुलासमलजी (मुनि) ११६, १६६
हुलासांजी (साध्वी) १०८, १२६, १६६, २३३, २४४
हेमराजजी (मुनि) १०६, २०८

ग्राम-नाम

अजबोजी का गुड़ा १३६
असोतरा १०६
आउवा १३६
आतमा (त्मा) १३५
आबू १८५
आमेट १३२
आरज्या १३०
आषाढ़ा १३६
आसींद १२७
इटली १४०
इलाहाबाद १२१, १२४, १२५
उचाणामंडी १४८
उदयपुर ६६, ७६, ८४, १३३, १६६, १७०, १६४
उदासर २३२
उमरा १४६
कंटालिया १३५, १३६
कच्छ ८१
करणपुर १०४
कवास ८४
कसूण १४८
कांकरोली १३३
कांठा १३५
कानोड़ १३५
कालू २३३

काशी १५७
कुडर १०५
कुरड़ी १५५
कूचामण १८४
केलवा १३५
कोटासर ६२, १०६
कोथ १४८
कोयल १३५
खाटू १११, १२३
खानदेश २३२
खापड़ा १४८
गंगापुर १२७, १२८
गंगाशहर (गंगाणा) १५९-१६१, १६७, १७०, १७२, १७३, १९३, २२७, २३१, २३२, २४४-२४८
गढ़बोर १३५, १७१
गिरिगढ़ (डूंगरगढ़) ६५, १०५, १०६, १४५, १५९, १६०, १९४, १९९, २३१, २३४
गुर्जर (गुजरात) २३३
गोगुन्दा १०५, १६९
चतरोजी का गुड़ा १३६
चन्देरी (लाडनूं) ६५, ६६, ६८, ८५, ८७, ९६, १०४, १०८, ११०, १२१, १५७, १८६, २२६, २४३, २४६, २४८
चाड़ (रु) वास/चंगाणा ६८, १०६, २१८, २४१, २४४, २४६
चाणोद १३६
चातुरगढ़ (दुर्ग) (सुजानगढ़) ८८, १००, १२२, १५७, १७१, १७३, २२६, २४४
चारभुजा १३५
चित्तौड़ १२८, १३०
चूरू ७०, ७५, ८४, १०५-१०७, १०९, १४०-१४५, १४८, १७१, १८५, २०७, २०९, २११, २१३, २१४, २२०, २२२, २२४, २२९, २३४, २३६, २४३, २४७, २४९
चोबार्यां १३६
छातर १४८
छापर ६२, ६५, ६८, १०६, १०८, १५६, १९२, २१८, २१९, २३४, २३५, २४६
छापल्या १३५
जमालपुर १४९
जयपुर ५६, ७०, ७५, १७२, १८३, १८४, २४५, २४९
जर्मन ११६
जसोल ८४, १०४, १३९, १७०
जावद २३५
जीतपुरा १५६
जीलवाड़ा १३५
जोजावर ६६, १३५
जोधपुर/जोधाणा ६६, ८४, ११६, ११९, १२०, १२३, १२४, १३९, १७०
जोबनेर १४८
झाग १८५
टमकोर १४८, १७१, २३६, २४७
टाटगढ़ १३२
टापरा ८४
टुहाणा १४८
डाबड़ी १५५
डीडवाणा १८४
डूंगरगढ़ ६२, ६५, ६८, १०७, २३१,

२३२, २४१, २४६-२४८
डेगाणा १२३
ढंढेरू ६२
तारानगर २४८
तासोल १३५
तोषाम १४६
थली ८४, ६४, १५५, १६५-१६६, २००, २२८, २३३
थैलासर १८६, २२२
दक्षिण भरत ६१
ददरेवा १४८, २३८
दिल्ली १२७
दीवेर १०५, १०६, १३५
देवगढ़ १०४, १८६
देशनोक ११०, २३१
दोलतगढ़ ६६, १२७, २४६
धाकड़ी १३६
धीनावास १३६
नगुरा १४८
नाथद्वारा १३३, १६६
नाल १६४
नृपगढ़ (राजगढ़) १७१, २३६, २४८
नोहर १०५, १५६, १७२, २४७
पड़िहारा ६५, १५६, १६२, २१८, २२०, २३४, २४६
पचपदरा १३६, २४२, २४४
पटुगढ़ (सुजानगढ़) १०५, १७०, २४५, २४६
पराली १३५
पहुना १०६
पाली ८४, १३५, १४६, १७०
पीतास १३०
पीथास १०६
पीपलांतरी १३५

पुर १६६
पूठोल १३५
फतेपुर १८६, २२१, २३६, २४२
बगड़ ८४
बगड़ी १३६
बड़ा गुड़ा १३६
बड़ू १६६
बड़ोदा १४८
बरार १०६
बलिचंचा २२३
बागोर १३०, १६६, १७०
बाड़मेर ८४
बालसमंद १५५
बालोतरा ८४, १३६, १७०
बाव २३३
बीकानेर/बीकाणो/बीकायत ६२, ६८, १००, १०५, १११, १५६, १६०, १६४-१६८, १७८, १८२, १८६, १६३, १६४, १६६, १६८, २०८, २१४, २३१, २३२, २३६, २४२, २४५, २४६
बीठोड़ा १३६
बीदासर/बीदाणो/बीदायत ६६-६८, ७५, ८२, ८४, ८५, ६१, १०१, १०५-१०७, ११०, १११, १२३ १३६, १४५-१४७, १५७, १५६, १६०, १६६-१७२, १८५, १८७, १८६, २१७, २१८, २२६, २३१, २३४, २४१, २४२, २४४,

२४६-२४८
बेमाली १६६
बोरज १३५
बोराणा १६६
बोरावड़ १०६, १८५, २४३

ब्यावर १२३, १२६, १२७, १६६
भाणा १३५
भादरा (द्रा) १५६, २४४, २४५
भारत ११६, १२३
भिवानी (णी) १४६-१५३, १५५, १७०, १७२
भीनासर १६१, १६४, १६८ १७३, १६४, १६८, २३१, २३२
भीलवाड़ा १३०
मकराणा १८५
मजेरा १३५
मथुरा १५७
मरुधर ६५, ८४, १२०, १७३
मरुस्थल ६१, ६२, ११७
मांढा १३५
मारवाड़ ६६, ६४, १२३, १३५
मालवा १३४, १३५
मालाणी ८४, २४२
मुकसदाबाद १३६
मुजफ्फरपुर १२३
मेवाड़/मेदपाट ६६, १२२, १२३, १७३, २४२
मोई १३५
मोखुणदा १३०
मोठ १४६
मोमासर ६५, १०५, २३४, २४३, २४४, २४८
यू. पी. १२३, १२४, १२७
यूरोप १२७
रतनगढ़ (दुर्ग) ६५, ७०, १०६, १०६, १८७, २१४, २३६, २४०
राजगढ़ (दुर्ग) १४८, २४२, २४५, २४६
राजनगर (समन्द) १३३, २४७
राजलदेसर/राजाणा ६५, ८४, १०५-१०७, ११०, १३३, १४५, १४६, १५६, १७२, १७३, १८३, १६२, २१५, २२६, २२७, २३४, २४०, २४१, २४४, २४६, २४७
राणावास १३५, १३६
रामगढ़ १८६, २२१, २३४
रामसर २३१
रामसिंहजी का गुड़ा १३५, १३६
रायपुर १३०
राशीसर २३१
रीछेड़ १३५, १७०
रीणी (तारानगर) १०५, १४८, २३८
रूणियावास २३३
रेलमगरा १३५
लाडनूं (णूं) ६५, ६६, ६८, ७६, ८१-८३, ८५-८७, ६०, ६६, ११०, ११६, ११७, १२१, १३६, १६६, १७१, १७२, १८६, १६४, २२०, २२७, २३५, २३६, २४४, २४५
लुहारी १४६
लूणकरणसर २३३, २४८
वसुगढ़ (रतनगढ़) १०५, १०६, १४६, १५७, १७२, २२०, २३४
वायतू ८४

वास २४२
वृन्दावन १५७

शिमला १८७, २३७

समदड़ी १३६
सरदारशहर ५६, ६५, ६८, ७०, ७५, ८३, ८५, ८७, १०५, १०७, ११०, १३६, १४५, १४७, १५६, १७०-१७२, १८७, १६६, २०७, २१४, २२४, २२५, २३०, २३४, २३८-२४०, २४२, २४३, २४६-२४६
स (सि) रसा १०८, १५६, २४३
सांभर १८५
साजनवासी १७३
सायांखेड़ा १३५
सार्दुलपुर २३८
सिणोदिया १८५
सिरियारी १३५, १३६
सिसाय १४६, १६६, १७३, २४६

सुजानगढ़ ६८, ७५, ७७, ८४, ६०, ६६, १०६, १०८, ११०, १४६, १६२, २१७-२१६, २२७, २४२, २४५, २४७
सुधरी/बगड़ी १३५, १३६
सुलतानपुर १४६
सूरपुर २३१
सोजत रोड़ १३६
हरनावां १७२
हरियाणा ७५, १०६, १४७, १४८, १५५, १५७, १७२, १७३, २४४
हांसी ७५, १४६, १५५, १७२
हिंदुस्तान ११६, ११६
हिसार १४८, १७२

ग्रन्थ-नाम

अनुकम्पा-पंथ २२८
अनुकम्पा-विचार २२८
अभिधान चिन्तामणि ८५
अष्टाध्यायी १४७
आचारांग ११६, ११८, २२४
आचार्य-चरितावलि ७२
आयारचूला ११८, १३१
उत्तराध्ययन (ज्झेण) ८५, ६७, ११६, २२२
उपासकदशा १६१
कौमुदी १४६, १४७
चन्द-प्रबन्ध १८५
चर्पट-मंजरी १५८
ठाणांग २०६, २२३
डालिम-चरित्र ८३, ६३
तेराद्वार १३०
तेरापंथ का इतिहास १८२
त्रिमुनि व्याकरण १४६
दशवैकालिक ६८, ११६, ११८,२२६
दसवेआलिय चूलिआ ११८
नन्दी सूत्र ८५, २३१
नवपदार्थ री जोड़ १२६
पच्चीस बोल ६६
पड़िकमणो (प्रतिक्रमण) ६७, ८०, ६३, १६१
पन्नवणा ११८

पानां की चरचा ६६
बारह व्रत चउपाई १६१, १६२
बृहत्कल्पभाष्य २२३
भगवती १००, १२६, १३०, १३६-१३८, १६२, १६३, १८५, २०६, २०७, २१५
भगवती वृत्ति (अभयदेवकृत) १३८
भागवत १५८, १५६

भ्रम-विध्वंसन १३६, १३८, १८३, २१०, २२८
मगन-चरित्र ८४, ८८
मघव-सुयश ७२
महानिशीथ २३२
महाभारत २२२
माणक-महिमा ७६
राजगजट ११६-१२१, १८२
रामचरित्र ८६, ६७, २१६
व्यवहार सूत्र २१०-२१२
श्रीधरी वृत्ति १५६
सद्धर्ममंडन २२८
समवायांग २१०
साधु शतक १४५
सारस्वत व्याकरण ८४, १२१
सिद्धान्त-चन्द्रिका २१६, २२६
सिद्धान्तसार १३६, १३८
सिन्दूर-प्रकर २२६
सूत्रकृतांग-वृत्ति १६३
सूयगडांग १६३
स्थानांग टीका (अभयदेवकृत) २२४

३. ग्रन्थ में प्रयुक्त मूल रागिनियां

उल्लास/ढाळ

१/१ म्हारै रे पिछोकड़ बाह्यो रे कुसुम्भो,
जे कोइ चुगवा आवै रे, कुसुम्भो।।ध्रुवपद।
चुगती चुगाती जोयड़ होई रे तिसाई
जे कोइ पाणिड़ो पावै रे, कुसुम्भो।।

१/२ जय जय जय जिनजी नै नमूं रे नमूं।।
नमूं रे नमूं हूं तो घणी रे खमूं।। जय जय जय जिनजी नै...
पदम प्रभू जिनजी ने प्रणमूं, नीचो शीश नमाई।
कच्छ देश कोसम्बी नगरी, धर नरपति सुखदाई।।

१/३ कांय न मांगां, कांय न मांगां, कांय न मांगां जी,
राणाजी ! मांगां पूरण प्रीत, बीजूं कांय न मांगां जी।।ध्रुव.
हाथी न मांगां, घोड़ा न मांगां, नहिं मांगां राज-पाट।
उदियापुर रो वास न मांगां, मांगां पिछोला रो घाट।। म्है तो कांय...

१/४ जय जश गणपति वन में आया, राय सुणी हरसायो रा। सुगणा !
नृपति सेठ वीरदत्त जैवन्ती दरसण कर सुख पायो रा।
सुगणा स्वाम वंदीजै
सरस वाण सुणीजै रा, सुगणा ! स्वाम वंदीजै।
संवेगरस पीजै रा, सुगणा ! स्वाम वंदीजै।
पर्युपास तास कीजै रा, सुगणा ! स्वाम वंदीजै।।

अन्तर ढाळ

१/४ मतिमन्त मुणी ! सुकुलीणी श्रमणी ! गुरु-शिक्षा धारिये।
पश्चिम रयणी, ऊठ-ऊठ अक्षर-अक्षर संभारिये।। ध्रुव.
मुनि पंच महाव्रत आदरिया, तजि धण कण कंचन परिवरिया।
मनु कंचन गिरिवर कर धरिया।। मतिमन्त मुणी !

१/५ मूक म्हांरो केड़लो मैं ऊभी छूं हजूर रे।

१/६ डाभर नैणी रे। ध्रुव.
कोरो कळसो जल भर्‌यो कांइ धरती शोष्यां जाय।
बालु रे दिक्खण री चाकरी म्हांरो पिउ तिरसायो जाय।।

१/७ पुण्यसार सुख भोगवै रे, आठ नारी संघात।
कमी नहीं कोई बात नी रे, हर्ष मांही दिन जात। दुख गयो विलाई रे।।
देखो पुण्यसार नीं प्रबल पुन्याई सहु मन भाई रे।
भाई भाई भाई रे या लोक सराई रे। देखो...

१/८ राजिमती इम विनवै हो मुनिवर ! मन चलियो तूं घेर,
थोड़ा सुखां रे कारणे हो मुनि ! क्यूं हारे नर भव फेर हो।
सुण-सुण साधजी हो मुनिवर !
पांच महाव्रत आदर्‌या हो मुनिवर ! मेरू जितरो भार।
वमिया री बांछा करो हो मुनिवर ! लीधो संजम भार।। क सुण-सुण...

अन्तर ढाळ

१/८ गहरो जी ! फूल गुलाब रो...
सात सहेल्यां रै झूलरै, म्हारी गवरल गइ रे तळाव, राठोड़ !
गहरो जी फूल गुलाब रो।
और सहेल्यां पाछी बावड़ी, म्हारी गवरळ रही रे तळाव, राठोड !
गहरो जी फूल गुलाब रो

१/९ विनय ! निभालय निजभवनम्।
तनु-धन-सुत-सदन-स्वजनादिषु, किं निजमिह कुगतेरवनम्।
विनय! निभालय निजभवनम्।।ध्रुव.।।

येन सहाश्रयसेऽतिविमोहादिदमहमित्यविभेदम्
तदपि शरीरं नियतमधीरं त्यजति भवन्तं धृतखेदम्।। विनय!

१/१० भविकां ! मिथुन उपर दृष्टंत कहै जिन शान्ति जी रे लोय ! ध्रुव.
भविकां ! विषय न सेवो बिरुवो दुखदायी घणो रे लोय !
भविकां ! क्षेत्र भरत मां नलपुर नयर सुहामणो रे लोय ! भविकां...

अन्तर ढाळ

१/१० स्वामीजी ! थांरी बा मुद्रा जग ख्यात।
५/१५, ६/६ वज्रासन में बैठा दीपो, हो जोड़्यां जुग हाथ।।स्वामीजी ! ध्रुव.
शान्तमना अश्रान्त मनोबल, नत कंधर स्थिर गात।
मुद्रित-लोचन संकट-मोचन, मंगल परम प्रभात।। स्वामीजी !

अन्तर ढाळ

१/१०,१/१३ कीड़ी चाली सासरै रे, मण-मण काजल सार।
२/४ आधो काजल घूंघटे रे, आधो काजल बार।।
करेलण घड़ दै ए। तुं तो घड़ दै नी असल गिंवार, करेलण घड़ दै ए।।

१/११ वीरमती कहै चंद नै, वैसी नै एकत्र।
चिंता रखे धरतो किसी, हूं छूं तांहरै छत्र।। वीरमती कहै चंद नै...

१/१२ भूमीश्वर अलवेश्वर कानन फेरै तुषार।
वन श्वापद करया आकुला, तरु-तरु थया असवार।। भूमीश्वर...

१/१४ आज आनन्दा रे। ध्रुव.
शुभ वेळा शुभ मुहूर्त्ते, आनन्दा रे, जायो सुत जयकार क। आज आनंदा रे!
नृप सुण तन मन हुलस्यो, आनन्दा रे, दीसे बधाई सार क।।
आज आनंदा रे।।

१/१५ सायर लहर स्यूं जाणै जी मींडक कूप नो,
कुबज्या सुपरिणामे जी गुण रती रूप नो।
नाळेरां नहिं दीठा जी थळिया बापड़ा,
तस दाढ़े लागै मीठा जी काचर चीबड़ा।।

१/१६ जिण मारग में धुर स्यूं आदि जिणंद क,
त्यां आदि काढी जिणधर्म री जी।
त्यांरी सेवा सारे सुर नर चौसठ इन्द्र क,
त्यां सारां पेली संजम लियो जी।।

२/१, २/११ म्हारी रस सेलड़ियां, आदीसर कीन्हो उत्तम पारणो।
१/५ ल्यो अखै तीज दिन, पोतो श्रेयांस कुमार उधारणो। म्हारी रस...ध्रुव.
गृह समाज अरु राजनीति तज, धर्मनीति पथ ध्यावै।
बारै माह री विकट तपस्या, सुण मन विस्मय पावै जी।। म्हारी रस...

२/२ तू तो पल-पल राम समर रे, सुख पासी रे जिवड़ा!

२/३ हेम ऋषी भजिए सदा रे। ध्रुव.
मुनिवर रे उपवास बेला बहुला किया रे,
तेला चोला तंत सार हो लाल।
पांच-पांच ना थोकड़ा रे, कीधा बहुली बार हो लाल।। हेम ऋषी...

२/४ हां रे हूं तो इचरज पामी स्वामी वचने ताम जो,
पूरब किहां ए आभा नगरी किम भणै रे लोय।
हां रे ए तो आया पश्चिम दिशि थी किहां नृप चंद जो,
जाण्यो मैं एह आगल कही होशे किणे रे लोय।।

२/५ पुण्य रा फल जोइजो। ध्रुव.
साधु श्रावक व्रत पाल नै रे, देव हुओ अभिराम।
महले देवी मोह्यो चिंतवै रे, रखे चवां इण ठाम रे।। पुण्य रा...

२/६ नमूं अनन्त चौबीसी ऋषभादिक महावीर।
आर्य क्षेत्र मां घाली धर्म नों सीर।।
महा अतुल बली नर शूर वीर नैं धीर।
तीरथ प्रव्रतावी पोंहता भव जल तीर।।

अन्तर ढाळ

२/६ सुमतिनाथ सुमता पथ दाता।

२/७ जंबू ! कह्यो मान लै रे जाया ! मत ले संयम भार। ध्रुव.
अै आठूं ही कामणी जंबू ! अपछर रै उणिहार।
परणी नै किम परिहरो, ज्यांरो किम निकलै जमवार।। जंबू !...

२/८ भजिये निशदिन कालु गणिंद। ध्रुव.
भिक्षू-शासन अधिक विकासन, अष्टम आसन धार।
कालु कलिमल-राशि-विनाशन प्रगट्या जगदाधार।। भजिये...

अन्तर ढाळ

२/८ एक दिवस विषे नृप सुत साथ चौगाने धन्नो आवै
अति रंग रसे, बहु जन-वृन्द सुपेखत मेष लड़ावै।। एक दिवस...ध्रुव.
उभय मेष तिहां आहुड़िया, जुद्ध करण सम्मुख जुड़िया।
कांई आपस में अति ही लड़िया।। एक दिवस...

अन्तर ढाळ

२/८ तावड़ा ! धीमो पड़ज्या रे २
म्हारी धण रो दूखै पेट सूरज बादल में छिपज्या रे, तावड़ा...ध्रुव.
राजन चाल्या चाकरी स रे, खांधे धरी बंदूक।
के तो सागे ले चलो, के कर डारो दो टूक।। तावड़ा...

अन्तर ढाळ

२/८ ऐसो जादूपति।
२/९ डाभ मुंजादिक नीं डोरी, बंधिया करै हेला नै सोरी।
सी तापादिक कर दुखिया, साता बांछै जाणै हुवा सुखिया।।

अन्तर ढाळ

२/९ कुंवर ! थांस्यूं मन लाग्यो, मन लाग्यो अंतर जाग्यो।
निरखूं अपलक नैण रे, कुंवर थांस्यूं मन लाग्यो। ध्रुव.

चकरी ज्यूं चितड़ो भमै रे 2 खिण-खिण आठूं याम रे। कुंवर !
के जाणै कांई हुयो रे 2 भूली सगला काम रे।। कुंवर !

अन्तर ढाळ

२/१०, ४/६ धन-धन भिक्षु स्वाम, दीपाई दान दया।
सावद्य निरवद्य छांट कृपानिधि कीधी मया।
कीधी मया जी बहु जीव तिरया,
त्यांरी साची सरधा धार भविक बहु उद्धरिया।।

२/१०, ५/६ आदिनाथ मेरे आंगण आया देखो भाग्य सवाया जी।

अन्तर ढाळ

२/१०, ५/९ सुखपाल सिंहासण लाज्यो राज, सुगणजी !

२/११ बगीची निंबुवा की,
आतो झुक-झुक झोला खाय। बगीची निंबुवा की। ध्रुव.
जयपुर कै बाजार में, कांई पड़्यो पेमली बोर। बगीची...
नीची होय उठावतां, काई पड़्यो कमर में जोर।। बगीची...

अन्तर ढाळ

२/११, ६/८ चालो बाबाजी घर आपणे हो राज
थांने माताजी री आण, थांने दादीसा री आण।
अब थे करो न खींचाताण, चालो बाबाजी घर आपणे हो राज।।ध्रुव.
बोले बालक बोलड़ा रे, मण-मण मीठा बोल।
गळे लटुंबै मोद में दाढ़ी स्यूं करै किलोळ।। चालो...

२/१२ प्रीतमजी ! हिव तुम वेग पधारो। ध्रुव.
वन में तजी अकेली, मैं समझी नहीं पहेली हो। प्रीतमजी !...
नैणां स्यूं नीर बहावूं, मिरगली ज्यूं चक्कर खावूं हो।। प्रीतमजी!...

अन्तर ढाळ

२/१२ सीपय्या ! तेरी सांवरी सूरत पर वारी।
सासुजी रै जंवायां री मरोड़ लागै प्यारी।। ध्रुव.
टोपी राज नै सोहवै फेंटै री छबी न्यारी।
म्हांरी राजकुंवर रै ढ़ोलै री मरोड़ लागै प्यारी।
मरोड़ लागै प्यारी, थारी सूरत पर बलिहारी।
सासूजी रै जंवाया री मरोड़ लागै प्यारी।।

२/१३ जिण घर जाज्ये हे नींदड़ली, जे धाप-धाप अन खावै।
जे भांगां धणी घुटावै, ज्यांने राम नाम न सुहावै।। जिण घर...ध्रुव.
मैं तने निद्रा बरजियो, तूं संतन के मत जाय।
कोई क मोडो मारसी जद आसी मूंड फुड़ाय।। जिण घर...

२/१४ धीठा में धीठ म्हें कहा बिगाड़्या तेरा।
निरलज्ज नरेश्वर ! पला छोड़ दे मेरा।। धीठा में...ध्रुव.
परणी बिन पर तरुणी बांछ्या इह भव अपजस होवै।
जी... जन्म बिगोवै बलि अति रोवै मानव नो भव खोवै।। धीठा में...

अन्तर ढाळ

२/१४, ३/८ रूठ्योड़ा शिव शंकर म्हारै घरे पधारो जी।

२/१५ निमित नहिं भाखै गुरु ज्ञानी, हुवै जिम संयम की हानी।। ध्रुव.
जैन मुनि सावज नहिं भाखै, महाव्रत यतना सूं राखै,
सुधारस संयम को चाखै, मुक्ति के सुख की अभिलाखै।
निमत भाखणो साधु नै कलपै नहीं लिगार,
वीतराग भगवान परूप्यो अनरथ हुवै अपार,
सुणो मन थिर कर भवि प्राणी।। निमित नहिं...

३/१, ३/१२ चंडाली चोकड़िया हो टाळोकर चाळा चाळव्या,
दुर्मति कुमती कीयो रे प्रवेश।
क्रोध भुजंगी पेठो हो टाळोकर रा घट मझै,
समकित चारित्र खोवै करी कलेश।

दुर्गति केरी साई हो टाळोकर पक्की ले लीधी,
आल पंपाळज बोलै हो, टाळोकर लज्जा तज दीधी।।

* महिला रो मेवासी हो लसकरियो चाल्यो चाकरी।

३/२ पायल वाली पदमणी, हे नाजु म्हारी गलियन मत आव।
थारी पायल बाजणी, है म्हारे आलीजा रो बुरो स्वभाव।।

अन्तर ढाळ

३/२, ३/१३ सुणो भव्य प्राणी रे !
चंद नरिंद संबंध, सरस चित ठाणी रे।। ध्रुव.
राजा राणी रंग में रे खेलै अनोपम खेल।
नवली दीठी नारियां तिहां शशि वदनी गज गेल।। सुणो भव्य...

३/३ सहनाण पड़्यो हथलेवै रो हिंगळू माथे में दमकै ही,
रखड़ी फेरां री आण लिया गमगमाट करती चमकै ही।
कांकण डोरा पैरां मांही, चुड़लो सुहाग लै सुघड़ाई,
मैंहदी रो रंग न छूट्यो हो था बंध्या रह्या बिछिया पांही।।

अन्तर ढाळ

३/३ रूड़ै चन्द निहालै रे नवरंग नारी चेष्टा। ध्रुव.
राणी नव पल्लव नव कुसुमां निरखै तिहां वनराजी।
ते शोभाये सुरपति नो वन ऊर्ध्वलोक गयो लाजी।। रूड़ै...

अन्तर ढाळ

३/३ बायो गुलाबसाही केवड़ो।
केवड़े री छबी गुलजार, म्हांरा बनड़ा ! बायो गुलाबसाही केवड़ो।। ध्रुव.
नवल बनै रे व्याव में रूंखड़ला सराइजै,
सूंखड़ला में केवड़ो है तेज, म्हांरा बनड़ा ! बायो गुलाबसाही केवड़ो।।

अन्तर ढाळ

३/३ सैणां थइये जी रे। ध्रुव.
पूर्वे गणि आज्ञा थी धार्‌या, पंच महाव्रत जाणी जी रे।
हिवड़ा पिण सिध अरिहंत गणि नी साख करी पहिछाणी रे।। सैणां–

३/४ वारू हे साधां री वाणी।

अन्तर ढाळ

३/४ रच रह्यो ज्ञान ज चरचा स्यूं।

अन्तर ढाळ

३/४ जय बोलो, जय बोलो, नेम जिनेश्वर की, अखिलेश्वर की।
जय बोलो...ध्रुव.
तोरण स्यूं ही पाछा मुड़ग्या, बात सुणी जद हिंसा री। जय बोलो...
मोह मार बणग्या वैरागी, छोड़ी राजिमती नारी।। जय बोलो...

अन्तर ढाळ

३/४ चालो सहेल्यां आंपां भैरूं नै मनास्यां हे।
भैरूं नै मनास्यां आपां मन रा कोड पुरास्यां हे।।

३/५ मत ना सिधारो पूरब की चाकरी जी, ध्रुव.
बाय चढ्या छा भंवरजी पीपली जी,
हो जी ढोला होय रही घेर घुमेर।
सींचण री रुत चाल्या चाकरी जी,
हो जी म्हारी सास सपूती रा पूत।। मत ना सिधारो...

अन्तर ढाळ

३/५, ५/१२ पिउ पदमण नै पूछै जी, हाथ लगाई मूंछै जी।
सुत नों कारण स्यूं छै जी,
हूं परदेशे गयो थो मुगधे। किम ए प्रसव्यो बाल?
पिउ पदमण नै पूछै जी।।

३/६ प्रभुवर ! आवी बेळा क्यारे आवशे,
क्यारे थइशुं बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथ जो।
सर्व संबंध नुं बंधन तीक्ष्ण तोड़ी ने
विचरशुं क्यारे महापुरुष ने पंथ जो।। प्रभुवर !

अन्तर ढाळ

३/६ आज म्हारै स्वामीजी रे वर्षी रो दिन आयो रे
हो अंतर आलोयणा।
आज अपणै गुरुवरजी रो वर्षी रो दिन आयो रे,
देखां अंतर लोयणां।
राजनगर में भणतां धुर में उघड़ी अंतर आंख्यां रे,
'सीए दाहे' री रातड़ी।
सोजत बगड़ी बड़लू झांका जोधाणे री झांक्या रे,
बड़ी विलक्षण बातड़ी।।

* लाग्यो लाग्यो जेठ अषाढ़ कंवर तेजा रे,
लगतो तो आयो सावण भादवो।
मोटी-मोटी बूंद पड़ै है कुंवर तेजा रे,
जोड़ा निवाण पाणी स्यूं भर्‌या,
जागो-जागो नींद रा निंदाल कंवर तेजा रे,
थारा साईना बौवे बाजरो।।

अन्तर ढाळ

३/६ म्हांरा लाडला जंवाई कुत्ती पाळ लीज्यो जी
इण कुत्ती री पूंछ, जाणै सगोसा री मूंछ।
मूंछ मरोड़ लीज्यो जी, म्हांरा लाडला व्याहीसा कुत्ती पाळ लीज्यो जी।।

३/७, ४/७ आज्या आज्या हे नींद नैणां में घुळज्या,
५/२ लाडू जीमज्या ए नींद भूखी मत जा। आज्या...ध्रुव.
चंदा थारे च्यानणे जी कोई डागल घाली खाट।
गया ए न साजन बावड़्या कोई रात्यूं जोई बाट।। आज्या-आज्या हे...

अन्तर ढाळ

३/७ झड़ाकै छोड़ी हो बाला।
लाग्यो वचन रो तीर टूटग्या त्रटक मोह रा ताला।। झड़ाकै छोड़ी...ध्रुव.
सुण बालम री बात सुभद्रा बणी अणमणी बोली।
कीड़ी पर कटकी न करो पिऊ मैं तो अबला भोली।। झड़ाकै छोड़ी...

अन्तर ढाळ

३/७ कोरो काजळियो। (ध्रुव.) (खोटो लालचियो)
काजळ भरियो कूंपलो, कोई पड़्यो पलंग अध बीच। कोरो काजलियो।
म्हें थांने बरजूं साहिबा ! कोई उन्हालै मत आय। कोरो काजलियो।
उन्हालै री रुत बुरी, कांइ रात्यूं खटमल खाय। कोरो काजलियो।।

३/८ नींदड़ली हो वेरण होय रही। ध्रुव.
थाने सतगुरु देवै छै सीखड़ी, जागो जागो हो कोई भव जीव क।
निद्रा प्रमाद नै वश करी, जीव देवै हो नरकां नी नींव क।।
नींदड़ली हो वेरण होय रही।।

३/९, ४/७ दुलजी छोटो-सो। ध्रुव.
बड़ का पान बड़ाबड़ बाज्या,
म्हांरै दुलजी मांड्यो रे हिंडाळो रे, दुलजी छोटो-सो।।
आंवता बटाऊ और जांवता बटाऊ
म्हांरै दुलजी नै झोटो देता जाई रे, दुलजी छोटो-सो।।

अन्तर ढाळ

३/९ देखो रे भाई ! कलजुग आयो दुनिया पलटी जाय छै।।
आगे धोळा आयां पछै संयम स्यूं चित्त ल्याय छै।
अबै धोळा आयां पछै फेर परणवा ज्याय छै।। देखो रे भाई...

३/१०, ४/८ डाल गणी रै पाट विराज्या भान ज्यूं।
*सुण-सुण सौभागी
जगदम्बा गुरु-अंबा री गुण भम्भा बाजै रे।

कानकुंवर जी संगे छोगांजी सती रे,
विचरै परम उमंगे तन-मन रंगे रे। सुण...
मारवाड़, मेवाड़ मालवै देश में रे
नव-नव रंगी जंगी झंगी लंघे रे।। सुण...

३/११ बधज्यो रे चेजारा थारी बेल, चेजारा थारी बेल,
अनोखो माळियो तें चिण्यो जी म्हारा राज! ध्रुव.
माळिये पोढै सुसराजी रा सींव
छाजां पर सूरज ऊगियो जी, म्हारा राज!

अन्तर ढाळ

३/११ राम रट ले रे प्राणी! सुण संतां री अनुभव वाणी।
घट रह्यो जीवन खिण-खिण ज्यूं अंजलि रो पाणी रे।। राम रट ले...ध्रुव.
मिल्यो भाग स्यूं मिनख जमारो, बण्यो मोह में क्यूं मतवारो।
अठे रही नहीं कोई री भी अमर कहाणी रे।। राम रट ले...

३/१२, ३/१३ चंदन चोक्यां में सरस बखाण, म्हांरा...

अन्तर ढाळ

३/१३ मुनिवर नै आपो झूंपड़ी आपां री
अै साधूजी है भारी उपकारी, मुनिवर नै...
वीनवै यूं बालिम नै कुम्हारी। मुनिवर नै...ध्रुव.
दुर्बल देह सनेह संत रो दीसै नस-नस न्यारी।
स्वेद झरै झरणां ज्यूं झर-झर भूखो पिण न भिखारी।। मुनिवर...

३/१४ केसर-वरणो हो काढ कुसुम्भो, म्हांरा राज।
* पभणे सासू हो बहु नै तेड़ी, म्हांरा लाल,
निरख तूं चंदे हो फिर मुझ छेड़ी, म्हांरा लाल
विमलपुरीये हो मनुष्य थयो छै, म्हांरा लाल
अमरस एहनों हो हजि न गयो छै, म्हांरा लाल

३/१५ खम्मा खम्मा खम्मा हो कंवर अजमाल रा।

४/१ दारू दाखां री, दारू दाखां री।
म्हारे छेल भंवर नै थोड़ी-थोड़ी प्याजे रे।। दारू दाखां री। ध्रुव.
ओ लै ओ लै मस्त कलाळी म्हारो टेवटो गिरवी रख लै रे।
आवै तो सासू रो जायो थोड़ी-थोड़ी प्याजे रे।। दारू दाखां री।

अन्तर ढाळ

४/१ घड़ि दोय आंवतां, पलक दोय जांवतां,
सारो दिन सहेल्यां में लागै ए मरवण,
लागै ए मिरगा नैणी, थां बिना घड़ी ए ना आवड़ै।
म्हांरे बाबोसा रै मांडी गणगौर हो रसिया, गणगौर बालम रसिया,
घडी दोय खेलबा ने जायबा द्यो।।

४/२ हठीला कानजी ! छल्लो मैं नहीं छोडूं।। ध्रुव.
ले गागर भरवां कूं बैठी छल्लो मेल किनारे,
छल्लो हमारो लिया सांवरा गूजर खड़ी पुकारे।
अपना लालजी! छल्लो मैं नहीं छोडूं।।

४/३ वीर पधारया राजगृही में–
*साधुजी ने वंदना नित-नित कीजै, प्रह ऊगंते सूर रे, प्राणी !
नीच गती मां ते नवि जाये, पामै ऋद्धि भरपूर रे, प्राणी !

४/४ इक्षु रस हेतो रे ज्यांरा पाका खेतो रे।

अन्तर ढाळ

४/४ शहर में शहर में वैरागी संयम आदरे।
म्हांरै वैरागी रा तीखा परिणाम हो।। शहर में...

४/५ सहियां ! गावो हे बधावो ज्ञानी गुरु आपणा आया।
आपणा आया हे, मालक आपणा आया,
दरसण कर जन हरसाया। सहियां...ध्रुव.
सूरज-सा तेजस्वी, शीतळ चांदे-सी छाया।
मुळकारो, जीकारो पा ह्वै रोमांचित काया।। सहियां !

अन्तर ढाळ

४/५ घोर तपसी हो मुनि ! घोर तपसी !
थांरो नाम उठ-उठ जन भोर जपसी, हो मुनि...
घोर तपसी हों सुख! घोर तपसी!
थांरो जाप जप्यां करमां री कोड़ खपसी, हो मुनि...ध्रुव.
दो सौ बरसां री भारी ख्यात है बणी,
थांरो नाम मोटा तपस्यां रे साथ फबसी। हो मुनि...
ओ अनशन आ सहज समता,
लाखां लोगां रै दिलां में थांरी छाप छपसी।। हो मुनि...

अन्तर ढाळ

४/५ आवै वर लटकंतो
कनकध्वज कुमार गलिये अटकंतो, आवै...ध्रुव.
जोवै विमलपुरी नां वासी, गोखै-गोखै मृगाच्छी रे।
ओ आवै सिंहल नो छावो, परणवा प्रेमला लच्छी रे।।

अन्तर ढाळ

४/६ आवत मेरी गलियन में गिरधारी
* गावत मैं तो पूज तणां गुण भारी २।
ज्यांरी सूरत री बलिहारी, ज्यांरी करणी री बलिहारी।। ध्रुव.
भरतक्षेत्र में भिक्षु प्रगट्या, भारिमाल शिष्य भारी।
सुधरम वीर तणी पर जोड़ी, उत्तम पुरुष उपकारी।।
गावत मैं तो पूज तणां गुण भारी।।

अन्तर ढाळ

४/७ वीर विराज रह्या।

४/८ मनवा ! नांय विचारी रे।
थांरी म्हारी करतां बीती उमर सारी रे, मनवा !... ध्रुव.
गरभवास में रक्षा कीन्ही सदा विहारी रे।
बाहर काढो नाथ ! करस्यूं भगती थांरी रे।। मनवा...।।

४/६ पिओ नीं परदेशी

* कोई कब ही क्यूं पीवो भांग तमाखू।
आंको जीवन रो मोल, टांको घट-पट रो खोल,
झांको जहरीलो झोल।। कोई कब...ध्रुव.
भांगां बागां बिच घोटे मोटे सिल्लाड़े, छोटा-मोटा मिल संग।
पीवै अरु पावै मन की गोठ पुरावै, हो ज्यावै रंग विरंग।।

अन्तर ढाळ

४/६, ६/५ ठुमक-ठुमक पग धरती नखरा करती।
गीत प्रीत का गाती देखो,
आई बिरखा बीनणी हो बीनणी हो बीनणी।।

४/१० भुवन सुन्दरी जय सुन्दरी,
अति सोहै रे, मन मोहै रे मुनिवर को जांण।
मुनि मन मोह्यो माननी।। ध्रुव.
कर जोड़ी ऊभी रही रे, मुख बोलै रे अति मीठी बाण
मुनि मन मोह्यो माननी।।

४/११ जग बाल्हा, जग बाल्हा जिनेन्द्र पधारिया।।

* मुझ शरणो, मुझ शरणो थावो अरिहंत नौ।
सुख करणो, भव-तरण शरण भगवंत नौ।। ध्रुव.
चउतीस अतिशय युक्त ही अष्ट महाप्रतिहार्य हो
वर शोभा, अति शोभा अशोकादिक तणी।
समवसरण शोभे रह्या, ते देव जिनेन्द्र सुआर्य हो।। मुझ शरणो...

अन्तर ढाळ

४/११ जी कांइ वीरमती नारी तणां जी कांइ देखो चरित्र विरंग।। ध्रुव.
वीरमती तरु अम्ब नै कांइ दीधो कम्ब-प्रहार।
विमलपुरी देखाड़ तू जी कांइ, अमने अहो सहकार।
जी कांइ वीरमती नारी...

४/१२ म्हांरा सतगुरु करत विहार।

* मुश्किल जैन मुनी रो मारग वहणो है खाडै री धार।
है खांडै की धार, रहणो आजीवन इक सार।। ध्रुव.
जंगम स्थावर जीव जगत का आतम सम अवधार।
अपराधी नै भी न सतावै महाव्रती अणगार।। मुश्किल...

४/१३ भविकां ! नृप नी बेटी गुण नी पेटी गेह थी रे लोय,
बैठी दान नी शाला रे लोय।
भविकां ! जे जिम मांगै ते तिम आपै नेह थी रे लोय,
बाला परम कृपाला रे लोय।।

४/१४ जुग जीओ म्हांरी मूमल ! हालो नीं ले चालो जवायां रै देश।। ध्रुव.
काली-काली काजळिये री रेख ज्यूं, काजलिये री रेख ज्यूं।
भूरोड़े बादल में चमकै बीजळी, जुग जीओ...
सागै वाळा नै डेरा दिराय ओ,
कोई हरकी लै जंवायां रा डेरा बादळ महल में। जुग.

४/१५ आई थी पड़ोसण कह गई बात, थांरो ए परण्योड़ो परनारी रे जात।
नणदल रा वीर हंस बोलो।। ध्रुव.
इनै ऊभी गणगोर्‍या, इनै ऊभा लोग।
सेन करूं तो पिया रस्तो छोड़। सासू सुगणी रा पूत हंस बोलो।।

५/१ दुनिया राम नाम नै भूली दुनिया झामर झोलै लागी।। ध्रुव.
ठाकुरजी पे बेटा मांगै अजिया-सुत रै साटे।
अपणा पूत खिलाया चावै, गळा पराया काटै।। हे जी हां...

५/२, ६/१४ डेरा आछा बाग में रे।
* ऊं जय-जय त्रिभुवन अभिनंदन त्रिशलानंदन तीर्थपते !
अयि त्रिशलानंदन तीर्थपते ! अयि कलुषनिकंदन विश्वपते ! ध्रुव.
तिमिराच्छादित भुवन में रे, दिव्य दिवाकर-सो उदयो,
सरण-सरण निज किरण पसारे, सारे जग जागरण हुयो।
निद्रा-घूर्णित जन बोध लह्यो।। ऊं जय-जय...

अन्तर ढाळ

५/२ म्हां नै चाकर राखो जी, गिरधारी म्हां नै चाकर राखो जी।।
चाकर रहस्यूं, बाग लगास्यूं नित उठ दर्शन पास्यूं।
वृंदावन की कुंज गलियन में, गोविन्द लीला गास्यूं।।
म्हांनै चाकर राखोजी।।

५/३ रात रा अमला में होको गहरो गूंजे जी राज !

५/४ सरणाट कुचामण बहग्यो, अणमणो देखतो रहग्यो जी।
सरपाट कुचामण बहग्यो।।
च्यारूं कुंटां में पाणी, आई आपद अणजाणी जी।
बह गया हजारूं प्राणी, आ वणगी एक कहाणी जी।।
सरणाट कुचामण बहग्यो।।

५/५, ५/१५ सभापति हमें मिले मतिमान।
६/५ नाम छोगमल, बी.ए.बी.एल. शासन में सम्मान।। सभापति...
गंगाशहर चोपड़ा नामी, संघ संघपति के अनुगामी।
रखते सबका ध्यान, सभापति हमें मिले मतिमान।।

५/७ मन मोहनगारो म्हांरो साधजी। ध्रुव.
मुनिवर वहरण पांगुरया सखि ! लहि सतगुरु आदेश,
छठ तणो छै पारणो सखि ! नगरी में कियो परवेश रे।
मुनिवर नव जोवन वेश रे, शोभै सिर लुंचित केश रे
चित लोभ नहीं लवलेश रे, मन मोहनगारो म्हांरो साधजी।।

अन्तर ढाळ

५/७ पनजी ! मूंढे बोल।
बोल-बोल हिवड़े रा जिवड़ा ! कांइ थारी मरजी रे। पनजी !...ध्रुव.
म्हें तो म्हांरै घर में बैठी, कांकरड़ी कुण मारी रे, 2।
खड़ी-खड़ी कांकरड़ी लागी, घायल करगी रे।। पनजी !...

५/८ भलो दिन ऊग्यो दरसण पाया म्हे गुरु महाराज रा।

अन्तर ढाळ

५/९ चेतन चिदानन्द चरणां में...।
*वृन्दावन का कृष्ण कन्हैया सबकी आंखों का तारा।
मन ही मन क्यों जले राधिका मोहन तो है सबका प्यारा।। ध्रुव.
जमना तट पर नन्द का लाला जब-जब रास रचाए रे,
तन मन डोले कान्हा ऐसी बंशी मधुर बजाए रे,
सुधबुध खोए खड़ी गोपियां जाने कैसा जादू डाला।।

५/१० करमन की रेखा न्यारी, मैं किसविध लिखूं मुरारी।
वेश्या ओढै शाल दुशाला, पतिव्रता फिरत उघारी।। मैं किसविध....ध्रुव.
मूरख राजा राज करत है, पंडित फिरत भिखारी।। मैं किसविध...

अन्तर ढाळ

५/१० सुहाग मांगण आई अपणै दादोसा रै पास।।
दादोसा! द्यो नी सुहाग, आली भोली नै सुहाग, इकन कुंवारी नै सुहाग।
ए मां! मैं क्या जाणूं कामण ऐसा गुण लाग्या।।
कामण लाग्या ओ सूरजमल, कामण लाग्या ओ गायडमल,
नथली इनली बिन्दली स्यूं गुण लाग्या, मैण मेंहदी स्यूं गुण लाग्या।
बाई थारो बनड़ो छै नादान, छड़िया खेलैलो चोगान,
गोखा बैठ्यो चाबै पान, तोरण आयो करै सिलाम।
ए मां! मैं क्या जाणूं कामण ऐसा गुण लाग्या।। सुहाग...

५/११ भजन कर हे! भजन कर हे !
चामड़े री पूतळी भजन कर हे ! ध्रुव.
चामड़े रा हाथी घोड़ा, चामड़े रा ऊंट।
चामड़े रा बाजा बाजे चारूं ही कूंट।। भजन कर हे!

५/१२ रोको काया री चंचळता नै थे समण सती।
होसी जोगां पर काबू पायां ही नेड़ी मुगती।। रोको...ध्रुव.
काया री परवरती हरदम चालती ही रैवै।
संतां ! चंचळता नै रोकै माता काया गुपती।। रोको...

५/१३ सपना रे वैरी भंवर मिला दै रे। ध्रुव.
सूती थी रंग महल में, सूती नै आयो रे जंजाल।
टग-टग महलां ऊतरी, आई आई सासूजी पे चाल।। सपना रे...

अन्तर ढाळ

५/१३, ६/६ हरी गुण गाय लै रे, जब लग सुखी शरीर।
गइ जवानी न आवसी रे भाई! पिंजर व्याप्यां पीर।। हरी...
भाग भला सद्गुरु मिल्या रे, पड़्यो सबद में सीर।
हंसा होय चुग लीजिये रे नाम अमोलक हीर।। हरी...

५/१४ छेड़ो नांजी नांजी नांजी नांजी।

५/१६ खिम्यांवत जोय भगवन्त रो जी ज्ञान। ध्रुव.
देवै सतगुरु देसना रे ए संसार असार।
रोग सोग दुख अति घणो रे, देखो आंख उघार।।

६/१ नाहरगढ़ ले चालो। ध्रुव.
नाहरगढ़ ले चालो बनां सा अब कै जयपुर देखां सा।
जयपुरिये में ख्याल तमाशा बूंदी में डर मेणां को।
चालो बनी महलां में चालां थारो म्हारो कद को रूसणो।
महलां में मागोरी पेड़ा गोडे बैठ जिमावणो।। नाहरगढ़ ले चालो।

६/२ कुंथू जिनवर रे ! मनड़ो किम ही न लागै।
हठकत-हठकत मूळ न मानै।।

६/३ यह तेरापंथ महान,
धरा पर उतरा स्वर्ग विमान रे, गतिमान रे, यह...
निराला यह नंदन उद्यान रे, गतिमान रे, यह...ध्रुव.
निर्मित श्री भिक्षू के द्वारा, जयाचार्य ने इसे संवारा,
जैनधर्म का नया संस्करण, है एक नया अभियान रे, गतिमान रे

६/४ संभव साहिब समरियै, ध्यायो है जिन निरमल ध्यान का
इक पुद्गल दृष्टि थाप नै, कीधो है मन मेर समान क।।
संभव साहिब समरियै।

अन्तर ढाळ

६/४ कहनी है इक बात हमें इस देश के पहरेदारों से,
संभल के रहना अपने घर में छिपे हुए गद्दारों से,
झांक रहे हैं अपने दुश्मन अपनी ही दीवारों से, संभल के रहना...
जनता से नेताओं से, फोजों की खड़ी कतारों से, संभल के रहना...ध्रुव.
हे भारत माता के बेटो ! सुनो समय की बोली को,
फैलाती है फूट यहां पर दूर करो उस टोली को।
कभी न जलने देना तुम उस भेदभाव की टोली को,
जो गांधी को चीर गई थी याद करो उस गोली को।
सारी पृथ्वी जल जाती है मुट्ठी भर अंगारों से।। संभल के रहना...

६/६ ओ जी हो गोरी रा लसकरिया,
ओळूंयूंडी लगाय सिद्ध चाल्या जी ढ़ोला। ध्रुव.
ऊंची तो खींवै ढ़ोला बीजली, नीची खींवै रे निवाण जी ढोला।
होजी गोरी रा लसकरिया, घड़ी दोय लसकर थामो जी ढ़ोला।
पलक दोय लसकर थामो जी ढोला।।
म्हांरो तो थाम्यो लसकर नां थमै,
थांरै बापुसा रो थाम्यो लसकर थमसी ए गोरी। ओजी ओ...

६/९ म्हारा पूज्य परम गुरु चंगो सुयश जग लीज्यो जी।
म्हांनै स्हाज सदा ही दिज्यो जी।। म्हांरा... ध्रुव.
जय-जय नंदा, जय-जय भद्दा जय-विजय तुम वरज्यो।
अणजीत्या नै जीत जीत्यां री रक्षा रूड़ी करज्यो जी।।
म्हारा पूज्य परम गुरु चंगो सुयश जग लीज्यो जी।

६/१० सुगणा ! पाप पंक परहरिये।
पाप पंक परहरिये दिल स्यूं वोसिरावै अध भार,
इह विध निज आतम निस्तार।। सुगणा!...ध्रुव.
प्राणातिपात प्रथम अघ आख्यो, दूजो मिरषावाद।
अदत्तादान तीजो अघ कहियै, चौथो मिथुन विषाद।। सुगणा...

६/११ भावै भावना। ध्रुव.
पुण्य पाप पूरव कृत सुख-दुख नां कारण रे।
पिण अन्य जन नहीं इम करै विचारण रे।। भावै भावना।।

६/१२ म्हारो घणां मोल रो माणकियो, कुण पापी ले गयो रे।
* म्हारा छेल भंवर रो कांगसियो पणिहार्‌यां ले गई रे,
हां रे बैरणियां ले गई रे।। ध्रुव.
डोड मोहर रो कांगसियो मैं हटवाड़ा सूं ल्याई रे।
दांतै-दांतै मोती जड़िया, अधबिच हीरा जड़िया रे।
पाड़ोसण ले गई रे, म्हारा आलीजा भंवर रो कांगसियो...।।

६/१३ ज्यां शिर सोवता रे लोय !
उछंगे लीधो हो लाल, राणीये कूकड़ो हो राज।
गद-गद कंठे रे भाखै उत्तर मर्म नो।
जिण सिर बाल्हो हो लाल, मुकुट विराजतो हो राज।
दैवे कीधो रे छोगो राता चर्म नो।।

अन्तर ढाळ

६/१३ हो पिउ पंखीड़ा, नारी गुणावली ताम जो,
पिंजरियो कर लीधो झरते लोयणे रे लोय।
हो पिउ पंखीड़ा ! पभणे परिहरी मुझ आम जो
बिछड़वा मति कीधी अगणित जोयणे रे लोय।।

६/१४ संयममय जीवन हो।
नैतिकता की सुरसरिता में जन-जन मन पावन हो।।
संयममय जीवन हो। ध्रुव.
अपने से अपना अनुशासन अणुव्रत की परिभाषा,
वर्ण जाति या संप्रदाय से मुक्त धर्म की भाषा।
छोटे-छोटे संकल्पों से मानस परिवर्तन हो।। संयम...

६/१५ पदम प्रभू नित्य समरिये। ध्रुव.
निर्लेप पदम जिसा प्रभू, प्रभु पदम पिछाण।
संजम लीन्हो तिण समे, पाया चौथो नाण।। पदम...

६/१६ गुरांजी थे मनै गोडै न राख्यो।
मुगती जावा रो भेद न आख्यो।।

शिखा १ सुगणा ! खमाविये तज खार। ध्रुव.
सप्त लक्ष जाती पृथिवी नीं, सप्त लक्ष अपकाय।
इत्यादिक चउरासी लख जे जीवा योनि खमाय।।
सुगणा! खमाविये तज खार।

शिखा २ माढ–मरुधर म्हां रो देश म्हांनै प्यारो लागै जी।
गंगासिंह नरेश म्हांनै प्यारो लागै जी।। मरुधर... ध्रुव.
धोळा-धोळा धोरा म्हारै चांदी की सी रेत।
चम-चम चमकै चांदणी में ज्यूं सोने रा खेत।।
म्हांनै प्यारो लागै जी।

शिखा ३ राख नां रमकड़ा म्हारे रामे रमता राख्या रे।।

शिखा ४ लक्ष्मणजी इम वीनवै, राघव स्यूं कर जोड़।
कां ए ताड़ातोड़ नहिं सीता में खोड़, साच कढाऊं चोड़।। ध्रुव.
पाणी में पत्थर तिरै, पश्चिम दिशि दिनकार।
ऊगै तो सही जाणिये, सीता न लोपै कार।। लक्ष्मणजी।...

नोट–तारांकित पद्य उसी गीत के वैकल्पिक पद्य हैं।

४. विशेष शब्दकोश

अंग	शरीर
अंगज	पुत्र
अंगड़ाई	आलस्य या थकावट के कारण शरीर को तानने या फैलाने की क्रिया
अंतेवासी	शिष्य
अंबरमणि	सूर्य
अंवळो	विपरीत
अकबक	अंटसंट, असंबद्ध प्रलाप
अकिलेश	क्लेश रहित
अक्का	वेश्या की माता
अक्खड़पन	उच्छृंखलता
अखै (आखै)	कहना
अगवाणी	अग्रगामी, स्वागत
अगोचरू	अप्रकट, जो इन्द्रिय का विषय न हो
अघवारण	पापरूपी हाथी
अचक्कां	विघ्न-बाधा रहित
अच्छ	स्वच्छ
अजन्य	उपद्रव
अजमाओ/अजमाणा	परखना, जांच करना
अजहू	अभी तक
अजिन	मृगछाला

अटारी	भव्य, जोरदार
अट्ठी	हड्डी
अड़ंगा	पाखंड, ढकोसला
अडाणै	गिरवी
अडीक	इन्तजार/प्रतीक्षा
अणखाणो	अप्रिय, असुहावना
अणगाह्यो	बैल, टैक्टर आदि द्वारा अनवगाहित
अणजूंझे	बिना युद्ध किए
अणी	अवसर
अनंग	कामदेव
अननुमेय	अमाप्य
अनर्घ	अमूल्य
अनिमिष	अपलक, देवता
अनुपद	पग-पग पर
अनुहार	सदृश
अनूप	सुन्दर, अद्वितीय
अनेह	काल
अपथापी	गलत स्थापना
अबार	अभी
अबोलो	मौन
अभिधा	नाम
अभ्यंग	तेल-मर्दन
अभ्यास	पास
अमनै	मुझे
अमय	अमृत
अमूज (झ)	बेचैनी
अमृतरुचि	चन्द्रमा
अयन	उत्तर तथा दक्षिण की ओर सूर्य की गति से दो अयन होते हैं—उत्तरायण और दक्षिणायन।
अरघट	रेंहट, कुएं से पानी निकालने का मालाकार यंत्र
अलख	अगम्य

अळगी	दूर
अलवाणा	नंगे पैर
अलवेश्वर	प्रभु
अलूणो	नमक रहित
अवतंस (वतंस)	मुकुट
अवली	पंक्ति
अविहड़	अटूट
असराल	असह्य
असाण	आहार
असुहित	अतृप्त
अस्तोक	अधिक
अहंताभास	गर्व का आभास
आउखै	आयुष्य
आउलो	आकुल
आंखमिचोणी	आंखमिचौनी का खेल, नजरंदाज करना
आंटा-सांटा	टेढा-मेढा
आंटो	टेढ़ा, वक्र स्वभाववाला
आखंडल	इन्द्र
आखड़ना	ठोकर खाना, टकराना
आखतो	हैरान, अधीर, अतिव्यग्र
आगी	अग्नि
आण, आणा	आज्ञा
आणै-टाणै	विशेष अवसर पर
आतापन	तपस्या का एक प्रकार (खुले वदन गर्म पत्थर या रेत पर सोना)
आथ	अर्थ, सम्पदा
आदिभान	ऋषभ
आपण	दुकान
आपो	स्वत्व, अपनी सत्ता
आप्त-सबूत	तीर्थंकर होने का प्रमाण
आफणी	अपने आप

आफळिया/आफलना	टक्कर लेना
आब	आभा
आबरू	इज्जत
आभड़ना	भिड़ना, टक्कर लेना
आमना	अभिप्राय
आमय	रोग
आरत	पीड़ा
आरसी	कांच, दर्पण
आरेक	संदेह
आरो	समय का परिमाण, कालचक्र का एक विभाग
आली	श्रेष्ठ
आवो-जावो	आना-जाना
आसनो, आसन्न	नजदीक
इकरार	वादा, आश्वासन
इकलासी	एकात्मकता
इकसार	एक समान
इलातल	पृथ्वीतल
ईभारी	सिंह
उंदर	चूहा
उडुराज	चन्द्रमा
उणिहारो	चेहरा
उतपथचारी	उन्मार्गगामी
उत्संग	गोद
उत्सूत्र	शास्त्रविरुद्ध
उदंगल	उत्पात, झमेला
उदरंभरि	पेटू
उद्गार	डकार
उद्यम-निगमे	पुरुषार्थ के पथ पर
उपरारी	पगडंडी, सरल तरीका
उपाई	उत्पत्ति
उमग्यो/उमगना	उमड़ना

उमटाणी	बादल घिर आना
उमेद	आशा, उम्मीद
उम्हावो	उमंग, उत्साह
उलसै, उलसना	आनन्द से लहराना
उवेखी/उवेखना	उपेक्षा करना
ऊंखल	ऊखल, उदूखल
ऊजलाता	धोता
ऊणो	कम
ऊब/ऊबना	उकताना
ऊबड़खाबड़	विषम
ऊबळै/ऊबलना	गर्म होना
ऊहपचूह	तर्क-वितर्क
ओक	घर
ओखी	भद्दी, खराब
ओगाज	ऊंचे स्वर में बोलना
ओचाट	अस्थिर मनःस्थिति
ओच्छब	उत्सव
ओछै	कम
ओड़ी-जोड़ी	समान स्थिति
ओतू	बिल्ली
ओधै	पद
ओपत/ओपना	सुशोभित होना
ओपरी छाया	भूतप्रेत का प्रभाव
ओरी-दोरी, ओली-दोली	आसपास, चारों तरफ
ओलो	ओट
ओसर्‌यो/ओसरना	अवतरण होना
कंथ	स्वामी
कज्जल-सोदरू	काजल जैसा काला
कटकी	खण्ड
कट्ठी	एकत्रित
करशाखा	अंगुली

करारी	भयंकर
करिणीश्वर	हाथी
कर्षणी	किसान
कलदार	खरा सिक्का
कलमथ	उत्पात
कलिमलहारी	पापनिवारक
कल्पतरु	कल्पवृक्ष
कल्लोल	लहर
कांचनगिरि	मेरु पर्वत
काठो	संकुचित
काण	कमी, कसर
कात्यो-पीन्यो	रुई को कातना-पीनना, किया-कराया
कामगवी	कामधेनु
कामिया	इच्छा करने वाला
कायदो	कानून
कार	मर्यादा, आज्ञा
कालधर्म	मृत्यु
काल सवारै	दूसरे दिन सुबह
काळूंठो	श्याम वर्ण
किंवार	कभी
कित	कहीं
कुख	प्यास
कुटक	कुटकी (चिरायता)
कुबाण	कुटेव, बुरी आदत
कुम्हलाग्यो/कुम्हलाना	मुरझा जाना
कुरब, कुर्ब	इज्जत, प्रतिष्ठा
कूंची	चाबी
कूकड़ी	सूत की लच्छी
कूको	लड़का
कूक्या/कूकना	चिल्लाना, रोना, विलाप करना
कूब	कमी, टेढ़ापन

कृषिबल	किसान
केकी	मोर
केड़	पीछा
केतू	ध्वज़ा
केला	क्रीड़ा
केवटणो	अनुकूल रहना, आराधन करना
कोकाट	बहती हुई नदी का कल कल शब्द।
कोड़	गोद
कोरोमोरो	खाली
कोल	वायदा, प्रण
कोहड़ै	कहां
क्रोड़ीकृत	स्वीकृत
क्षमाधर	पर्वत
खंड	कक्ष
खंदले	कन्धा
खटक	कसक, टीस
खताणी	अंकित करना
खतायो/खतीजना	अंकित करना
खफा	नाराज
खबौळै/खबोलना	चुभोना
खरसाण	सान, कसौटी
खळ	दुष्ट
खलक-मुलक	दुनिया
खलता-खामी	गलती
खळिया	खलिहान
खांच	आग्रह
खाको, खाखो	ढांचा
खार	द्वेष
खासा	अत्यधिक
खाह्वै	विधि
खीज	नाराजगी

खोगाळ	दरार
खोड़ खुड़ाना	बराबरी करना
ख्यात	वृत्तान्त, इतिहास
ख्याल	क्रीड़ा
ख्वा्री	बरबादी
गच्छ	सम्प्रदाय
गणनाहलो	गणनाथ, आचार्य
गणवारी	गण-वाटिका
गद	बीमारी
गरणावै/गरणाना	गुंजित करना
गरीबनिवाज	दयालु, खुदा
गळागळ	एक साथ शीघ्र निगलने की क्रिया का भाव।
गहगो	भारी
गहि	लेकर
गाज	बादलों की आवाज
गात	शरीर
गाती	एक-पटी चद्दर
गाबड़	गरदन
गिंवार	ग्रामीण, देहाती
गुड़गुड़ड़ावै	हुक्का पीते समय होने वाले गुड़-गुड़ शब्द की ध्वनि।
गुणठाण	गुणस्थान
गुरुगम	गुरु से प्राप्त
गुहिर	गंभीर, गहरा
गूझ	गुह्य, गुप्त, रहस्य
गेड़	चक्कर
गेरू	एक प्रकार का खनिज, लाल मिट्टी
गेहरिया	वह व्यक्ति, जो होली पर दल बनाकर गाता-बजाता हो।
गोठ	सामूहिक भोज
गोरवपु	अंग्रेज
गोहिरा	छिपकली की जाति का एक जंगली जंतु, जो बहुत विषैला होता है।

घडसी/घड़ना	गढना, बनाना
घमघम	नगारे का शब्द
घर्म	गर्मी
घाम	ताप
घुड़की	धमकी
घुराया/घुराना	नक्कारै का शब्द होना
चंगो/चंगिणि	अच्छी, श्रेष्ठ
चटक-कटक	चिड़ियों की सेना
चमू	सेना
चरण	चारित्र, दीक्षा
चरूड़ी (ड़ो)	स्पष्ट
चातक	पपीहा
चानणो	प्रकाश
चावो	प्रसिद्ध
चीवर	वस्त्र
चूंप	चातुर्य, चतुराई
चूक्या/चूकना	भूल करना
चूड़िउतार	सुघटित
चून	आटा, चुनकर
चूरणी	चूर्णी, आगम का व्याख्या ग्रन्थ। इसमें संस्कृत और प्राकृत, दोनों भाषाओं का उपयोग होता है।
चोकसी	सावधानी, निगरानी
चोक्कस	स्पष्ट
चोखळो	ग्राम-मण्डल (बहिर्विहारी साधु साध्वियों के लिए प्रतिवर्ष निर्धारित किया जाने वाला विहार-क्षेत्र)
चोगान	मैदान, विशाल आंगन
चोफाळा	भयंकर
छउमथता	छद्स्थता, असर्वज्ञता
छंटावै/छंटाना	छिड़कना
छकता	ठाट-बाट
छक्क	आनन्द, ठाट-बाट

छड़ो	अकेला
छवि (वी)	शोभा, किरण
छाण	खोज, जांच
छाणी/छाणना	खोज-बीन करना
छाने-माने	गुप्त रूप में
छारी	बकरी
छावा, छावो	पुत्र
छेक	दक्ष, चतुर
छेड़छाड़	झगड़ा, टंटा, विरोध, व्यंगय या उपहास आदि के द्वारा किसी को तंग करने की क्रिया।
छोळ	लहर
जंगम	गतिशील, चलने-फिरनेवाला
जंजाल	झंझट, चक्कर
जटाजूट	बहुत बड़ी जटाएं, सिर पर उलझे हुए बड़े-बड़े बाल।
जबै	बोलना
जमेरी	संतरा
जलद	बादल
जवा	एक प्रकार का जन्तु, जो खाद मिश्रित मिट्टी में पाया जाता है।
जहजोग	यथायोग्य
जांगल	जंगली जीवों का मांस
जाखेड़ा	ऊंट
जाब	उत्तर, जवाब
जाळवियो/जाळवणा	अनुकूल वर्तन करना, संभालना, सुरक्षित रखना
जाहिर	प्रसिद्ध
जिनपति	तीर्थंकर
जीमणवार	भोज
जुळबुळाट	सरसराहट, मंद गति से चलना
जूनी	जीर्ण, पुराना, वृद्ध
जेज	देर, विलम्ब
जोंक	खून चूसने वाला कीट

जोगणी	संन्यासिनी, साध्वी
जोड़ायत	सहधर्मिणी, धर्मपत्नी
जोड़ी	कई बाजोटों से बनाया गया बैठने या सोने का पट्ट।
जोड़ी	एकत्रित करके
जोम	रौब
जोरीदावै	जबरदस्ती
झंगी	गहरा जंगल
झंड	ठाट-बाट
झकोर	मंद-मंद वर्षा की लहर
झकोलै	झोंका
झणणाट	झन-झन शब्द होने की क्रिया का भाव।
झबकै	अचानक
झांझरकै	पौ फटने का समय
झांपणो	भरना
झाण	ध्यान
झाल	पकड़कर
झाला	हाथ का संकेत, अग्नि-ज्वाला
झीणी	सूक्ष्म, गंभीर
झूमको	समूह
झूळणै	पालना
झूसित	झोंकी हुई
झोला	वायु-प्रवाह का आघात, झोंका
टब्बो	राजस्थानी आदि प्रादेशिक भाषाओं में जैन आगमों का संक्षिप्त रूपान्तरण।
टाण	तानकर
टाणै	अवसर
टाबरियो	बालक
टाळोकर	संघ से बहिष्कृत या बहिर्भूत साधु/साध्वी, जो उसी वेश में रहते हैं।
टिल्लो	धक्का
टूको	टुकड़ा

टेक	प्रण
टेर	रट
टेव	आदत
ठंठरतो/ठंठरना	अत्यधिक ठंड से कंपित होना
ठाट-हगाम	ठाट-बाट
ठाणो	स्थिरवास
ठव्यो	स्थापित किया
ठिकाण	धर्मस्थान
ठेट	सीमा, छोर
ठोड़	स्थान
डंके की चोट	खुल्लम-खुल्ला
डपटी	ओढी हुई
डरूं-फरूं	भयभीत
डाई	बाईं
डांफर	ठंडी हवा, वातचक्र
डार-डार	डाल-डाल
डींग	शेखी, गप्प
डीक	कलेजे तक गहरी ठंड का अनुभव
डुपटी	दुपटी, पछेवड़ी
ढाळ	बिछाकर
ढाळो	आदत
ढूको/ढूकना	आना
तंबोली	पान-विक्रेता
तजबीज	व्यवस्था, इंतजाम
तड़को	पौ फटने का समय
तड़ाग	तलाब
तटिनी-प्रवाह	नदी का प्रवाह
तणी	वस्त्र आदि सुखाने के लिए बांधी जाने वाली रस्सी, षष्ठी विभक्ति का वाचक शब्द।
तणाणी	खिंचना
तन-छांहड़ी	पत्नी

तनूज	पुत्र
तपाणी	संतप्त करना
तरुवर-पल्लव	वृक्ष का पत्ता
तल्प	बिछौना
तांबूल	पान
ताणाताणी	खींचातान
तीख	तिक्तता का भाव
तीरथ-तांत	आचार्य
तुरंग	घोड़ा
तूठै	प्रसन्न होना
तोरो	प्रभाव
थरहर्राया	कंपित हो गए
थाणापति	स्थिरवासी
थोहर	एक प्रकार की वनस्पति (कैक्टस)
थ्यावस	आश्वासन
दक्ष	विद्वान, कुशल
दरियो	सागर
दर्वीकर	सर्प
दल	पत्र
दशाकर्ष	दीपक
दाखलो	किसी वस्तु या घटना का लिखित ब्यौरा।
दाखै	कहना
दाझ	जलन, दाह
दाय	पसन्द
दारक	लड़का
दिदारू	दर्शनीय, देखने योग्य
दिनपति	सूर्य
दिलखातरी	इतमीनान, तसल्ली
दिलेर	उदार दिलवाला
दिहाड़ो	दिन
दीक्षा-कल्प	दीक्षा की समय सीमा

दीख	दीक्षा
दुंदाळो	मोटे पेटवाला, तोंदवाला
दुकूल	रेशमी कपड़ा
दुक्करकार	कठिनतम
दुतिया	द्वितीया
दुरघट्टी	दुर्गम, कष्टसाध्य
दोर	दौड़
दोरो/दोहिलो	कठिन
धड़ाधड़	लगातार, बिना रुके हुए
धर्राट	धड़धड़ाहट का शब्द
धव	स्वामी, पति
धसमसकै	पृथ्वी पर पांवों का बल देते हुए चलना, लक्ष्य की ओर त्वरित गति से अग्रसर होकर चलना।
धाड़	आक्रमण, हमला
धामना	मनुहार करना
धाया	तेज चलकर आना
धायो	तृप्त/संतुष्ट
धाराधर/धोरणी	मेघमाला
धावो	आक्रमण
धीज	अग्निस्नान
धीज पतीजै	विश्वास करना
धीणो	दुधारू पशुओं का होना
धुर	प्रारंभ में
धूंवरली	कुहरा
धोरी	प्रमुख
नख	गौत्र
नगारा	तबले के आकार का एक बृहद वाद्य।
नन्दन	पुत्र
नाई	झुकाकर
नागी	निर्लज्ज
नाड़	गरदन

नाज	अनाज
नान (न्ह) पणो	बचपन
नानो	छोटा
निगम	मार्ग
निगुरो	जिसने गुरु से ज्ञान न लिया हो, कृतघ्न।
निजोरी	ऐसी घटना, जिसमें आदमी का जोर/वश नहीं चले।
निढ़ाल	शिथिल
निपट	केवल, एकमात्र
निभाल	देखकर
निरखै/निरखना	देखना, अवलोकन करना
निरणो	निर्णय
निलवट	ललाट
निवडी/निवड़ना	निष्पन्न होना
निष्प्रत्यूह	निर्विघ्न
निसाण	नगारा
निसुणी	सुनकर
नीको	श्रेष्ठ
नीठा	नष्ट होना, समाप्त होना
नेठ	बड़ी मुश्किल से
नेत	नेत्र
नेय	होके की नली
नेष्ट निर्मित	प्रश्न पूछकर बनाई गई कुण्डली।
नेहड़ला	स्नेह
नैज	अपना, निजी
नोपत	शहनाई
नोहत्थो	नौ हाथ लम्बा
पंथ-पनाह	*आचार्य*
पंथीड़ा	पथिक
पंपोळो/पंपोलना	सहलाना
पक्खी	पक्ष का अन्तिम दिन, जिस दिन प्रतिक्रमण करने के बाद खमतखामणा किया जाता है।

पखपात	पक्षपात
पड़त	ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति
पड़िकमणो	अतीत के दोषों से निवृत्त होने के लिए किया जानेवाला अनुष्ठान।
पड़िलेहण	वस्त्र-पात्र आदि का यथासमय निरीक्षण करना।
पछाड़ो	पछाड़ने की क्रिया का भाव।
पछेवड़ी	उत्तरीय वस्त्र, चद्दर
पजुवास	उपासना
पठाया	भेजा
पणती	पैंतीस
पतावो	विश्वास
पतीजो/पतीजना	विश्वास करना
पभणंत	कहना
परतख	प्रत्यक्ष
परबारा	सीधा
परिकर	परिवार
परिघल	अत्यधिक
परो	दूर
परोखी	परोक्ष
पर्ण	पत्र
पळपळाट	चमचमाहट
पलावै/पलाना	दूर करना
पवाड़ा	झंझट, लड़ाई
पांगरयो	शुभारंभ हुआ
पाखती	निकट
पाखरयो	कवच, शस्त्र आदि से सुसज्जित
पाण	चमक
पाद (ध) रा	सीधा
पानड़ा	सूखे पत्ते
पानही	जूता
पावड़ी	सीढ़ी, पादुका

पावांधोक	चरण-स्पर्श, प्रणाम
पितवाणो	परीक्षण करना
पीनी	पुष्ट
पीहर	पिता का घर, मायका
पुढवी, पुहवी	पृथ्वी
पुरुषोत्तम	तीर्थंकर
पूठो	पत्रों की सुरक्षा के लिए बनाया गया कपड़े, गत्ते या प्लास्टिक का आवरण।
पोवट-मावट	पोष और माघ मास में होने वाली वर्षा।
प्रतिवच	उत्तर
प्रतिवास	प्रतिदिन
प्रथित	विस्तृत, प्रसिद्ध
प्रधरावी	धारण की
प्रमिला	नींद
प्रवया	पुराना, वृद्ध
प्रीतड़ली	प्रीति
प्रोष्ठपद	भाद्रव
फणिदारा	नागिन
फरोळ्या/फरोलना	उलट-पुलट कर देखना
फांकडी	रेखा, लाइन
फाबो	पैर का पंजा
फुंदाळो	तोंदवाला
फुरकार	स्पन्दन
फेट	चपेट
फेर	अन्तर
फोकट	व्यर्थ
बगसीस	पुरस्कार
बजराक	बला, आफत
बटकां	दांतों से काटने की क्रिया का भाव
बण्या-ठण्या	सजे-धजे
बद-बद	बलपूर्वक बोलना

बनात	ऊनी या रेशमी वस्त्र
बरसालो	वर्षा ऋतु
बहुड़ाया	लौटाया
बाउलो	व्याकुल
बांकड़ी	वक्र, टेढी
बांह	बल, शक्ति
बाघम्बर	सिंह की खाल
बाट	प्रतीक्षा
बाथ	बाहों को फैलाकर हथेलियों को मिलाने से बनने वाला घेरा।
बानी	तरफ
बापड़ो	बेचारा
बालिश	मूर्ख
बा'ळो, बाहलो	जल-प्रवाह
बिदरंग	विकृत रंग
बीज	द्वितीया तिथि
बीनवै	प्रार्थना/विनती करना
बूझना	पूछना
बून	बून्द
बेल	ज्वार
बे'ली	*रथनुमा बैलगाड़ी*
बेसबर	अधीर
ब्हाळ	शीत लहर
भंडीजै	*बदनाम होना*
भगदड़	आकस्मिक भागदौड़, खलबली
भतपाण	भोजन-पानी
भभकना	प्रज्वलित होना
भर्ता	स्वामी
भळकतो	चमकता हुआ
भळको	तेज
भांपण	पलक, बरौनी

भाड़	भट्ठी
भाज/भाजना	दौड़ना
भाण (न)	सूर्य
भाणो	भोजन का थाल
भास	आभा
भूंफोड़ा	जमीन को फोड़कर निकलने वाला पौधा।
भूच्छाय	अन्धकार
भेक	मेंढक
भेव	भेद
भैषज्य	औषध
भोंहरा	तलघर
भोभर	छोटे-छोटे अंगारों से युक्त गर्म राख।
भो-भो	भव-भव
भोलै	भ्रम में
मधुधूलि	मिश्री
मधुप	भ्रमर
मनूज	कामदेव
मयंक	चन्द्रमा
मलपै	मुस्कराना, मस्त गति से चलना
मसाणै	श्मशान
महकंत	प्रभायुक्त
महणी	ताना, व्यंग्य
महिमानिलो	महिमायुक्त
मांझी	प्रमुख नेता
मांडी	चित्रित करना
मातृपद	प्रवचन माताएं
माय	मां
मार-मद	वासना का मद
मार्तण्ड	सूर्य
माल-मलीदै	स्वादिष्ट पकवान
माळिया	छोटा कमरा

मावड़ी	मां
माहणी	ब्राह्मणी
मिशल	मज़बून, प्रारूप
मिसलत	विचार-विमर्श
मींट/मीटड़ी	दृष्टि
मुक्ता/मुक्ताफल	मोती
मुक्ति-कमला	मुक्ति रूप लक्ष्मी
मुदिर	मेघ
मूर्छना	व्यामोह
मोघ	व्यर्थ
मोय	मुझको
मौली	मुकुट
यम	पांच
याम	प्रहर
युग	दो, चार
रंच	अत्यल्प
रकझक	तर्क-वितर्क
रज	रक्त
र (रा) ज्यो/राजना	शोभित होना
रयणी	रजनी, रात्रि
रयणीधणी	चन्द्रमा
रसज्ञा (ना)	जीभ
रसवती	रसोई
रसाल	आम
रांगड़रासो	झमेला
राका	पूर्ण चन्द्रवाली पूर्णिमा
राड़	लड़ाई
राणोराण	*खचाखच*
राता	अनुरागी
रामत	खेल
रास	लीला

रासभ	गधा
रिछपाल	रक्षा
रिझवारी	पुरस्कार
रिझावण	प्रसन्न करना
रीझ	कृपा
रीसड़ी	क्रोध
रुत	ऋतु
रूंखड़ो	वृक्ष
रूंस	बालकनी
रूड़ी (ड़ो)	श्रेष्ठ
रूपाळो	सुन्दर
रेणुकणां	धूल के कण
रेत	वीर्य
रेस	रहस्य
रोढ़ो/रोढना	वश में करना
रोळो	तेज आवाज
रोहिणिधव	चन्द्रमा
लक्कड़दाहो	भयंकर सर्दी, जिसमें लक्कड़ भी जल जाते हैं।
लफरा	झंझट
लबार	अधिक बोलनेवाला
लवना	बोलना
लहलीणी	तल्लीन
लहुता	लघुता
लहुवंशी	दशा ओसवाल
लहूड़ा	छोटा
लाहो	लाभ
लिगार	अंश
लीक	लकीर, बना-बनाया मार्ग
लुकाह	छिपाकर
लुळ-लुळ	अत्यधिक झुककर
लू	ग्रीष्म-ऋतु में चलनेवाली बहुत गर्म हवा।

लूण	नमक
लूला	पंगु
लेण	लाइन
वणिज्य	व्यापार
वदनारविन्द	मुखकमल
वदान्यता	उदारता
वधारू	बढ़ानेवाला
वनिता	स्त्री
वर	वट वृक्ष
वरिवस्या	सेवा, उपासना
वरूथिनी	सेना
वर्षाहलो	वर्षा का मौसम
वसु	आठ
वाचंयम	मुनि
वामा	स्त्री
वार	प्रहार
वारणरिपु	सिंह
वार्दल	बादल
वासर	दिवस
वासव	इन्द्र
विखवाद	विवाद, झगड़ा
विखिन्न	खेदखिन्न
विडारी/विडारना	विदीर्ण करना
वितरक	वितर्क
विनाण	ज्ञान
विपच्छ	विपक्ष
विपणिज्ञ	कुशल व्यवसायी
विरगत	विरक्त
विरुद	किसी के यश, गुण, प्रताप आदि का वर्णन।
विरुदाई/विरुदाना	गौरव गाना
विलसै	अनुभव करना

विलोकै	देखना
विलोचन	आंख
विशोही	विशुद्धि
विसवाह	विश्वास
वेलूपर्वत	बालू रेत के टीले
व्यंगी	व्यंग्य करने वाला
व्यतिकर	वृत्तान्त
व्याऊड़ी	बिवाई
व्रात	समूह
व्रीड़ा	लज्जा
शरणा	आश्रय
शर्म	सुख
शशांक	चन्द्रमा
शाण	कसौटी, सान
शारद	शरद ऋतु में होने वाला
शाल	शाल वृक्ष, शल्य
शासनधव	आचार्य
शासनमोड़	आचार्य
शाह/शा	साहूकार, सेठ
शिखरी	पादप
शिलोच्चय	पहाड़
शिव-थाह	मोक्ष की गहराई
शुक्ति (ती)	सीप
शेखैकाळ	चातुर्मास के अतिरिक्त आठ मास का समय।
शोथ	सूजन
संघयण	शरीर की अस्थि-संरचना
संच्योड़ा	संचित किया हुआ
संतति	परम्परा, संतान
संथुणी	स्तुति
संप्रति	वर्तमान
संभोग	साधु-साध्वियों का पारस्परिक व्यवहार

संयुजे	मिलाकर
संलेखना	अनशन के पूर्व की जाने वाली तपस्या
संवळी	अनुकूल, सरल
सखर	अच्छा, बलवान
सचकारयो	सत्य किया, साक्षात दिखाया
सच्छ	स्वच्छ
सजोड़ै	सपत्नीक
सटकां	शीघ्रता से
सतोरां	पराक्रम सहित
सन्	विद्वान
सफा-सफा	साफ-साफ
सबं (वं) क	वक्रता सहित
समचै	विभागीय पांती और कार्यों से मुक्त रहने की व्यवस्था
समज्या	सभा
समय	सिद्धान्त, आगम
समोसरया	पधारे
सयणां	सज्जन
सरणी	मार्ग
सलूणो	सुन्दर
सवया	सदृश
सव्यास	विस्तार के साथ
सहनाणी	निशानी
सहोदरी	बहिन
सांई	स्वामी
सांतरी (रा)	अच्छी
सांभरियो	कर्त्तव्य और दायित्व के प्रति जागरूक
साकर	मिश्री
साखी	साक्षी
सागी	वास्तविक, असली
साद	शब्द
सानैमानै	संकेत से

साबत	सम्पूर्ण
सामठो	प्रचुर, समूहबद्ध
सामे (म्हे) ळो	अगवानी
सारंग	चातक, हरिण
सारणा	प्रोत्साहन
सारी रीते	अच्छी प्रकार
सारू	अनुरूप
सार्व	सर्वज्ञ
सिंघाड़ो	बहिर्विहारी साधु-साध्वियों का वर्ग
सिक्को	छाप, गुरुमंत्र
सिखाण	शिक्षा
सित	शुक्ल
सिततम	अति उज्ज्वल
सिरखां	रजाइयां
सिरपच्ची	दिमाग खपाना
सिवाह	सिवाय
सीखड़ली/सीखड़ी	सीख, शिक्षा
सुकृत	पुण्य
सुघड़ाई	दक्षता
सुजात	सुपुत्र
सुधैषणा	अमृत की खोज
सुपर्व-शिरताज	इन्द्र
सुरगुरु	बृहस्पति
सुरतरु	कल्पवृक्ष
सुरपादप	कल्पवृक्ष
सुरपुर	स्वर्ग
सुराह	सन्मार्ग
सुवयणा	शुभ वचन
सुहागण	सौभाग्यवती
सुहायन	शुभवर्ष
सूंखड़ली, सूंखड़ी	मिठाई

सूरीपद	आचार्यपद
सेतु	पुल
सेफ	सुरक्षित
सेरी	गली
सोखी-दोखी	सज्जन-दुर्जन
सोट	मजबूत लकड़ी की लाठी
सोड़	रजाई
सोहरो	सहज सरल, आरामदायक
सौ-टंच	असली
स्तन्यपान	दुग्धपान
स्यामखोर	स्वामिभक्त
स्वस्ति-श्री	मंगलवाचक शब्द
स्हाज	आचार्य के सान्निध्य में रहने वाले साधु साध्वियों का वर्गे
हंस	सूर्य
हटकणहारो	टोकने वाला
हणां-हमार	अभी-अभी
हणाणी	नष्ट की गई
हमणांई	इसी समय
हयन	वर्ष
हाक	जोर से पुकारने की आवाज, डांट, फटकार।
हालै/हालना	चलना
हिचकिच	झिझक
हिमकर	चन्द्रमा
हिरदो	हृदय
हिळोळा	आनन्द की लहरें
हिवड़ो	हृदय, अन्तःकरण
हुलरायो	बच्चे को खिलाने या सुलाने के लिए लोरी गाना
हुलसावै/हुलसाना	प्रसन्न होना
हूंस	चाह
हद्या	सुन्दर

हेज	स्नेह
हेठै	नीचे
हेरी, हेरो/हेरना	देखना, तलाश करना
हेल्यां	हवेलियां
हेषा	घोड़े की आवाज
होको	धूम्रपान करने का एक उपकरण।
होळी पाड़णै	शांत करना

लेखक-परिचय

जन्म	:	२० अक्टूबर १९१४, लाडनूं (राजस्थान) वि. सं. १९७१, कार्तिक शुक्ला द्वितीया
दीक्षा	:	५ दिसम्बर १९२५, लाडनूं (राजस्थान) वि. सं. १९८२, पौष कृष्णा पंचमी
आचार्य	:	२६ अगस्त १९३६, गंगापुर (राजस्थान)
अणुव्रत-प्रवर्तन	:	१ मार्च १९४९, सरदारशहर, (राजस्थान) वि. सं. २००५, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
युगप्रधान	:	२ फरवरी १९७१, बीदासर (राजस्थान) वि. सं. २०२७, माघ शुक्ला सप्तमी
भारत ज्योति	:	१२ फरवरी १९८६, उदयपुर (राजस्थान) वि. सं. २०४२, माघ शुक्ला पंचमी
वाक्पति	:	१४ जून १९९३, लाडनूं (राजस्थान) वि. सं. २०५०, आषाढ कृष्णा दशमी
राष्ट्रीय एकता पुरस्कार	:	३१ अक्टूबर १९९३, नई दिल्ली *वि. सं. २०५०, कार्तिक कृष्णा एकम*
महाप्रयाण	:	२३ जून १९९७, गंगाशहर (राजस्थान) वि. सं. २०५४, आषाढ़ कृष्णा तृतीया

प्रमुख कृतियां

- कालूयशोविलास
- डालिमचरित्र
- माणकमहिमा
- मगनचरित्र
- सेवाभावी
- मां वदना
- चन्दन की चुटकी भली
- मैं तिरूं म्हारी नाव तिरै
- भरतमुक्ति
- *पानी में मीन पियासी*
- अग्निपरीक्षा
- सोमरस
- सुधारस
- नन्दन निकुंज
- शासन-सुषमा
- अणुव्रत-गीत
- तेरापंथ-प्रबोध
- आत्मा के आसपास
- सम्बोध
- श्रावक-संबोध
- मेरा जीवन : मेरा दर्शन
- सन्मति का मतितंत्र
- चेतना का आकाश : अध्यात्म का सूर्य
- नया समाज : नया दर्शन
- मुखड़ा क्या देखे दरपन में
- जब जागे तभी सबेरा
- लघुता से प्रभुता मिले
- दीया जले अगम का
- मनहंसा मोती चुगे
- *दीये से दीया जले*
- कुहासे में उगता सूरज
- बैसाखियां विश्वास की
- सफर आधी शताब्दी का
- जीवन की सार्थक दिशाएं
- जो सुख में सुमिरण करे
- बिन पानी सब सून
- राजपथ की खोज
- अणुव्रत : गति-प्रगति
- अनैतिकता की धूप अणुव्रत की छतरी
- अणुव्रत के आलोक में